इन्दिरा गाधी की पारिवारिक जीवन-कथा

लेखिका
कृष्णा हठीसिंग

हिन्दी-रूपान्तर
श्यामू सन्यासी

प्रस्तावना
राजा हठीसिग

१९८४
सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशक
यशपाल जैन
मत्री, सस्ता साहित्य मंडल
एन ७७, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली

●

पाचवी वार : १९८४
मूल्य : रु० १०-००

●

मुद्रक
अग्रवाल प्रिंटर्स,
नई दिल्ली-११००२८

प्रकाशकीय

पुस्तक की लेखिका से हिंदी के पाठक भलीभाति परिचित हैं। कुछ वर्ष पूर्व उनकी पुस्तक 'बोलती तस्वीरे' मण्डल से प्रकाशित हुई थी। उस पुस्तक की मर्मस्पर्शी गाथाओ को जिन्होने पढा था, उन्हे रोमाच हो आया था। वे मात्र गाथाए नही थी, जेल-जीवन के ऐसे सजीव चित्र थे जो कठोर-से-कठोर हृदय को भी हिला देते है। उन ससमरणो के माध्यम से लेखिका ने बताया था कि अधिकाश व्यक्ति स्वेच्छा से अपराध नही करते, परिस्थितिया उन्हे वैसा करने के लिए मजबूर कर देती है। मानव-जीवन की जिन यथार्थताओ को कानून देख तथा स्वीकार नही कर पाता, उनका दर्शन लेखिका ने अपनी पुस्तक मे कराया था। उनकी दूसरी पुस्तक 'कोई शिकायत नही' भी आपकी निगाहो से गुजरी होगी, जो लेखिका की 'आत्मकथा' है।

प्रस्तुत पुस्तक मे लेखिका ने अपनी यशस्वी भतीजी, भारत की प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी के जीवन की प्रभावशाली झाकी उपस्थित की है। इसे पढकर मालूम होता है कि इन्दिराजी बचपन से ही कितनी निर्भीक तथा हौसले वाली थी। यद्यपि वह बडे घराने मे उत्पन्न हुई, लाड-प्यार तथा वैभव के बीच पली, तथापि उन्होने जीवन को कभी फूलो की सेज नही माना। उनके होश सभालने के पूर्व ही भारत का स्वाधीनता-सग्राम आरम्भ हो गया था और ज्यो ही देश की पुकार उनके कानो मे पडी कि वह मैदान मे आ गई। उस सग्राम मे उन्होने क्या भूमिका अदा की, कैसे-कैसे उतार-चढावो मे से गुजरी, सुख-समृद्धि की गोद मे खेलते उनके नेहरू-परिवार ने किस प्रकार राष्ट्र-सेवा के कठोर मार्ग को अपनाया, इसका बडा ही सजीव चित्रण इस पुस्तक मे हुआ है। कहानी यही समाप्त नही होती। भारत स्वतत्रता के अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। उस समय से लेकर सन् १९६७ के आम चुनाव तक की राष्ट्रीय उपलब्धियो मे नेहरू-परिवार तथा इन्दिराजी के

योगदान का विशद वर्णन भी इसमे पढने को मिलता है। यह कहने मे अतिशयोक्ति नही होगी कि अब तक इन्दिराजी के सम्बन्ध मे जितना साहित्य प्रकाशित हुआ है, उसमे इस पुस्तक का महत्वपूर्ण स्थान है। चूकि लेखिका स्वय इस घटना-चक्र की साक्षी रही हैं, इसलिए उनके विवरण जहा प्रामाणिक है, वहा बड़े ही रोचक तथा सरस भी है। पुस्तक को पढने मे उपन्यास का-सा आनद आता है।

पुस्तक के लेखन के पीछे बडी ही मार्मिक कहानी है जिसका उल्लेख लेखिका के पति श्री राजा हठीसिंग ने अपने प्राक्कथन मे किया है। हमे दु ख है कि पुस्तक लेखिका के जीवन-काल मे प्रकाशित न हो सकी।

मूल पुस्तक का प्रकाशन न्यूयार्क की विख्यात प्रकाशन-संस्था मैकमिलन कम्पनी की ओर से हुआ है। हिंदी मे इसके प्रकाशन की अनुमति देने के लिए हम प्रकाशक तथा श्री राजा हठीसिंग के आभारी है।

पुस्तक सन् १९६७ के आम चुनावो के सपन्न होने के बाद समाप्त हो जाती है। उसके पश्चात् तो हमारे देश मे बहुत-कुछ हुआ है और उसमे इन्दिराजी ने जो ऐतिहासिक पार्ट अदा किया है उस सबका सक्षिप्त वर्णन पुस्तक के अनुवादक श्री श्यामू सन्यासी ने एक अध्ययन मे कर दिया है, जिसे परिशिष्ट 'ताजा कलम' के रूप मे दिया गया है। पुस्तक को अद्यतन बनाने के लिए हम श्री श्यामू संन्यासी को भी धन्यवाद देते है।

हम चाहते है कि जिनके हाथ मे भारत के शासन की बागडोर रही और जिन्होने अपने अपूर्वबुद्धि-कौशल, सूझबूझ, अध्यवसाय आदि से देश को निराला नेतृत्व प्रदान किया, उनके जीवन की अतरग झाकी को पाठक देखे और उससे प्रेरणा ले। हमे पूरा विश्वास है कि यह पुस्तक सभी क्षेत्रो मे चाव से पढी जायगी।

—मन्त्री

प्राक्कथन

मेरी पत्नी का लन्दन मे स्वर्गवास हुए अब तो छ महीने हो गए। घर पहुचने और इस किताब को पूरा करने के लिए आतुर वह अमरीका से लौट रही थी। १९६७ को गर्मियो-भर उसकी तबीयत खराब रही, लेकिन उस वक्त की डाक्टरी जाच-पडताल मे दिल की खराबी की कोई बात मालूम नही हो पाई थी। उसकी पुस्तक 'हम नेहरू' (वी नेहरूज) के विमोचन-समारोह पर, अमरीका आने का उसके न्यूयार्क के प्रकाशक का निमन्त्रण मैने इस आशा से स्वीकार कर लेने का आग्रह किया था कि बाहर जाने से उसका बिगडा हुआ स्वास्थ्य जल्दी अच्छा हो जायगा।

अमरीका मे जैसे ही बेशुमार रेडियो और टेलीविज़न-प्रसारणो का काम खत्म हुआ, वह घर लौटने के लिए उतावली हो उठी। मन तो उसका यहा, इस किताब को जल्दी-मे-जल्दी पूरा करने मे, लगा हुआ था। लेकिन मैं बराबर आग्रह करता रहा कि ऐसी क्या जल्दी है, थोडे दिन वही आराम कर लो। अमरीका के अपने विशाल मित्र-समुदाय से विदा होते समय सम्भवत मृत्यु के पूर्वाभास ने ही उससे इस बार कहलवाया था कि यह अन्तिम मिलन है, अब उसका आना न होगा। बार-बार आग्रह करने के कारण वह मुझसे नाराज़ हो गई थी और अत मे झुझलाकर उसने लिखा था, "अच्छा, तुम्हारी यही जिद है तो और दस दिन यहा पडी रहूगी।" तब क्या पता था कि कौन-सी अत प्रेरणा उसे मेरे पास घर लौटने को विवश कर रही थी!

और वह घर न आई। नवम्बर ९ की तारीख को, लन्दन मे, बडे सवेरे भारत की ओर आनेवाला जहाज पकडने के लिए वह हवाई अड्डे जाने की तैयारिया कर ही रही थी कि एकाएक दिल का दौरा पड़ा और उसका वही तत्काल प्राणान्त हो गया—बिलकुल अकेले और असहाय! मै रुक जाने का बराबर आग्रह करता रहा, इसके लिए कभी अपने-आप-को माफ नही कर सकूगा। अगर वह जल्दी लौट आती, जैसाकि चाहती

थी तो दौरे के समय सार-सभाल और सहायता के लिए मैं उसके पास होता, और हो सकता है कि असमय की एकाकी मौत से उसे बचा भी लेता, और कुछ न कर पाता तो चिरविदा के उस अन्तिम क्षण हम दोनो साथ तो रहते। लेकिन उसके निर्जीव ठण्डे हाथ को थाम कर, रुधे गले से, अपने प्रेम की गुहार करते रह जाना ही, मुझे नसीब हो सका। उसके प्राण-पुलकित हाथ का ऊष्माभरा कोमल स्पर्श मुझे न मिला, और वे मुस्कराती आखे तो हमेशा के लिए मुद चुकी थी।

कृष्णा अपने परिवार को बहुत ज्यादा प्यार करती थी। भाई, बहन भतीजी इन्दिरा, अपने दो बेटे और पति—यही उसकी दुनिया थी, और उसका यह परिवार भारत के स्वाधीनता-सग्राम के साथ अटूट रूप से जुडा हुआ था, इसलिए कृष्णा को अपने देश से भी बहुत प्यार था। स्वतन्त्रता के बाद जवाहरलाल नेहरू की सभी नीतियो से सहमत न हो पाने के कारण मै काग्रेस पार्टी से अलग हो गया। यह उसके लिए परेशानी का कारण हो गया। भाई और पति के रास्ते अलग-अलग हो जाने के कारण कई बार ऐसे मौके आते कि वह खासे धर्म-सकट मे पड जाती और उसके दु ख-क्षोभ की सीमा न रहती। शायद मेरे विरोध और खुली आलोचना के कारण ही उसे वह मान्यता न मिल पाई, जिसकी वह वस्तुत अधिकारी थी। जैसाकि एक मित्र ने लिखा है, समूचे नेहरू-परिवार मे अकेली वही थी जो पद और सत्ता से हमेशा दूर रही। सहज और सरल, ईमानदार और निष्ठावान् तो वह थी ही, नेहरू-वश का परम्परागत प्रख्यात गुण, अथक परिश्रमशीलता, भी उसमे कूट-कूटकर भरी थी।

बरसो पहले, १९४३ मे, जब मै जेल गया तो वह घर पर अकेली रह गई। मेरे अनुरोध पर उसने तत्कालीन 'भारत छोडो' आन्दोलन मे प्रकट रूप से सक्रिय भाग नही लिया और हमारे दोनो छोटे-छोटे बच्चो की देखभाल के लिए बाहर रहना स्वीकार किया। वास्तव मे अपने नन्हे-मुन्नो के स्नेह के ही कारण उसने मेरा अनुरोध शिरोधार्य किया था। जेल मे से मैंने उसे अपना अकेलापन बहलाने के लिए लिखने की सलाह दी। वह बडी ही सम्भाषण-पटु थी और अपनी बातचीत मे लोगो के बारे मे रोचक

घटनाओ के दफ्तर-पर-दफ्तर खोलती चली जाती। उसके लिए 'यादे दिसम्बर के गुलाब के फूलो की तरह थी', जो पिता के स्नेह-प्रेम की सुगन्ध से उसके मन-प्राणो को आप्लावित कर देती थी—उस पिता के, जिन्हे वह सबसे अधिक चाहती और मानती रही थी। वह ज़िन्दादिल, खुशमिजाज और उत्साह-उमग से परिपूर्ण थी।

लिखने के ढग के बारे मे मेरा सुझाव था कि इस तरह लिखो मानो बातचीत कर रही हो, और बाद मे तमाम लिखी हुई घटनाओ को सकलित कर उनका अच्छी तरह सम्पादन कर डालो। इस तरह उसकी पहली किताब 'कोई शिकायत नही' (विद नो रिग्रेट्स) का लिखा जाना शुरू हुआ। इस किताब के कच्चे लेख मेरे पास जेल मे सम्मति और सुझाव के लिए आते रहे। लौटाते समय मैं याद दिलाता कि अमुक घटना जो तुमने मुझे सुनाई थी, छूट गई है, उसे भी इसमे जोड लो। 'कोई शिकायत नही' सस्मरणो की बड़ी ही सुन्दर और प्यारी पुस्तक है। प्रकाशित होते ही वह हाथोहाथ उठा ली गई और खूब सराही गई। जेल से जवाहर ने लिखा, "बडी ही खूबसूरत और प्यारी किताब है....बिलकुल तुम्हारी ही तरह सहज, ईमानदार, बेलाग और दोस्ताना!" एक अग्रेज समालोचक ने उसके बारे मे अपनी राय दी है, "गहन देश-प्रेम, परन्तु कट्टरता या हठधर्मी का नाम भी नही,.. नारी-सुलभ कोमलता (दया-ममता) एव व्यथा-पीडा के प्रति गहन अनुभूति-प्रवणता सर्वत्र विद्यमान है।"

उसके बाद उसने कई किताबे लिखी; लेकिन प्रस्तुत पुस्तक को पूरा करने की जितनी चिन्ता उसे रही, वह किसी और पुस्तक के समय दिखाई न दी। इन्दिरा के प्रति उसका प्रेम बहुत गहन और उत्कट था। अपनी भतीजी पर वह जान देती थी और हमेशा उसे उसने अपनी बेटी ही समझा।

कृष्णा के पार्थिव शरीर के समक्ष मैंने सकल्प किया था कि प्रस्तुत पुस्तक की समाप्तप्राय पाडुलिपि पर स्वय काम करके उसकी अतिम इच्छा को पूरा करूगा। वह अपने पीछे ढेर-सारे लिखे हुए कागज-पत्तर, टिप्पणिया और मसविदे छोड गई थी। पूरे दो सूटकेस कागजो से भरे

हुए थे। मेरे लिए करने को सिर्फ इतना ही बचा था कि उसकी टिप्पणियो का अनुसरण करते हुए तमाम लिखे हुए को सिलसिले से लगाकर पूरी सामग्री का सम्पादन कर दू।

शुरू के दिनो मे तो उदासी और एकाकीपन मुझपर बुरी तरह हावी रहे, परन्तु धीरे-धीरे मैं इस ओर प्रवृत्त हुआ और उसके काम में जुट गया। उसकी मृत्यु के बाद हमारा प्यारा घर मेरा समाधि-मन्दिर बन गया जहा उसके मधुर स्वर की अनुगूज और प्राणप्रद तेजस्विता प्रतिक्षण मुझे अनुप्राणित और मेरा अनुसरण तथा पथ-प्रदर्शन करती रही। पाडुलिपि का टकन करते समय मुझे बराबर यही लगता रहा मानो वह मेरे पास बैठी है। आशा करता हूं कि उसके मौन निर्देशो को समझने मे मुझसे कही कोई भूल या भ्रान्ति नही हुई है। कभी मै कहा करता था, "आख ओट, मन की ओट।" लेकिन आज तो मै केवल स्मृतियो के ही सहारे जीवित हूं।

—राजा हठीसिंग

विषय-सूची

●

इन्दु से
प्रधानमन्त्री

अल्लाह का फ़ज़ल

•

मेरे भाई जवाहरलाल नेहरू की शादी सोलह बरस की बहुत ही खूबसूरत कमला कौल के साथ, दुलहिन के नैहर, दिल्ली मे १९१६ के मार्च महीने मे हुई। शादी मे शरीक होने के लिए सारे भारत से जो मेहमान आये उनके स्वागत-सत्कार के लिए कई शाही शामियाने लगाये गए, जिनमें ईरानी कालीन और काश्मीरी गलीचे बिछाये गए और सेवा-टहल के लिए जरी-मखमल की भड़कीली वर्दियो मे लकदक नौकर-टहलुओ की पूरी फौज तैनात थी। उस शादी मे खूब शान-शौकत और धूम-धाम रही। बारात दस दिन दुलहिन के यहा ठहरी और हर दिन आनन्दोत्सव होता रहा। फिर जवाहर और कमला विदा होकर इलाहाबाद हमारे घर आनन्द भवन मे रहने आ गए। आनन्द भवन कई कमरोवाली विशाल कोठी थी, जिनमे उन दिनो नेहरू-परिवार की तीन पीढियां एक साथ रहती थी।

कमला और जवाहर की एकमात्र सन्तान—इन्दिरा का जन्म १९ नवम्बर, १९१७ को हुआ। उस रात आनन्द भवन

को खूब दीयों से सजाया गया था। लोगों की चहल-पहल से सारा मकान गुलजार हो उठा था। मेहमानों के सत्कार में जुटे नौकर भाग-भागकर महिलाओ को शर्बत और पुरुपो को स्कॉच और सोडा थमा रहे थे। उस दिन दादा बनने की खुशी मे—उनके प्राणप्यारे जवाहर के बच्चा जो होने जा रहा था—पिताजी को खयाल ही नही रहा, वर्ना वह अवसर के उपयुक्त शैम्पेन की दावत जरूर रखते, जैसाकि उन्होने कुछ दिनों बाद किया।

मैं दस बरस की थी। मैं जानती थी कि कमला के बच्चा होनेवाला है। कई डाक्टर और नर्सें उनकी तीमारदारी में जुटी हुई थी। मैं सौरीघर के करीब रहना चाहती थी, लेकिन मेरी गवर्नेस मिस हूपर ने (जिन्हे हम टूपी कहते थे, क्योकि मै उनके नाम का उच्चारण नही कर पाती थी) मना कर दिया था। तब मैं आंगन के पार बाहर बरामदे में चली आई, जहां से पिताजी चहल-कदमी करते दिखाई दे रहे थे। अम्मां एक दीवान पर अपनी बड़ी बहन (हमारी मौसी) बीवी अम्मां के साथ बैठी थी और दूसरी बहुत-सी औरते उनके पास खड़ी थी—सब-की-सब होनेवाले बच्चे की प्रतीक्षा मे उत्सुक और व्यग्र।

मेरे भाई अकेले और अलग-थलग इस तरह खडे थे, मानो उस सारे शोर-शराबे से उन्हें कोई सरोकार न हो। मगर वास्तव मे वह दबी निगाहो से अक्सर उस बन्द दरवाजे की ओर देख लेते थे, जिसके पीछे उनकी पत्नी प्रसव की पीड़ा भोग रही थी।

उन दिनों भारत मे नई बहू का पहली जच्चगी के लिए अपने माता-पिता के घर जाने का रिवाज था (यह रिवाज

आज भी है, मगर उतना रूढ नही)। इस रस्म के पीछे खयाल यह था कि नैहर में, जहां वह छोटे से बड़ी हुई, उसे अधिक आराम मिलेगा और उतना सकोच भी नही होगा जितना ससुराल में, सास-ननद और जेठानी-देवरानी के बीच, जिन्हें वह शादी के बाद से ही जानने लगी होती है। मगर पिताजी का आग्रह था कि हमारी लाड़ली बहू की पहलौठी हमारे घर पर ही हो। हम खुद सारे इन्तज़ाम की देखभाल कर सकेंगे और मुल्क के बेहतरीन डाक्टर और नर्सें और नई-से-नई चिकित्सा-सुविधाएं मुहैय्या की जा सकेंगी। इसलिए कमला आनन्द भवन में ही रही।

काफी देर बाद, मुझे लगा, जैसे बरसों बीत गए हों। डाक्टर लोग बाहर आये। आगन के पार भागती हुई मैं वहां ठीक समय पर पहुंच गई थी, क्योंकि प्रसव करानेवाला स्काटिश डाक्टर भाई से कह रहा था, "श्रीमानजी, इतनी-सी मुनिया बेटी है।"

सुनते ही अम्मा के मुह से निकला, "अरे, होना तो लड़का चाहिए था !" वह चाहती थी कि उनके इकलौते लाल के घर लड़का हो। अम्मां की बात सुनते ही पास-पडोस मे खड़ी महिलाओ के चेहरे लटक गए। अम्मां का इस तरह जी छोटा करना पिताजी को जरा भी न सुहाया। वह झुझला उठे और लगे झिड़कने, "खबरदार, ऐसी बात मुह से निकाली तो! कभी ऐसा खयाल भी मन में नही लाना चाहिए। क्या हमने कभी अपने बेटे और बेटियों मे कोई फर्क किया है ? क्या तुम सभी-से एक-जैसी मुहब्बत नही करती ? देखना तो सही, जवाहर की यह बेटी हजारों बेटों से सवाई होगी।" वह मारे गुस्से

के पाव पटकते हुए वहा से चले गए। अम्मा ने चुपचाप सिर झुका लिया। अपने पति की झिड़की के कारण वह बुरी तरह सिटपिटा गई थी।

पिताजी ने बच्ची का नाम, अपनी मा के नाम पर, इन्दिरा रखा। मेरी दादी बड़ी ही दबग और दृढ इच्छा-शक्तिवाली महिला थी। अपनी बात का विरोध उन्हें जरा भी बर्दाश्त नही था, यहांतक कि पिताजी की भी उनका कहा टालने की हिम्मत न होती थी। जवाहर और कमला अपनी बेटी का नाम 'प्रियदर्शिनी' रखना चाहते थे। इसका मतलब होता है देखने मे प्रिय, और इसलिए उसका नाम इन्दिरा प्रिय दर्शिनी रखा गया। वास्तव मे वह प्रियदर्शिनी है, हम सबकी प्यारी और पूरे भारत देश की भी प्रिय।

बच्ची का जन्म हुआ, तो मैं खुशी से फूली न समाई। वह बहुत नन्ही-मुन्नी, पर शुरू से ही सुडौल थी—बड़ी-बड़ी आंखे और सिर पर घने काले बाल। उम्र के साथ हम दोनों के पारस्परिक स्नेह-दुलार, समझ और सम्मान-भावना मे वृद्धि होती गई।

इन्दिरा कुछ ही दिन की हो पाई थी कि पिताजी ने उसे हमारे घर के खास इन्तजामकार मुन्शीजी के पास ले चलने का प्रस्ताव किया। ये बुजुर्गवार पिताजी के सबसे बडे और भरोसे के मुन्शी थे। उनके मातहत घर के पचास नौकर, अस्तबल के बाईस घोडे और अट्ठारह-बीस कुत्ते थे, जिनमे कुछ शिकारी, कुछ पहरुए और बाकी योही पालतू थे। मुन्शीजी हमारे ही अहाते की एक बगलिया मे अपनी बीवी और बेटे के साथ रहते थे।

परिवार में उनका वही रुतबा और इज्जत थी जो एक दाना बुजुर्ग की होती है। हम बच्चो के वह प्यारे, मृदुभाषी और मेहरबान चाचा थे। परन्तु मौका पड़ने पर सख्ती से पेश आना भी खूब जानते थे। गर्मियों के मौसम मे, रात के समय मैं और मेरे चचेरे भाई-बहन उन्हें घेर कर बैठ जाते और पुराने जमाने के वीर-वीरांगनाओं की कहानियां सुनते। कहानियो के वे लोग कितने बहादुर होते थे—इतने बहादुर कि उनपर यकीन ही न हो सके। मुन्शीजी के पास कहानियों का अखूट खजाना ही था—हर कहानी एक-से-एक बढ़कर और जोशीली; हर एक साहस, सचाई और वीरता की शिक्षा से ओतप्रोत, जिसे हमारे मन पर अकित करना मुन्शीजी कभी न भूलते और हम सब बच्चे दम साधे चुपचाप सुना करते।

इन्दिरा के जन्म से कुछ समय पहले मुन्शीजी को कैन्सर की खतरनाक बीमारी लग गई थी। पिताजी ने उनके इलाज में कोई कसर न छोड़ी। विशेषज्ञो को दिखलाया, उनसे सलाह-मशविरा किया और बढिया-से-बढिया दवा-दारू का इन्तजाम किया। हर शाम हाईकोर्ट से घर लौटते समय वह एक बार उनकी बगलिया में जरूर जाते, चाहे कुछ मिनटों के ही लिए क्यो न हो ! अम्मां तो दिन मे कई-कई बार जातीं और कमला भी।

डाक्टरों को इस बात की हिदायत कर दी गई थी कि रोगी को रोग की भीषणता के बारे में भूलकर भी न बतायें, मगर मुन्शीजी को जाने कैसे पता चल गया था कि अब वह अच्छे न होगे। एक दिन पिताजी उन्हे देखने गये, तो वह असह्य पीड़ा से छटपटा रहे थे। पिताजी को घबड़ाते देख मुन्शीजी

ने बड़ी हिम्मत के साथ मुस्कराते हुए कहा, "भाई साहब, आप कतई फिक्रमन्द न हों। जवाहरलाल की औलाद को अपनी गोद मे लेकर दुआ देने के बाद ही मैं मरूंगा, उसके पहले नही। उसी मुबारक दिन के लिए तो जी रहा हूं।"

और आखिर वह 'मुबारक दिन' भी आया। एक कीमती काश्मीरी शाल में लपेटकर दाई इन्दिरा को अम्मा और बीबी-अम्मां के साथ मुन्शीजी के पास ले चली। ठीक उसी वक्त पिताजी भी उनकी बगलिया में पहुंचे।

ज्योंही लाल-गुलाल गोरी बालिका मुन्शीजी के फैले हुए हाथों में दी गई, उन बुजुर्गवार की खुशी का पार न रहा। जब सिर उठाकर उन्होने मेरे माता-पिता को वात्सल्य भरे स्वर में बधाई दी, तो आंखों से स्नेह के आंसू उनकी सफेद दाढ़ी पर ढुलक रहे थे। उन्होने कहा, "मुबारक हो, भाई और भाभी साहेबा! अल्लाह का फ़जल हो इस बच्चे पर। दुआ करता हूं कि जिस तरह हम सबके प्यारे जवाहर ने आपकी शान में इज़ाफा किया, उसी तरह यह भी अपने वालिद और नेहरू-खानदान का नाम-रोशन करे।"

मुन्शीजी को बता दिया गया था कि जिस बच्चे को वह दुआ दे रहे है, वह लड़की है, फिर भी वह उसे मोतीलाल नेहरू का पोता मानकर ही आसीसते, बलाए लेते और दुआए देते रहे।

२

कुलीन वंश

हम काश्मीरी ब्राह्मण हैं। हमारे पूर्वपुरुष राज कौल (कमला कौल के परिवार से भिन्न) मुगल बादशाह फर्रुख-सियर के दरबार मे काश्मीर से आये थे। फर्रुखसियर उनकी विद्वत्ता से बहुत प्रभावित था। उसने उन्हे दिल्ली मे एक नहर के किनारे रहने के लिए मकान भेंट किया था। नहर के किनारे रहने के कारण हमारा परिवार दिल्ली मे कौल-नहर के नाम से मशहूर हुआ। कालान्तर मे कौल-नहर का कौल-नेहरू हो गया और समय के साथ कौल हटकर सिर्फ नेहरू बचा और यों हम नेहरू कहलाने लगे।

मेरे परदादा लक्ष्मीनारायण नेहरू ईस्ट इण्डिया कम्पनी के दरबार मे अन्तिम मुगल सम्राट के वकील थे, लेकिन १८५७ के विद्रोह मे उनके बेटे के परिवार की सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गई और उन लोगो को बहुत-से शरणार्थियों के साथ दिल्ली से भागना पड़ा। सुरक्षा की खोज मे आगरा की ओर बढते हुए मेरे एक बाबा और उनकी छोटी बहन अकस्मात् फिरंगी सैनिको के चंगुल मे फंस गए। काश्मीरी लोग आम-

तौर पर बहुत गोरे होते हैं, इसलिए फिरगी सैनिको को यह भ्रम हो गया कि नन्ही लड़की अंग्रेज है और बाबा उसे भगाये लिये जा रहे हैं। वह फांसी पर चढा ही दिये जाते, लेकिन भाग्य से अंग्रेजी भाषा का ज्ञान काम आया और जान बच गई।

मेरे दादा गगाधर नेहरू आगरा मे बस गए। उनके तीन लड़के थे--सबसे बडे बशीधर, जिन्होने ब्रिटिश शासन-काल में न्याय विभाग मे महत्त्वपूर्ण पदो पर काम किया। नौकरी मे स्थानान्तर होते रहने के कारण पारिवारिक जिम्मे-दारियों को निभाना उनके लिए सम्भव नहीं था। दूसरे बेटे नन्दलाल राजस्थान मे खेतडी रियासत के दीवान थे। उन्ही दिनों उनके छोटे भाई मोतीलाल का जन्म हुआ।

मेरे पिता मोतीलाल नेहरू का जन्म ६ मई, १८६१ को हुआ। दादा गगाधरजी को अपने सबसे छोटे बेटे का मुँह देखना नसीब न हुआ—पिताजी के जन्म के तीन महीने पहले ही उनकी मृत्यु हो गई थी। पिताजी का लालन-पालन मेरे छोटे ताऊ नन्दलालजी ने किया। जन्म से ही पिताजी उम्र मे अपने से बहुत बडे भाई के पास रहे और ठाठ से रहने का शौक भी शायद वही खेतड़ी के राजा के दरबार मे रहने के कारण पड़ा। दादी उन्हे बहुत चाहती और सिर चढाये रहती। ऐसे मे बच्चे का जिद्दी और गुस्सैल होना स्वाभाविक है। पिताजी भी बचपन मे बहुत गुस्सैल थे। यह चारित्रिक विशेषता नेहरूओं मे परम्परागत है, क्योंकि अपनी तेज़मिजाजी के लिए हम सभी नेहरू प्रसिद्ध हैं।

खेतड़ी रियासत में दस बरस दीवानगिरी करने के बाद

नन्दलाल कानून पढने के लिए आगरा लौट आये और पढ़ाई खत्म कर हाईकोर्ट मे वकालत करने लगे। जब वहां से उठकर अदालत इलाहाबाद चली आई तो यह पुरातन नगर नेहरू-परिवार का घर बन गया।

पिताजी की स्कूली शिक्षा कानपुर में हुई। जब इलाहाबाद कालेज में पढते थे, तो शरारती लडकों की जमात के बराबर अगुआ बने रहे। लेकिन कानून की पढाई मन लगाकर की और बहुत अच्छे नम्बरो से पास हुए। उन्हे शुरू से ही पश्चिमी तौर-तरीके और यूरोपीय वेशभूषा बहुत पसन्द थी, जिन्हे उस जमाने के अधिकांश भारतीय अच्छा नही समझते थे। वकालत का पेशा उन्होने कानपुर की जिला कचहरी मे तीन बरस की उम्मीदवारी के रूप मे शुरू किया, और फिर इलाहाबाद आकर हाईकोर्ट मे प्रैक्टिस करने लगे। इसके कुछ ही दिनो बाद उन्होने सत्रह बरस की स्वरूपरानी तुस्सू से शादी की, जो बहुत ही सुन्दर, सुशील और गुणवती थी।

जब नन्दलालजी की मृत्यु हो गई, तो उनकी विधवा पत्नी, पाच बेटो और दो कन्याओ के भरण-पोषण का भार पिताजी ने वडी तत्परता से उठाया। वह अपने भतीजों और भतीजियो को उतनी ही ऊची शिक्षा देना और अच्छे काम-धन्धे से लगाकर व्यवस्थित कर देना चाहते थे, जैसा नन्दलालजी ने उनके लिए किया था। इस इच्छा से प्रेरित होकर वह कमाने मे जुट गए। कडे परिश्रम और सूझ-बूझ के कारण वकालत का उनका पेशा दिनोदिन तरक्की करता गया।

१८८९ मे, जिस वर्ष जवाहर का जन्म हुआ, पिताजी

उतने सम्पन्न नही थे और शहर के अन्दर पक्के मुहाल में रहते थे। १८९० के बाद के वर्षो में आमदनी बढ़ी और वह सिविल लाइन्स में रहने चले आये, जहा यूरोपियन और यूरेशियन लोग रहते थे। पिताजी की कानून की पकड़ बहुत अच्छी थी और वह मेहनत भी डटकर करते थे, इसलिए आमदनी भी खूब होने लगी। विरासत-सम्बन्धी हिन्दू कानून का उनका ज्ञान अद्भुत था और लाखन रियासत के उत्तराधिकारवाले एक मुकदमे मे ही उन्हें बहुत-सा रुपया मिला था।

१९०० में मेरी बहन स्वरूप का जन्म हुआ। उसका पुकारने का नाम 'नान' रखा गया, जो नन्ही का छोटा रूप है। उसी साल पिताजी ने एक बहुत बड़ी, पुरानी और शानदार कोठी खरीदी, जिसके अन्दर काफी लम्बा-चौड़ा दालान था। पिताजी ने इस कोठी का नया नाम रखा 'आनन्द भवन' और इसे अपनी रुचि के अनुसार आवश्यक परिवर्तन-परिवर्धन कर सजाया-संवारा और अपने बड़े परिवार के साथ उसमें सुखपूर्वक रहने लगे।

बरामदो से, कोठी के चारों ओर अहाते मे, बागीचे की बहार देखते ही बनती थी। ऊचे-ऊचे जैक टैंडा वृक्ष अपनी नील-पुष्प-गुच्छ-मंडित फुनगियां साधे झूमते रहते, उनके नीचे ग्लेडियोलस, नरगिस, स्वीटपीज और गुलाब के रग-विरगे फूलो की सुगन्धभरी प्रचुरता मन को मोहित करती रहती; लम्बे, समतल, हरियाले लानो मे गुलमोहर के चटक लाल-पीले-नारगी फूलो के बेलबूटों की नयनाभिराम छटा का अलग ही मजा रहता; और रग-विरंगे डैनोवाले तोते, मैना, ठठेरे

आदि सैकड़ों पक्षी अपने मधुर कलरव से बागीचे को गुंजाते और उसकी शोभावृद्धि किया करते थे।

मेरे बचपन में पिताजी की वकालत अपनी चरम सीमा पर थी और वह खर्च भी जी खोलकर करते थे। जरूरत के समय के लिए बचाकर रखने मे उनकी कोई रुचि नही थी। कहते थे, जब जी चाहेगा और जितनी भी जरूरत होगी, कमा लेगे। वह लोगों का शानदार स्वागत-सत्कार और ठाठ-दार दावते करते थे। उस जमाने के फैशन के अनुसार विक्टो-रियन साज-सामान से सज्जित उनका शाही दीवानखाना देश-विदेश के महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों से भरा रहता था, जिनमें नामी वकील, प्रसिद्ध कलाकार, चोटी के खिलाड़ी और पिताजी के मुवक्किल राजा-महाराजा भी होते थे। खाने की मेज पर बिल्लौरी कांच और बढ़िया चीनी मिट्टी के बरतनों मे मेह-मानो को भोजन परोसा जाता और ताज़े सुगन्धित फूलों के फूलदान सजाये जाते। सभी तरह के देशी-विदेशी मेहमानों को उनकी रुचि की बढिया-से-बढ़िया शराबे पेश की जाती। कही गम्भीर चर्चाएं होती, कही हँसी-मजाक और लतीफा-गोई, और सबके ऊपर पिताजी के प्रसन्न ठहाके गूजते रहते, जो दूसरों को भी बरबस हँसने-खिलखिलाने के लिए प्रेरित कर देते थे। इन सब कारणों से उन दिनों हमारा घर सामा-जिक जीवन का केन्द्र ही बन गया था।

उन दिनो पिताजी वकालत में इतना नाम और धन कमाने मे लगे थे कि भारतीय राजनीति की ओर ध्यान देने को न उनके पास समय था और न रुचि। पहले, अपनी बीसी-पचीसी मे, उन्होंने राष्ट्रीय कांग्रेस की कुछ बैठकों मे भाग

लिया था, लेकिन वहां उनका मन रमा नही।

राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना १८८५ में एलन ह्यूम नामक एक अग्रेज आई० सी० एस० ने की थी। बाद में इस सस्था को लार्ड कर्जन का आशीर्वाद प्राप्त हुआ, जो १८९९ में भारत का वाइसराय बना। उसकी राय में भारत की जनता के असन्तोष को व्यक्त करने का यह संस्था एक बढिया माध्यम थी। भारत के अंग्रेजी बोलने-समझनेवाले मध्यमवर्ग के लोगो को यह संस्था बहुत पसन्द आई। मेरे पिताजी ने १८८८ और १८९२ में इसकी बैठको में प्रतिनिधि के रूप मे हिस्सा लिया और १९०२ मे उसकी कार्यसमिति के सदस्य बन गए। उन दिनो कांग्रेस हर साल एक जलसा करने और छोटी-मोटी शिकायतो की ओर ब्रिटिश सरकार का ध्यान आकर्षित करनेवाले कुछ प्रस्ताव पास करने और प्रार्थना-पत्र भेजने से अधिक कुछ नही करती थी। १९०५ मे लार्ड कर्जन ने प्रशासकीय सुविधा के लिए बंगाल के सूबे को दो हिस्सों में बांटने की घोषणा की, तबतक पिताजी ने भी कांग्रेस के काम में नरम प्रस्ताव पास करने और प्रार्थना-पत्र भेजने से अधिक कोई रुचि नही दिखाई। बंटवारे की घोषणा से बगाली लोग बहुत नाराज हुए। आतकवाद की लहर और ब्रिटिश माल के बहिष्कार का आन्दोलन भारत के अन्य प्रान्तो मे भी फैल गया। लार्ड कर्जन को अपना आदेश वापस लेना पड़ा और बंगाल फिर एक हो गया, लेकिन देश में असन्तोष और बेचैनी का वातावरण बराबर बना रहा।

कांग्रेस में पिताजी का सम्बन्ध माडरेटो (उदारवादियों) से था, इसलिए वे शिकायतो को सवैधानिक ढंग से ही हल

करने के पक्ष में थे और उग्रवादियों के क्रान्तिकारी कार्यो का कड़ा विरोध करते थे। १९०७ में इलाहाबाद मे संयुक्त प्रान्त का प्रादेशिक सम्मेलन हुआ। उसके अध्यक्ष की हैसियत से पिताजी ने जो भाषण दिया, उससे उनके विचारो को काफी समर्थन प्राप्त हुआ। लेकिन गर्म विचार के—उग्र राष्ट्रवादी—अखबार उनपर पिल पडे। जवाहर उन दिनों ट्रिनिटी कॉलेज, कैम्ब्रिज मे पढ रहे थे। उन्होंने भी पत्र लिखकर पिताजी को खूब आड़े हाथो लिया और उन्हे 'घोर उदारवादी' तक कह डाला। पिताजी इससे बहुत नाराज हुए। उन्ही दिनों उनके दिल को चोट पहुंचानेवाली एक बात और हुई। मुन्शीजी के अट्ठारह वर्ष के बेटे मजरअली आतकवादी आन्दोलन मे शरीक हो गए। उन्होने मजर को बुलवा भेजा और आदेश दिया कि फौरन आतकवादियो से नाता तोड़ लो।

मुन्शीजी अपने बेटे को वकील बनाना चाहते थे, जिससे हमारी ही तरह १८५७ के विद्रोह मे नष्ट उनकी पारिवारिक सम्पत्ति की क्षतिपूर्ति हो सके। मुन्शीजी के प्रति अत्यधिक स्नेह और सम्मान होने के कारण पिताजी ने उन्हें अपना वह पत्र दिखाया, जो उन्होने उस गुमराह बेटे के नाम लिखा था। मुन्शीजी ने भरे दिल से स्वीकृति दी। पिताजी ने लिखा था .

प्रिय मंजर अली,

अपने बारे मे मेरे रवैये को तुम शायद ठीक तरह समझ नही पाये हो, इसलिए खत लिखने का फैसला किया है, ताकि तुम्हारे वालिद से मैंने जो-कुछ कहा, उसके बारे मे कोई बद-गुमानी न हो। मेरी राय थी कि कालेज बन्द हैं, चुनांचे तुम्हें छुट्टियां बिताने के लिए फिलहाल इलाहाबाद के बाहर चले

जाना और यों अपने को यहां के असर से बचाना वाजिब होगा। तुम्हारे वालिद को एक पुर्जा भेजकर मैंने यह मन्शा भी जाहिर किया था कि जबतक पढाई कर रहे हो किसी भी सियासी जल्से मे, चाहे वह आम हो या खास, तुम्हारा शिरकत करना ठीक नही। अगर यह मंजूर न हो, तो बेहतर होगा कि अपना इन्तजाम अपने आप करो, मगर उस सूरत मे (जैसाकि तुम्हारे वालिद से कह चुका हूं) आनन्द भवन मे रह नही सकते।

इतना समझ लो कि तुम्हारी जगह मेरा अपना बेटा होता तो इन हालात मे मैंने उससे भी ठीक यही सलूक किया होता। फर्क सिर्फ यह होता कि मैं उसे इस हद तक हर्गिज न जाने देता, जबकि तुम्हारी कार्रवाइयो के बारे में मुझे भनक भी न पड़ी। वजह इतनी ही है कि इधर तुम्हारा मुझसे कोई ताल्लुक नही रहा, हालांकि पूरे वक्त तुम मेरे साथ एक ही मकान मे रहते रहे।

न मैं चाहता हूं, और न तुमसे उम्मीद है, कि महज मुझे खुश करने के लिए अपने खयालात को, वे मुझसे कितने ही मुख्तलिफ क्यों न हो, तब्दील करो। लेकिन यह हक तो मुझे है ही कि अपने घर मे रहनेवाले हर शख्स से ऐसे बर्ताव की उम्मीद करू, जिससे मेरी और मेरे घर की बदनामी-बुराई न हो। यहां मेरा इरादा मौजूदा सियासी रुझानो की चर्चा करने का कतई नही है। मैं यह पेचीदा सवाल भी नहीं उठाना चाहता कि तालिबइल्मो (विद्यार्थियो) को मौजूदा सियासी हलचलो में हिस्सा लेना चाहिए या नही। मेरा वास्ता तो सिर्फ एक विद्यार्थी से है और मैं जानता हूं कि

उसका सियासत में हिस्सा लेना न उसके अपने हक मे है और न उसके मुल्क के ही ।

क्या तुम्हारे दिलोदिमाग मे यह बू तो नही भरी हुई है कि अपनी पढाई से मुंह मोड़कर और सियासी जल्सो में शिरकत करके तुम अगले अट्ठारह महीनो मे हिन्दुस्तान को आजाद करा लोगे ? मैं तुम्हे हालात पर गौर और अपने किये पर अफसोस जाहिर करने का मौका देता हूं । मैं यह माग नहीं करता कि अपने उसूलो को छोड दो या अपने खयालात के बरखिलाफ काम करो । मैं तो सिर्फ इतना चाहता हू कि खुद अपने तई, अपने वाल्दैन के तई, अपने रिश्तेदारो, दोस्तों और मुल्क के तई तुम्हारा जो पहला फर्ज है उसे समझो और सबसे पहले उसीको पूरा करो, और मैं यह भी चाहता हूं कि जग मे कूदने से पहले अपने-आपको जरूरी हरबो-हथियार मे लैस करो । अब यह पूरी तरह तुमपर मुनस्सर है कि मौके का इस्तेमाल करो या उसे धता बताओ । मैने अपना फर्ज अदा किया ।

तुम्हारा अजीज,
भाईजी

लेकिन मंजरभाई दृढ आस्थावाले युवा सुधारक थे और विदेशी शासन से भारत को मुक्त कराने का पक्का फैसला कर चुके थे । उन्होने पिताजी की सलाह न मानी और घर छोड़कर चले गए । वह गये उसी साल मेरा जन्म हुआ और मैंने

उन्हे पहली बार उस समय देखा जब वह गांधीजी के कट्टर अनुयायी के रूप मे गांव-गांव अहिंसा और असहयोग के सन्देश का प्रचार करते हुए, वर्षो बाद, घर लौटे थे।

मेरे पिताजी अपनी गृहस्थी के बड़े ही उदार, सूझ-बूझ-सम्पन्न, सभी का पूरा खयाल रखनेवाले, अनुशासन के मामले में कट्टर और आज्ञाकारिता के मामले मे कठोर स्वामी और शासक थे। मेरे सात चचेरे भाई-बहन उनके साथ रहते थे, जिन्हे उन्होने कभी पराया नही समझा, हमेशा अपने बच्चो-जैसा ही माना। वे सब भी उनसे खूब स्नेह करते और हर काम मे उन्ही के सलाह-मशविरे से चलते-बरतते थे। कभी-कभी मुझे अपने चचेरे भाइयो के साथ खेलने की अनुमति मिल जाती थी। हमारा लालन-पालन बडे कठोर अनुशासन में हुआ—भाई के अंग्रेज ट्यूटर थे मि० ब्रूक्स, मेरी और बहन की अंग्रेज गवर्नेस थी कुमारी हूपर। ठीक सात बजे मुझे सोने के लिए भेज दिया जाता था और इसलिए मैं रात मे पिताजी के घर लौटने के समय उपस्थित नही रह पाती थी। अम्मा से भी हम ज्यादा नही मिल पाते थे, क्योकि स्वास्थ्य अच्छा न रहने के कारण वह अक्सर अपने कमरे मे ही रहती थी।

जवाहर की शादी से हमारे परिवार मे एक नये और सबके दुलारे सदस्य का आगमन हुआ। मैं सिर्फ नौ बरस की थी और उस उम्र में कमला को भाभी के रूप मे लेना मेरी बुद्धि के बूते के बाहर की बात थी, न उन्होने मुझे कभी ननद समझा। वह मेरे साथ बेटी जैसा ही व्यवहार करती थी। लेकिन नान और कमला समवयस्क थी और आपस मे ननद-भौजाई-जैसा व्यवहार करती और एक-दूसरे से कतराती

भी थी ।

इन्दिरा का जन्म उसके माता-पिता, दादा-दादी, चाचियो, ताइयो और बुआओ सभीके लिए, और खासतौर पर मेरे लिए तो बड़ी ही खुशी और आनन्द का दिन था । स्काटिश डाक्टर के वे सुखदायी शब्द 'श्रीमान् , इतनी नन्ही-मुन्नी-सी बिटिया है', ऐसे लगे मानो मन्दिरों के मगलवाद्य बज उठे हो । मैंने उसे अपनी छोटी बहन के ही रूप मे देखा और समझा । इन्दिरा के पैतृक और मातृक दोनो ही परिवार कुलीन हैं और उसे दोनो ही कुलो की श्रेष्ठतम परम्पराएं विरासत मे मिली है । उसके पिता सुन्दर-सुशोभन और अति-सवेदनशील, परम विद्वान और बुद्धिशाली तथा उच्च ध्येय के प्रति समर्पित आदर्शवादी व्यक्ति थे, मां परम सुन्दरी, कुसुम से भी कोमल और वज्र से भी कठोर, स्वाधीनता के उसी उच्चतम ध्येय के प्रति लगनशील वीरागना थी, दादा प्रख्यात वकील, अदम्य इच्छाशक्तिवाले और संकट के समय सैकड़ो-हजारो की सहायता के लिए तत्पर उदार हृदय पुरुष थे, दादी इतनी मनस्वी थी कि दुर्बल स्वास्थ्य के बावजूद बुढापे मे भी क्रान्तिकारी कार्य मे हमेशा अग्रसर रही ।

इन्दिरा का मातृ-कुल भी उतना ही संस्कारशील और उच्च परम्पराओंवाला है । उसके नाना जवाहरमल अपने समय के दिल्ली के प्रमुख और सम्मानित व्यापारी थे और सुन्दर इतने कि देखनेवालो की भूख-प्यास मिट जाती थी । नानी भी वैसी ही आकर्षक, सहानुभूति प्रवण और सभी की प्यारी थी । मेरे पिताजी ने दर्जनो काश्मीरी परिवारो को छान-कर अपने बेटे के लिए सर्वथा उपयुक्त बहू का चुनाव किया था ।

३

महात्मा गांधी हमारा जीवन बदलने आये

जिस प्रथम महायुद्ध को मित्र-शक्तियो ने 'विश्व को जन-तंत्र के लिए निरापद बनाने की लड़ाई' कहा था, वह १९१८ के नवम्बर महीने मे समाप्त हो गया। उसके कुछ ही दिनो बाद मार्च १९१९ मे, ब्रिटिश पार्लमेंट ने जनतत्र-सबधी अपने वादो को भुलाकर रौलट एक्ट पास कर दिया। इस काले कानून के अन्तर्गत भारत से वे नाममात्र के अधिकार भी छिन गए, जो ब्रिटिशराज मे उसे प्राप्त थे। अब स्वतत्रता नाम को भी नही रह गई। जनता क्रुद्ध हो उठी, क्योकि इस कानून के द्वारा ब्रिटिश शासको को भारत में "राजनैतिक हिसा का दमन करने का बेलगाम अधिकार" दिया गया था। कानूनी खानापूरी के बिना ही अन्धाधुन्ध गिरफ्तारियां की जाने लगीं। पुलिस बिना किसी पूर्व-सूचना या चेतावनी के सभाओ को तितर-बितर कर देती, उनमें भाग लेनेवालो पर लाठियां चलती और गोलियां बरसाई जाती। इस काले कानून के विरुद्ध देश में जो तीव्र सघर्ष छिड़ा, उसने मोहनदास करम-चन्द गांधी को राष्ट्र का नेता बना दिया। देशवासी उन्हें

प्यार और आदर से महात्मा गांधी कहने लगे।

गांधीजी २१ वर्ष दक्षिण अफ्रीका में बिताकर १९१५ में भारत लौटे थे। वहां उन्होने ट्रान्सवाल और नेटाल की भारतीय बस्तियों मे बरती जानेवाली भेदभाव की नीति और दुर्व्यवहार के विरोध मे जनरल स्मट्स की सरकार के खिलाफ 'अहिंसात्मक निष्क्रिय प्रतिरोध आन्दोलन' चलाया था। अपने इस आन्दोलन का नाम उन्होने 'सत्याग्रह' रखा, जो संस्कृत भाषा का शब्द है और जिसका अर्थ होता है 'सत्य के प्रति आग्रह'।

प्रथम महायुद्ध के दौरान गांधीजी ने किसी तरह का राजनैतिक विरोध नही किया, उलटे एक एम्बुलेन्स-दल बनाकर युद्ध मे ब्रिटिश सरकार की सहायता की। लेकिन १९१९ मे जब रौलट एक्ट लागू किया गया, तो वह फौरन ब्रिटिश दमन-नीति का विरोध करने में जुट गए। उन्होने 'सत्याग्रह-सभा' बनाई और जनता से उसमें शरीक होने की अपील की। इस सभा के सदस्यों को प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि वे अन्यायपूर्ण कानूनो को नही मानेगे और सविनय अवज्ञा के लिए जेल जायगे।

गांधीजी के इस कार्यक्रम के विवरण समाचार-पत्रों मे प्रकाशित हुए और जवाहर को पहले-पहल अखबारों से ही इसकी जानकारी मिली। असहयोग के द्वारा राजनैतिक सुधार और सरकार बदलने की बात ने फौरन उनका ध्यान आकर्षित किया।

"उलझन मे से आखिर रास्ता निकला—एक तरीका जो सीधा और खुला और शायद कारगर भी था। मेरे जोश का

पार न रहा और जी चाहा कि फौरन सत्याग्रह-सभा में शरीक हो जाऊ। कानून तोडने, जेल जाने, आदि के नतीजों के बारे मे मैंने ज़रा भी गौर नही किया, और अगर करता भी तो मुझे परवा न थी। मगर फौरन मेरा जोश ठण्डा पड़ गया और मैंने महसूस किया कि मामला उतना आसान नही है। मेरे पिताजी इस नये विचार के सख्त खिलाफ थे। नये प्रस्तावों और विचारो के बहाव में बहने की उनकी आदत नही थी। नया कदम उठाने से पहले उन्होंने नतीजों पर खूब अच्छी तरह गौर किया और जितना ही गौर किया, सत्याग्रह-सभा और उसका कार्यक्रम उन्हें उतना ही कम पसन्द आया।"[1]

पिताजी को विश्वास ही नही होता था कि मुट्ठीभर लोगों के जेल चले जाने से देश का भला हो सकता है। इस बात को लेकर उनमे और जवाहर मे अक्सर बहसे होती, जिससे हमारे घर की शान्ति हो भग हो गई थी। हर स्थिति मे से रास्ता निकालने में कुशल मेरे पिताजी ने आखिर इसका हल भी खोज ही लिया—उन्होंने गांधीजी को ही आनन्द भवन बुलाया। इस तरह गाधीजी हमारे यहां पहली बार आये, और तब से उनका और नेहरू-परिवार का पारस्परिक स्नेह क्रमशः गाढ़ा होता गया।

लम्बी चर्चाओ के दौरान पितीजी और गांधीजी ने भारत की समस्याओं के अपने-अपने हल प्रस्तुत किये। लेकिन अन्त में उनकी चर्चा जवाहर पर केन्द्रित हो गई, क्योकि पिताजी किसी ऐसे अकाट्य तर्क की खोज में थे, जिससे जवाहर को सत्याग्रह-सभा में शामिल होने से रोका जा सके। इसीलिए तो गांधीजी को उन्होंने अपने यहां बुलाया था। गांधीजी

बिल्कुल ही नही चाहते थे कि इस सवाल को लेकर पिता-पुत्र मे मनमुटाव हो, इसलिए वह पिताजी की इस राय से सहमत हो गए कि जवाहर को जल्दबाजी मे कोई फैसला नही करना चाहिए। लेकिन गांधीजी की यह सलाह बेकार ही साबित हुई, क्योकि जल्दी ही घटना-क्रम ने ऐसा मोड़ लिया, जिससे सब-कुछ गड़बड़ा गया; और वह लोमहर्षक घटना थी पंजाब के एक शहर अमृतसर में निहत्थे लोगो पर गोरी हुकूमत का खूनी हमला।

इलाहाबाद से गांधीजी अपने आन्दोलन को वेग देने के लिए दिल्ली चले गए। वहां उन्होंने रौलट एक्ट को रद्द करने की मांग के समर्थन मे ३१ मार्च, १९१९ को एक देशव्यापी आम हड़ताल की घोषणा की। भारी सख्या मे लोग उनकी सभा में शरीक हुए और हडताल करने के उनके आह्वान को वडे ध्यान और उत्साह से सुना। जनता के इस जोश से ब्रिटिश हुकूमत घबरा गई और उसने गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया।

गांधीजी के गिरफ्तार किये जाते ही दिल्ली और दूसरे शहरो मे उपद्रव शुरू हो गए। सभा करने और जुलूस निकालने पर फौरन पाबन्दी लगा दी गई। लेकिन इससे लोगो के गुस्से और जोश मे कोई फर्क नही पड़ा और न उन्हे यही पता चला कि गांधीजी फौरन छोड़ भी दिये गए। १३ अप्रैल को कई हज़ार स्त्री, पुरुष और बच्चे अमृतसर के जलियावाला बाग मे इकट्ठे हुए। यह चारों ओर ऊंची-ऊंची इमारतो से घिरा एक खुला मैदान था, जिसमें आने-जाने के लिए सिर्फ एक ही रास्ता था। जनरल डायर ने, जिसे इस सभा को भंग

करने के लिए भेजा गया था, रास्ते की नाकेबन्दी कर अपने सैनिको को गोली चलाने का हुक्म दे दिया। गोलीबारी मे सैकडो मारे गए और हजारों घायल हुए। जनरल डायर को इतने से ही सतोष न हुआ, गोलीबारी के बाद मार्शल लॉ के दौरान उसने जी भरकर अत्याचार किये—राह चलते लोगो को सरेआम कोडे लगवाये और उन्हे सड़क पर पेट के बल रेगने को मजबूर किया। इसके साथ ही जले पर नमक छिड़कनेवाली बात यह हुई कि 'इंग्लैण्ड की महिलाए' नामक किसी समूह या समिति ने उसे इन अमानुषी कृत्यों के सम्मानार्थ सोने की तलवार भेट करने के लिए चन्दा किया। फिर भी मार्च १९२० मे उसे अपने पद से इस्तीफा देना ही पड़ा।

अहिसा के हामी गांधीजी इस तरह की हिसात्मक कार्रवाइयो से इतने दुखी हुए कि उन्होने सत्याग्रह-आन्दोलन ही बन्द कर दिया। लेकिन इसका एक अच्छा परिणाम यह हुआ कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस असहयोग की उनकी नीति की समर्थक हो गई।

निहत्थी और निरीह जनता के इस कत्लेआम ने पिताजी के विचारों मे आमूल परिवर्तन कर दिया। वह गांधीजी के प्रबल प्रशसक और जवाहर के मत के अनुकूल हो गए। उनका विचार-परिवर्तन इतने नाटकीय ढंग से हुआ कि वह अच्छी चलती हुई वकालत को लात मार जी-जान से राजनीति में कूद पडे। जब कांग्रेस ने अधिकृत जानकारी के लिए जलियांवाला बाग-हत्याकाण्ड की जांच-समिति नियुक्त की तो पिताजी और जवाहर गांधीजी के साथ उस समिति के सदस्य की हैसियत से जांच के लिए अमृतसर गये।

घटना-क्रम ने हमारे परिवार का जीवन-प्रवाह ही बदल दिया। कहां तो हमारे खाने की टेबुलों पर बढिया किस्म के देशी-विदेशी खानो के दौर चलते थे और कहां अब बहुत ही सादगीपूर्ण भारतीय भोजन थालियो मे परोसा जाने लगा! चार-छः कटोरियो में सालन, दाल, एक-दो सब्जियां, दही, अचार और चटनी के साथ चपातिया या पराठे, चावल और अन्त में एक मिठाई—बस अब यही हमारा भोजन था।

अब न वह गपशप होती और न हँसी-मजाक ही। उनकी जगह ठस राजनैतिक चर्चाओं के गम्भीर वातावरण ने ले ली थी। हा, पिताजी जरूर कभी मजाक कर बैठते और उनका बुलन्द कहकहा सारे घर को गुजा देता। मकान में मेहमानों का तांता लगा रहता और कोई-कोई तो हफ्तो डेरा जमाए रहते। अब आमतौर पर सभी आनेवाले गांधीजी के अनुयायी और खद्दरधारी होते थे। गाधीजी के सिवा, जो जब भी इलाहाबाद आते, हमारे यही ठहरते, आगन्तुकों मे खिलाफत-आन्दोलन के नेता-द्वय मौलाना मोहम्मद अली और उनके भाई शौकत अली, (जो दोनो ही अब कांग्रेस मे शामिल हो गये थे) हमारे परिवार के डाक्टर और मित्र डाक्टर अन्सारी, भारत के लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल और मौलाना अबुल-कलाम आजाद होते थे। बड़ी ही शाइस्ता जुबान बोलनेवाले आज़ादसाहब बात-बात मे उर्दू-फारसी के शेर कहते और पिताजी से उनकी खूब घुटती थी, क्योंकि पिताजी भी फारसी के विद्वान् थे। दोनो की बाते सुनने मे हमे बड़ा मजा आता था। और अक्सर कवयित्री सरोजिनी नायडू भी आती, जो अपनी हाजिर-जवाबी और मीठी बातो से सबका मन मोह

लेती थीं। कुछ लोग सिर्फ राजनैतिक चर्चा के ही लिए आते थे, शायद यह योजना बनाने के लिए कि ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ कांग्रेस का अगला कदम क्या होना चाहिए।

रात हो या दिन, हमारे घर पुलिस का झपट्टा कभी भी लग जाता—किसीको गिरफ्तार करने या छोटे-मोटे जुर्माने में कीमती कालीन या कोई सामान जब्त करने के लिए, क्योकि सत्याग्रही होने के कारण हमारे परिवारवाले जुर्माना अदा नहीं करते थे। हम हर क्षण दुविधा मे रहते, कब कौनसा बखेड़ा खड़ा हो जायगा यह बता नही सकते थे, और जेल-यात्राएं तो थी ही, जो प्रियजनो से लम्बे विछोह करा देती।

नेहरू-परिवार के बच्चो के पहले के कड़े अनुशासन-बद्ध और व्यवस्थित जीवन को अब काफी हद तक स्वच्छन्दता की अनुमति मिल गई थी। इन्दिरा का बचपन गवर्नेस के नियंत्रण के बिना ही बीत रहा था। उसके सोने का कोई निश्चित समय नही था। वह गम्भीर बालिका, आज़ादी से यहां-वहां घूमती हुई, बडो की बातों को कुतूहलपूर्वक सुना करती— उन बड़ो की बातें जो अपने देश के इतिहास के निर्माण में महत्त्व-पूर्ण भूमिकाए अदा करने जा रहे थे। उन दिनों की घटनाओं की उसपर खूब गहरी छाप पड़ी। पिताजी को अपनी पोती पर बड़ा गर्व था। वह उसे बहुत मानते थे और सभी अति-थियो के आगे उसकी खूब प्रशसा करते थे।

४

'जोन आफ आर्क'

•

जवाहर १६१२ मे कैम्ब्रिज से भारत लौटे तो यहां के राजनैतिक आन्दोलन मे गतिरोध आ चुका था। लेकिन वह स्वयं विलायत से उग्र विचार लेकर आये और पिताजी के नरम विचारो से उनकी अक्सर भिडन्त हो जाती। रोज-रोज की उस वैचारिक टकराहट के कारण हमारा पूरा परिवार उद्विग्न रहने लगा। सौभाग्य से दोनो मे समझौते के आसार भी जल्दी ही सामने आये। थियोसोफीकल सोसाइटी की महिमामयी देवी, श्रीमती ऐनी बेसेण्ट ने १६१६ में 'होमरूल लीग' की स्थापना की थी। जवाहर जल्दी ही उसके सदस्य बन गए। एक वर्ष बाद जब श्रीमती बेसेण्ट गिरफ्तार कर ली गईं तो पिताजी भी उसमें शरीक हो गए। उन्होंने होमरूल के पक्ष मे बड़ा जोशीला भाषण दिया और लीग की इलाहाबाद शाखा के अध्यक्ष चुन लिये गए। भारतीयों से हिकारत करने-वाले विदेशी शासकों की ठकुरसुहाती करने और विनम्रता-पूर्ण प्रार्थना-पत्र देने से उन्हें विराग हो गया।

ब्रिटिश शासको ने श्रीमती बेसेण्ट की गिरफ्तारी भारत

सुरक्षा कानून के अन्तर्गत की थी। यह दमनकारी कानून पहले महायुद्ध के समय भारत मे रंगरूटो की भर्ती के अघोपित उद्देश्य से बनाया गया था। लेकिन अग्रेजो ने श्रीमती बेसेण्ट को जल्दी ही छोड दिया। यह भारतीय नेताओ को गिरफ्तार करने और कुछ समय बाद रिहा कर देने की अग्रेजो की एक राजनैतिक चाल ही थी। गिरफ्तारी १९१७ के जून महीने में हुई और अगस्त मे ब्रिटिश सरकार ने एक समझौतावादी घोषणा की, जिसमे कहा गया कि "ब्रिटिश साम्राज्य के अविभाज्य अंग के रूप मे भारत को क्रमशः उत्तरदायी शासन प्रदान करना" इस नीति का मूल उद्देश्य है।

भारतीय जनता को इस नई नीति के अन्तर्गत नागरिक स्वतत्रता की धुंधली-सी आशा बधी ही थी कि अपने ही देश के प्रशासन मे भारतीयो के सहयोग की दिशा मे कोई प्रगति न होते देख ब्रिटिश वायदे पर सन्देह होने लगा। फिर सहसा १९१९ मे रौलट एक्ट थोपा गया, जिससे जनता की सभी आशाओ पर तुपारपात हो गया। विधि-शास्त्री—वकील—होने के कारण पिताजी का संवैधानिक सुधार पर दृढ विश्वास था, लेकिन ब्रिटिश सरकार के इस कुकृत्य से उनका यह विश्वास डिग गया। अब विधि-सम्मत शासन के लिए उनके मन में भला क्या सम्मान हो सकता था!

१९२० के शरत्कालीन विशेप अधिवेशन मे काग्रेस ने गांधीजी की असहयोग की नीति को अगीकार कर लिया। असहयोग के कार्यक्रम मे सरकारी पदवियो, सरकारी अथवा सहायता-प्राप्त स्कूल-कालेजों, अदालत-कचहरियो, विधान सभाओ एव विदेशी माल का बहिष्कार सम्मिलित था।

अन्यायपूर्ण कानूनों का विरोध और शान्तिपूर्वक जेल जाने की तैयारियों की घोषणा भी की गई। इस तरह गांधीजी की सत्याग्रह की नीति कांग्रेस की अधिकृत नीति बन गई।

वकालत छोड देने से पिताजी की भारी आय भी बन्द हो गई और हम सादगी से रहने लगे। नौकरो की तादाद एकदम घटा दी गई। बिल्लौरी कांच और चीनी मिट्टी के बढिया बरतन, अस्तबल के उम्दा घोड़े और कुत्ते तथा तरह-तरह की उत्तम शराबें आदि सभी विलास-सामग्रियां बेच दी गई। अम्मां और कमला के पास बहुत-से कीमती गहने थे— अंगूठियां, बालियां और कर्णफूल, हार, कंगन, कांटे और ब्रूच; सभी सोने के और हीरे-मोती, माणिक-पन्ना जडे हुए। अपने लिए मामूली गहने रखकर, अम्मां और कमला बाकी सब बेचने के लिए राजी हो गई।

पिताजी ने अपना मकान कांग्रेस को भेंट कर दिया। नया छोटा मकान बनकर तैयार होने तक कई बरस हम उसी बड़े मकान मे रहे। पिताजी ने 'छोटा' मकान सादगी के खयाल से बनाया था, लेकिन १९२९ में जब हम नये मकान में रहने गये तो वह कम-से-कम प्रचलित अर्थ मे तो सादा नही ही था। छोटा होते हुए भी हमारा नया मकान बहुत ही सुन्दर और मुझे बेहद प्यारा था। इस मकान का नाम भी 'आनन्द भवन' रखा गया और जो कांग्रेस को भेंट किया गया था, वह 'स्वराज्य भवन' कहलाने लगा।

शुरू मे तो मुझे हाथ की कती-बुनी मोटी खादी पहनना जरा भी न सुहाता और मैं नाक-भौं सिकोड़ती, मगर धीरे-धीरे अभ्यस्त हो गई। सादगी और सयमवाले आडम्बर-हीन

नये जीवन का ढंग हम सबको आकर्षक लगता था।

घर मे जल्दी ही एक और बड़ा काम यानी शादी हुई। १० मई, १९२९ को स्वरूप का विवाह ब्राह्मण, बैरिस्टर और संस्कृत के विद्वान रणजीत सीताराम पण्डित से दोनो परिवारो, गांधीजी और कई कांग्रेसी सदस्यों की उपस्थिति मे हुआ। दुलहिन ने बा (कस्तूरबा गांधी) द्वारा कते हुए महीन सूत की खादी की साड़ी पहनी थी। बदली हुई हालतों मे भी शादी जितनी धूम-धाम से हो सकती थी, पिताजी ने की, हालांकि घर के करीब पुलिस चौकन्नी खड़ी थी।

ससुराल में स्वरूप का नया नाम रखा गया—विजयालक्ष्मी। उसी दिन मे वह विजयालक्ष्मी पंडित मशहूर हुई।

अम्मा इन्दिरा पर जान देती थी। जवाहर उन्हें अक्सर टोका करते कि इतना लाड-प्यार अच्छा नही, पर अम्मां सुनी-अनसुनी कर जाती। इन्दिरा अम्मां को दादी नहीं, 'डोल अम्मां' कहती थी। तार की जालीवाली अलमारी को यो तो डोली, पर कई लोग डोल भी कहते है। अम्मां अपनी डोल में तरह-तरह की मिठाइया रखती और इन्दिरा को ये निषिद्ध चीजे दिन मे अक्सर खिलाया करती। इन्दिरा इसीलिए उन्हें 'डोल अम्मां' कहने लगी थी।

हमारे घर के राजनैतिक वातावरण ने इन्दिरा के बाल-मन मे असामान्य—अनोखे—विचार पैदा कर दिये थे। परिवार में बिलकुल अकेला बच्चा होने के कारण वह अपनी गुडियो से जलसे-जुलूस के राजनैतिक खेल खेला करती। मेज पर वह कभी भड़कीले और कभी सादे देहाती कपड़े पहनकर गुड़ियो की एक कतार को लाठी और बन्दूकधारी गुड्डे

सिपाहियों के सामने खडा कर देती। किसान-वेशधारी गुडियों के हाथों मे कागज़ के कांग्रेसी झण्डे होते और इन्दिरा नेता बनी उनके आगे भाषण करती—अपने पिता, दादा और गांधीजी को इसी तरह भाषण करते उसने देखा था। अपने सत्याग्रहियों से वह कहती, "आगे बढो, कांग्रेस का झण्डा ऊंचा रहे, ब्रिटिश हुकूमत की फौज-पुलिस से जरा भी मत डरो।" आनन्द भवन की ऊंची अटारियों से कांग्रेसी झण्डा लिये सफेद खादीधारी कांग्रेसी स्वयंसेवको के ऐसे जुलूस वह रोज ही देखती थी।

इन्दिरा को विदेशी कपड़ो की होली जलाने में भी खूब मजा आता था। अपने पिता और दादा के पेरिस मे सिले कीमती सूट, टाइया, कमीज और टोपों की होली जलाई जाते उसने देखी थी। गांधीजी का कहना था कि विदेशी माल का बहिष्कार किया जाय। कमला और अम्मां का सुन्दर कीमती रेशमी और जरी की साड़ियां भी आग मे होमी गई थी, जो गांधीजी के सरल-सादे जीवन और घर के कते-बुने गजी-गाढे को प्रोत्साहन देने के उपदेश के अनुकूल ही था, और नन्ही इन्दिरा ने भी फैसला कर लिया कि विदेशी कपड़ों की होली जलाना बिलकुल सही काम है। उसका दैनन्दिन जीवन राष्ट्र के स्वाधीनता-संग्राम से अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ था। उन दिनों की मनोभावना और जोश का एक जगह-जवाहर ने ठीक ही वर्णन किया है :

"१९२१ मे कांग्रेस के लिए काम करनेवाले हम लोगों पर एक नशा-सा छाया रहता। हम जोश-खरोश, उत्साह उमंग और उम्मीदो से भरे हुए थे।"[1]

लेकिन जल्दी ही जवाहर के लिए अपना ज्यादातर समय घर के बदले जेल मे बिताने की बारी आई। इन्दिरा का शुरू का बचपन क्रूर बिछोह की स्मृतियो से भरा है, क्योकि परिवार का कोई-न-कोई व्यक्ति अकस्मात् पकडकर जेल में ठूस दिया जाता था। बडा घर बहुत सूना-सूना लगता और वह उदास हो जाती। रोक-टोक के लिए गवर्नेस तो कोई थी नही, इसलिए वह अपनी दादी के पास मिठाई के लिए या सवालों की झड़ी लगाने के लिए दादाजी के पास पहुंच जाती और मेरे पिताजी कितने ही काम मे व्यस्त क्यों न हो, उसके सवालो का जवाब जरूर देते। जब उसके पिता जेल से लौट आते तो वह उनसे लिपट जाती और तमाम घटनाओं का कारण बताने के लिए कहती।

बचपन मे उसपर सबसे अधिक प्रभाव शायद उसके दादाजी का पड़ा। बरसो बाद उनके प्रति अपने स्नेह और सम्मान को उसने निम्न शब्दो मे व्यक्त किया है :

"दादाजी के शक्ति-सम्पन्न होने के कारण मेरी उनपर बड़ी श्रद्धा थी और स्नेह भी था, क्योकि जीवन के प्रति उल्लास उनमे फूटा पड़ता था। आगे चलकर यह जीवनोल्लास मेरे पिताजी मे भी विकसित हुआ। लेकिन सबसे अधिक मैं अपने दादाजी के बड़ेपन से प्रभावित थी—मेरा मतलब उनके शारीरिक डील-डौल से नही, उनके बड़प्पन, उनकी महानता से है। वह इतने विशाल लगते थे मानो सारी दुनिया को अपनी बांहो मे समेटे हुए हो। उनके हँसने का ढग भी मुझे बहुत प्रिय था।"[२]

मोतीलाल नेहरू अपने सफेद कुर्ते, धोती और चादर मे,

जो शुद्ध खादी के होते थे, बिलकुल रोमन सिनेटर की तरह लगते थे। वह सफेद खादी की टोपी पहनते, जो कांग्रेसी होने की निशानी थी। उनके गरिमामय और भव्य व्यक्तित्व का उल्लेख एक अखबारनवीस सन्त निहालसिंह ने इन शब्दों में किया है :

"हाथ कती मोटी और खुरदरी खादी वह पहने थे, जिसने उनके सुदर्शन चेहरे और सुडौल शरीर को और भी महिमा-मण्डित कर दिया था।"

जवाहर ने भारत के भूखो और गरीबो तक आशा का सन्देश पहुंचाना शुरू किया। वह गाव-गांव घूमे, किसानो के दुःख-दर्द को सुना और उन्हें भारत की आजादी तथा एक अच्छे जीवन के लिए काम करने को प्रेरित-प्रोत्साहित किया। उनकी इन गति-विवियो से भारत सरकार सशक हो उठी और उन्हे गिरफ्तार करने का मनसूबा करने लगी। इसके वाद इन्दिरा के जीवन मे अपने परिवारवालो से बिछुड़ने के दिन आये। अक्सर उस वड़े घर में वह अकेली रह जाती थी।

६ दिसम्बर, १९२१ को, चार वर्ष की उम्र मे, इन्दिरा का पहला दीक्षा-संस्कार हुआ, जब पुलिस पिताजी और जवाहर को कांग्रेस स्वयंसेवक दल के सदस्य होने और ब्रिटिश माल का बहिष्कार करनेवाला पर्चा बांटने के आरोप मे गिरफ्तार करने के लिए आनन्द भवन मे दाखिल हुई। दूसरे ही दिन मुकदमा चला। इन्दिरा सारे समय अपने दादाजी की गोद मे वैठी रही, जिन्होने सत्याग्रही होने के नाते न तो अदालत की किसी कार्रवाही में भाग लिया और न अपना बचाव ही किया। उन्होने अंग्रेजो की अदालत को मानने से ही इन्कार कर

दिया था। मुकदमे का नाटक चला और पिताजी को छः महीने की कैद और पाचसौ रुपये जुर्माने की सजा सुना दी गई। इन्दिरा चुपचाप बैठी अपने उमडते हुए आंसुओ को रोकने की कोशिश करती रही। जवाहर को भी यही सजा दी गई।

हम अपने घर लौटे, जो खाली, सूना और बेजान लग रहा था। दूसरे दिन पुलिस फिर आई और जुर्माना अदा न करने के एवज़ मे हमारे कुछ कीमती कालीन जब्त करके ले गई। हम चुपचाप, मगर गुस्से से उबलते हुए, इस ज्यादती को देखते रहे। मगर नन्ही इन्दिरा जब्त न कर सकी। गुस्से में पैर पटकते हुए वह चिल्ला उठी .

"तुम इन चीजो को नही ले जा सकते। ये हमारी हैं।"

घूसा तानकर वह पुलिस दारोगा पर झपट पड़ी। बड़ी मुश्किल से हम उसे वहां से हटा और शान्त कर पाये।

इन गिरफ्तारियो के तुरंत बाद, हम जितने लोग बाहर रह गए थे, इन्दिरा को अपने साथ लेकर, अहमदाबाद के पास, साबरमती के किनारे, गांधीजी के आश्रम में रहने चले गए। कांग्रेस का सालाना जलसा वहीं हो रहा था और गांधीजी चाहते थे कि हम उसमें शरीक हों और उन्ही के साथ रहे। आश्रम का जीवन कठोर संयम का जीवन था। बिना नमक का सादा स्वादहीन भोजन, अपने कपड़ों और कमरो की सफाई स्वय करना, फ़र्श पर सोना और सवेरे चार बजे उठकर साबरमती के किनारे प्रार्थना मे सम्मिलित होना। हम, जो ऐशोइशरत के आदी थे, शुरू-शुरू में तो बहुत घबराए और वडा अटपटा भी लगा, लेकिन धीरे-धीरे वहां के त्याग-तपस्यामय जीवन के अभ्यस्त हो गए और संयम का वह पाठ

आगे कांग्रेस की सेवा मे, जब सत्याग्रही बने तो खूब काम आया। केवल अम्मा को, जो वहुत दुबली और कमजोर थी, तथा हमारी एक भाभी, उमा नेहरू को वहा के कठोर नियमो से छुट्टी दी गई थी। बाकी आश्रम में रहनेवाले सभी मेहमानो को वडे सवेरे ठण्ड में ठिठुरते हुए प्रार्थना-सभा में हाजिर होना ही पडता, जहां हिन्दू धर्मशास्त्रो, कुरान, बाइबिल और अन्य धर्म-ग्रन्थों से पाठ होता और प्रार्थना तथा भजन गाये जाते। मुझे वे प्रार्थना-सभाएं बहुत अच्छी लगती थीं। इन्दिरा के लिए यह सब बहुत नया और अद्भुत था—वह बड़े उत्साह से सबमे खुशी-खुशी भाग लेती। गाधीजी को बच्चे बहुत प्यारे थे, इसलिए वह उनसे बड़ी जल्दी हिल गई।

साबरमती से हम लौटे तो घर की वह शोभा नही रह गई थी। पिताजी और जवाहर की अनुपस्थिति मे हम औरते राजनैतिक आन्दोलन मे भाग लेने लगी—कांग्रेस की सभाओं मे जाती और जुलूसो मे शरीक होती। कमला और मैं खादी का कुर्ता, पायजामा और गाधी टोपी पहनने लगी थी। इन्दिरा भी इसी तरह की पोशाक के लिए जिद करती, क्योंकि वह अपने को काग्रेस का स्वयसेवक ही समझती थी। यो वह अधिकतर अपनी दादी और मासी-मां (बीबी अम्मां) के पास घर पर ही रहती थीं, लेकिन राजनैतिक चर्चाए सुन-सुनकर उसमे यह भाव दृढ़ हो गया था कि भारतीय जनता की आजादी के लिए काम करना उसका भी कर्त्तव्य है। एक तरह से देखा जाय तो आम बच्चों-जैसा बचपन उसने जाना ही नही और न उसके खेल के साथी ही थे। हमारे रिश्तेदारो के कुछ बच्चे थे जरूर, लेकिन हम लोगों के राजनैतिक कार्यों की वजह से

वे डरते थे और अपने बच्चो को हमसे दूर ही रखते थे।

इन्दिरा बहुत दुबली-पतली थी और उसके स्वास्थ्य को लेकर जवाहर हमेशा चिन्तित रहते थे। लखनऊ-जेल से १६२२ मे (यह उनका दूसरा कारावास था) लिखे पत्रों मे अपनी बेटी के प्रति उनके गहन प्रेम और उसे देखने की उत्कट इच्छा की झलक मिलती है: "कल उसे देखे तीन महीने हो जायगे।" वह लिखते है, "और वह बहुत कमजोर और दुबली थी। मैं चाहता हूं कि उसकी पढ़ाई का कोई इन्तज़ाम किया जाय। मुझे यकीन है कि इस काम को मैं जरूर संभाल लेता—मगर अभी तो बैरक न० ४ में हूं।" इन्दिरा को उन्होंने लिखा था :

"पापू का प्यार। जल्दी अच्छी हो जाओ, खत लिखना सीख लो और मुझसे जेल में मुलाकात करने आओ। तुम्हें देखने के लिए मैं बेताब हूं। दादू (इन्दिरा के दादाजी) तुम्हारे लिए जो नया चर्खा लाये, क्या उसे तुम चलाती हो ? अपना काता हुआ सूत मुझे भेजो। अम्मां के साथ रोज प्रार्थना करती हो न ?"

एक और पत्र में :

"प्यारी बेटी इन्दिरा को पापू का प्यार। कलकत्ता तुम्हे पसन्द आया ? क्या बम्बई से अच्छा है ? कलकत्ता का अजायबघर देखा ? कौन-कौन से जानवर देखे ? वहां तुमने एक विशाल पेड़ भी देखा होगा ! इलाहाबाद लौटने से पहले तुम्हें खूब मोटा-तगड़ा हो जाना चाहिए।"

इन्दिरा इतने स्कूलो में पढ़ी कि सबके नाम याद कर पाना मुश्किल ही है। जब छह बरस की हुई, तो पिताजी ने कमला से सलाह-मशविरा कर उसे इलाहाबाद के सेंट

सेसीलिया हाई स्कूल मे भर्ती करा दिया। अपनी गवर्नेस की शादी हो जाने के बाद मैं भी इस स्कूल मे कुछ दिन पढी थी। कैमेरोन नाम की तीन अग्रेज क्वारी बहने इस स्कूल को चलाती थी और वहां उस जमाने मे भी लड़के-लडकिया साथ पढते थे। इन्दिरा के लिए इग्लिश स्कूल क्या चुना गया, बेसिरपैर की अफवाहो का बाजार ही गर्म हो गया। लोग ले उड़े कि जवाहर, जो हाल ही मे जेल से छूटकर आये थे, इस बात को लेकर बडे नाराज हैं और बाप-बेटे मे ठन गई है, और इसी तरह की बाते बकी जाने लगी। ये बाते गांधीजी तक भी पहुंची और उन्होने पिताजी को एक पत्र लिखकर भाई के पक्ष की पैरवी की। पिताजी ने तार से जवाब दिया कि सारा किस्सा सफेद भूठ और नीचतापूर्ण है। उन्होंने गांधीजी को सही बात बताते हुए लिखा कि जवाहर के एतराज की वजह विदेशी संस्थाओ से असहयोग की नीति न होकर सेण्ट सेसीलिया का शैक्षणिक स्तर है। भाई का खयाल था कि वहां इन्दिरा को उच्च-स्तर की शिक्षा न मिल सकेगी और पिताजी ने उसे वहां सिर्फ यह सोचकर भर्ती कराया था कि हमउम्र बालक-बालिकाओ का सग मिल सकेगा, और जवाहर भी पिताजी के इस विचार से सहमत थे। वर्षो बाद, 'भारत छोड़ो-आन्दोलन' के दौरान, जब मेरी बहन (नान) ने अपनी तीनों लड़कियो को पढ़ने के लिए अमरीका भेजा तो ठीक ऐसा ही बावेला मचा था। मैंने यह खबर जब भाई को अहमदनगर के किले मे, जहां वह उन दिनो कैद थे, पहुंचाई तो उन्होने यही जवाब दिया कि बहन का निर्णय ठीक ही है।

हमारे राजनैतिक और अव्यवस्थित जीवन के कारण

इन्दिरा की नियमित स्कूल शिक्षा में बराबर बाधा पडती रही। लेकिन हम सब लोगो के पुस्तक-प्रेम और आनन्द भवन के सुसम्पन्न पुस्तकालय ने इस क्षति को काफी हद तक पूरा किया। आपस मे पुस्तकें उपहार देने का हमारे यहां बरसो से रिवाज चला आता है। जेल से भी जवाहर समय-समय पर इन्दिरा के लिए तरह-तरह की किताबे खरीदने के आदेश दिया करते थे। वह भी परीकथाएं और शेक्सपीयर, डिकेन्स और शॉ की कृतियो के बाल-संस्करण और मेरे लिए खरीदा गया कालजयी (क्लासिकी) साहित्य पढती ही रहती थी। आज वे सभी किताबे दिल्ली-स्थित जिस तीन मूर्ति भवन मे, जहा जवाहर प्रधानमत्री के रूप मे रहते थे और जो अब उनका स्मारक और नेहरू सग्रहालय है, उसके बाल पुस्तकालय मे रखी हुई हैं।

किताबे पढ़ते-पढ़ते कुछ किताबे, पात्र और घटनाएं इन्दिरा को विशेष रूप से प्रिय हो गई थी। जोन आफ आर्क की कहानी उसकी ऐसी ही प्रिय कहानियो मे से थी। एक दिन मैंने उसे बरामदे के जगले के पास खड़े देखा—एक हाथ दृढ़ता से पत्थर की मुडेर पर रखे और दूसरा हाथ अधर में इस तरह उठाये हुए मानो अपने श्रोताओं को किसी महान उद्देश्य के लिए प्रेरित कर रही हो। इस घटना का मैंने अपनी पुस्तक 'हम नेहरू' मे वर्णन भी किया है :

"वह कुछ बुदबुदा रही थी, इसलिए मैंने पास जाकर पूछा, यह क्या हो रहा है ?"

घने काले बालों और चमकती हुई आंखोवाले गोल चेहरे को उठाकर मेरी ओर गम्भीरता से देखते हुए उसने

जवाब दिया, "जोन आफ आर्क बनने का अभ्यास कर रही हूं। अभी-अभी उसीके बारे मे पढ रही थी। एक दिन जोन आफ आर्क की तरह मैं भी आजादी की लड़ाई मे अपनी जनता का नेतृत्व करूंगी।"[3]

पढी हुई कहानी का अभिनय करते हुए उसने अनुभव किया, मानो वह अपने देश की स्वाधीनता-सग्राम की पुकार मे भाग ले रही हो और आगे चलकर उसने पूरी निष्ठा से उस सघर्ष मे भाग लिया।

५

'हमारे महिला-समाज का गौरव'

•

इन्दिरा के जन्म के बाद कमला कमजोर होती गई। वह जल्दी थक जाती और उन्हे पूरी तरह स्वस्थ होने मे कई महीने लग गए। १९२४ में उनके एक लड़का हुआ, जो सिर्फ तीन दिन जीवित रहा। इस बार भी तबीयत संभलने मे बहुत देर लगी और काफी दिन दवा-दारू और इलाज करना पड़ा। पिताजी ने अपने बेटे के लिए जिस स्वस्थ लड़की को चुना था वह लगातार बीमार रहने लगी। अन्त मे निदान किया गया, तो पता चला कि उसे क्षय हो गया है। रोग के उपचार के लिए डाक्टरो ने स्विट्जरलैण्ड ले जाने की सलाह दी।

मार्च १९२६ में, कमला और जवाहर, अपनी बेटी के साथ जहाज से यूरोप के लिए रवाना हुए। यह तय पाया कि पिताजी कुछ समय बाद जायगे और मुझे भी साथ ले जायंगे। उन्हें आराम की सख्त जरूरत थी, लेकिन दुर्भाग्य से एक मुकदमे की, जो बरसों से उनके हाथ मे था, फैसले की तारीख मई में रख दी गई और उन्हे रुक जाना पडा। उन्होने जोर दिया कि मैं तो योजनानुसार चली ही जाऊ, क्योकि कभी विदेश

नही गई थी और वहा कमला की देख-भाल और जिनेवा में उन्होने जो मकान लिया था उसके इन्तजाम मे जवाहर का हाथ बंटा सकूगी। पिताजी यह भी चाहते थे कि हम लोगो के राजनीति मे भाग लेते रहने के कारण मुझे विधिवत् शिक्षा से वचित रहजाना पडा है, इसलिए जिनेवा के इन्टरनेशनल स्कूल में भर्ती होकर कुछ भापाए सीख लू। अम्मां ने सुना कि अकेले इतनी दूर जा रही हूं, तो बहुत घवडाई और यही चाहती रही कि जाने से पहले किसी काश्मीरी लड़के से मेरी सगाई हो जाय।

मैं जून मे जल-मार्ग से यूरोप के लिए रवाना हुई। जवाहर मुझे लेने के लिए नेपल्स आये और वहा से हम दोनो जिनेवा साथ गये। इन्दिरा को स्कूल भेजने का फैसला वह पहले ही कर चुके थे और पहाड़ो मे वेक्स के 'ईकोल नूवेल स्कूल' मे भर्ती भी करा दिया था। लगातार बड़ो के साथ गरम राजनैतिक वातावरण मे रहने के कारण इन्दिरा की रुचियां अपनी उम्र के बच्चो से सर्वथा भिन्न प्रकार की थी। वह काफी प्रौढ हो गई थी। राजनैतिक स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष का मतलव वह समझती थी और यूरोप की राजनीति की भी थोड़ी-बहुत जानकारी उसे थी। उसके सहपाठियो की पूरी दिलचस्पी खेल-कूद मे थी, राजनीति से उन्हे कोई मतलव नही था। इन्दिरा उनमें घुल-मिल न पाती, न उसे उनके खेल-कूद मे भाग लेने की इच्छा ही होती; वह सबसे अलग-थलग अकेली रहा करती। भाग्य से उसे अपने पिता और मेरी ही तरह शीतकालीन खेल पसन्द थे। कई बार बुरी तरह पटकनियां खाकर अन्त मे उसने वर्फ पर फिसलने, कूदने और दौडने का खेल स्की और स्केट सीख ही लिया और वडी रुचि से उनमे भाग लेने लगी।

जिनेवा के फ्लैट (एपार्टमेंट) मे मैं हमारी नौकरानी मारग्युराइट की सहायता से घर-गिरस्ती चलाने के गुर सीखने लगी। वही मुझे फ्रेंच बोलना भी सिखाती थी। इंटरनेशनल ग्रीष्मकालीन स्कूल में भी मैं भर्ती हो गई। वहां विभिन्न देशों के प्रसिद्ध वक्ता और राजनेता, कलाकार, वैज्ञानिक, लेखक आदि विविध क्षेत्रो के विद्वान स्त्री-पुरुष रोचक भाषणो के माध्यम से विद्यार्थियो को भापाओ का ज्ञान कराते थे।

जिनेवा में कमला के स्वास्थ्य मे सन्तोषजनक सुधार नही हो रहा था, इसलिए हम स्वीट्जरलैण्ड मे दूसरी स्वास्थ्यवर्द्धक जगह चले गये, जहां मोन्ताना-वेमाला का बढ़िया आरोग्यधाम (सेनिटोरियम) था। वहां कमला की देख-भाल का उचित प्रबन्ध हो जाने से मैं और जवाहर इटली के नगरो और गांवों की सैर करने लगे। जब भी कमला की तबीयत अच्छी होती, वह और इन्दिरा भी हमारा साथ देती।

उन्ही दिनों हम रोम्यां रोलां से मिले, जो जिनेवा के समीप ही विलेनव में रहते थे। अपने पिता और उस महान साहित्य-कार की बातचीत को इन्दिरा ने बड़ी गम्भीरता से—बूढे न्यायाधीश-जैसी तन्मयता से—सुना। वार्तालाप का विषय नौ बरस की लड़की की समझ से परे और गहन था, लेकिन मेरे भाई का विश्वास था कि प्रमुख नर-नारियो से निकट सम्पर्क इन्दिरा के लिए लाभकारी ही होगा। वह उसके दृष्टिकोण को व्यापक बनाना चाहते थे, ताकि देश के प्रति अपना कर्त्तव्य समझकर भारत के राष्ट्रीय जीवन मे हम सबने जिस भूमिका को अपना रखा था उसके लिए उसे तैयार किया जा सके। ज्ञानार्जन की उसकी लगन बड़ी ही तीव्र थी और वह हमेशा

विद्वानो की बातो को बडे ध्यान से सुनती थी। जिनेवा में वह प्रसिद्ध जर्मन कवि और नाटककार अर्न्स्ट टालर से मिली और भारत के उन पुराने निर्वासित क्रान्तिकारियो से भी, जिनमें राष्ट्र-प्रेम की ज्वाला जोरो से धधक रही थी और जो बडे जोश-खरोश से देश को स्वतन्त्र करने की बाते करते थे। इन सम्पर्को और मुलाकातों से उसके ज्ञान मे वृद्धि होती रही।

१९२७ की गर्मियों मे पिताजी यूरोप आये। उन्हें अपने साथ पाकर हम सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। अम्मा का अभाव जरूर अखरता, जो घर छोड़ने को राजी न हुई। कमला का स्वास्थ्य काफी सुधार पर था, इसलिए हमने खूब यात्राएं की। पिताजी हमे लन्दन, पेरिस, स्विट्जरलैंड के शहर और देहात, तथा बर्लिन ले गये। वह हमेशा प्रथम श्रेणी के आरामदेह आवासों और यात्रा-साधनों को ही पसन्द करते; जवाहर की तरह नही कि किसी भी श्रेणी में चले गये और कही भी ठहर गये।

जब बर्लिन में थे तो हमें मास्को से अक्तूबर-क्रांति की दसवी सालगिरह के उत्सव मे सम्मिलित होने का निमन्त्रण मिला। पिताजी की इच्छा नही थी, लेकिन हमारे आग्रह के आगे अन्त मे उन्हें राजी होना पड़ा। इन्दिरा को स्कूल भेज दिया गया, क्योंकि पिताजी की राय मे उत्सव की चहल-पहल का उसके स्वास्थ्य पर बुरा असर हो सकता था। और फिर एक बच्चे को उस तरह के औपचारिक उत्सव में ले जाना हमारे मेजबानो को शायद स्वीकार भी न होता!

सोवियत समारोह बड़े ही भव्य थे। सोवियत सरकार ने

अपने अतिथियो के सम्मान में जो राजकीय भोज दिया वह तो और भी शानदार था। मेज पर साथ बैठे सभी मेजबानो ने अंग्रेजी और फ्रेंच मे वार्तालाप कर हमारा मन ही मोह लिया। मास्को की हमने खूब सैर की और जितना देखा जा सकता था, देखा। सड़क चलते लोगो के चेहरो से लगता था कि उनके देश मे जो परिवर्तन हुआ है उससे वे सन्तुष्ट हैं और उन्हे कोई शिकायत नही। हम वहां एक सप्ताह रहे।

हमारी सलाहकार अति उत्साही और नामांकित कम्यूनिस्ट सुहासिनी (सुप्रसिद्ध कांग्रेसी नेता, कवयित्री और हमारी घनिष्ठ मित्र सरोजिनी नायडू की बहन), ने जब हम बर्लिन मे ही थे, ऐसी उलटी पट्टी पढाई कि मास्को पहुंचकर मैं और कमला भौचक रह गई। उस भलीमानस ने हमे बताया कि मास्को मे हमारे लिए खादी की साडियां पहनना ही उचित होगा। इसलिए हम वही साडियां साथ ले गई। लेकिन मास्को में जब हमने सुहासिनी को मदरासी रेशम की रग-बिरंगी साड़ियां पहने उत्सव में भाग लेते देखा तो आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मेरे झिड़कने पर उसने बडी अवज्ञा से जवाब दिया, "नासमझ लड़की, हम कम्यूनिस्टो के लिए यही ठीक है, मगर तुम बुर्ज्वाओं को तो गजी-गाढे और खद्दर के लिवास मे ही आना चाहिए।"

पिताजी को नया रूस भद्दा-भोडा लगा, लेकिन जवाहर उस कम्यूनिस्ट राज्य को देखकर बहुत उत्साहित हुए। चौदह बरस बाद, उन्होने जो आत्मकथा (मेरी कहानी) लिखी, उसमे समाजवाद और साम्यवाद की ओर अपने खिचाव पर टिप्पणी करते हुए वह लिखते हैं :

"रूस को छोड़ भी दे तो मार्क्सवाद के उसूल और फलसफे ने मेरे दिमाग के कई अंधेरे कोनो को रोशन कर दिया। इतिहास मे मुझे बिलकुल नया ही मतलब दिखाई पड़ने लगा। मार्क्सवादी व्याख्या ने उसपर काफी रोशनी डाली, और वह मेरे लिए एक के बाद दूसरा दृश्य पेश करनेवाला एक ऐसा नाटक हो गया, जिसके घटनाचक्र की बुनियाद मे कुछ-न-कुछ तरतीब और मकसद मालूम हुए; फिर वे चाहे कितने ही छुपे और अनजान क्यों न हो। हालांकि बीते हुए जमाने मे, और आज भी, साधनो की भयकर बरबादी और तकलीफे भी रही और जारी हैं, मगर आनेवाला वक्त तो रास्ते मे आनेवाले तमाम खतरो के बावजूद उम्मीदो से भरा हुआ है। मार्क्सवाद में लाजमी तौर पर किसी रूढ़ मत का न होना और उसका साइंटिफिक नजरिया (वैज्ञानिक दृष्टिकोण) ही मुझे पसन्द आया।"[1]

बर्लिन तथा पेरिस मे कुछ समय और रहने के बाद, घर लौटने के इरादे से जहाज पकड़ने के लिए, हम लोग मार्सेलीज चले आये। (पिताजी यूरोप के कुछ और देशो की सैर के लिए थोडा समय वही रह गए।) हम लोग १९२७ के दिसम्बर मे कोलम्बो पहुंचे और वहां उतरकर सीधे मदरास के लिए रवाना हुए, जहा कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हो रहा था। सारे देश में उत्साह की जैसे लहर ही आ गई थी। स्वाधीनता के लिए सर्वस्व समर्पित कर देने की भावना देशवासियों मे नये जोश से उभर रही थी।

यूरोप मे समाजवादी विचारको के सम्पर्क से जवाहर को बड़ी प्रेरणा मिली थी। आदर्शवाद से अनुप्राणित वह

स्वाधीनता के अपने आन्दोलन मे जी-जान से जुट गए। मदरास कांग्रेस मे उनकी विचारधारा को जबर्दस्त समर्थन मिला और पूर्ण स्वाधीनता तथा साम्राज्यवाद-विरोधी उनके प्रस्ताव बड़े उत्साह से युवकों द्वारा पारित किये गए, जो भारी संख्या में कांग्रेस मे शरीक हो गए थे। लेकिन गांधीजी को कोई खुशी नही हुई। उन्होने जवाहर को लिखा :

"तुम बहुत तेज भाग रहे हो। सोचने-विचारने और देश की हालत को समझने के लिए तुम्हें थोड़ा समय देना चाहिए था।"[२]

फरवरी १९२८ में लन्दन की ब्रिटिश सरकार ने साइमन कमीशन को दिल्ली भेजा। उसे भारतीय विधान में रद्दो-बदल करने का अधिकार दिया गया था, लेकिन देश ने उसका बहिष्कार किया। कांग्रेस का दिसम्बर अधिवेशन कलकत्ता में हुआ और पिताजी पुनः अध्यक्ष चुने गए। लेकिन उनमे और जवाहर में नीति के प्रश्न को लेकर गहरा मतभेद हो गया। पिताजी नरम रुख अपनाने और औपनिवेशिक स्वराज्य (डोमिनियन स्टेटस) स्वीकार करने के पक्ष में थे और जवाहर पूर्ण स्वाधीनता की अपनी बात पर अडे हुए थे। दोनों मे थोडी नोक-झोंक हुई और बात यहांतक बढ़ी की पिता-पुत्र मे बोल-चाल बन्द हो गई। कांग्रेस के मंच से दोनो ने सार्वजनिक रूप से एक-दूसरे के विचारों पर प्रहार किया। अन्त में गांधीजी ने एक समझौता-प्रस्ताव पेश किया, जो स्वीकार हुआ। उसमें ब्रिटिश सरकार से कहा गया था कि अगर एक वर्ष के अन्दर भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य नहीं दिया गया, तो कांग्रेस पूर्ण स्वाधीनता के ध्येय की घोषणा कर देगी।

अक्तूबर १९२९ में वाइसराय लार्ड इर्विन ने भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य की सम्भावनाओ पर विचार करने के लिए लन्दन में एक गोलमेज परिषद बुलाने की घोषणा की। फौरन भारतीय नेताओ के एक गुट ने, ब्रिटिश इरादों के प्रति सशक होते हुए भी, एक नेता-परिषद (सर्व-दल-सम्मेलन) आयोजित की, जिसमे गाधीजी और पिताजी, दोनो ने ही हिस्सा लिया। इस परिषद के घोषणापत्र मे इस बात पर पुन: जोर दिया गया कि अगर एक वर्ष के अन्दर-अन्दर भारत को पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया गया, तो ब्रिटिश सरकार से असहयोग की नीति का परित्याग कर दिया जायगा।

लार्ड इर्विन द्वारा प्रस्तावित चर्चा दिल्ली मे हुई:

"पिताजी वहां थे, और भाई (जवाहर को हम इसी नाम से पुकारते थे) भी गये, लेकिन बे-मन से। गाधीजी को तो खैर जाना ही था, क्योंकि उनके बिना पत्ता भी नही हिल सकता था। अन्य दलो और मतो के नेता भी उसमे आये। सब इस बात पर सहमत हुए कि गोलमेज परिषद की बुनियाद औपनिवेशिक स्वराज्य है। सुभाष बोस को छोड बाकी सभीने इस समझौते पर दस्तखत कर दिये—भाई ने पिताजी के प्रबल अनुरोध और काफी मनोमंथन के बाद ही दस्तखत किये थे। स्वय उन्हीके शब्दों मे वह 'कड़वी घूट' थी।

"लेकिन समझौता किसी काम न आया। इग्लैण्ड मे इस सवाल पर इतना बावेला मचा कि ब्रिटिश सरकार अपनी बात से मुकर गई। बर्कनहेड, विन्स्टन चर्चिल और लायड जार्ज जैसे कंजरवेटिव (अनुदार) ब्रिटिश नेताओ के साम्राज्यवादी भाषणों से भारतीय जनमत बहुत ही क्षुब्ध और कुपित

हुआ ।"[3]

कांग्रेस के संभावित अध्यक्षीय उम्मीदवारो के नामों की चर्चा और किसी एक के बारे मे निर्णय करने के लिए १९२९ की ग्रीष्म और शरद मे कांग्रेस-समिति की कई बैठके हुई । सब गांधीजी को अध्यक्ष बनाना चाहते थे, लेकिन वह राजी न हुए, उलटे उन्होने सदस्यों से जवाहर को चुनने का अनुरोध किया । दिसम्बर मे कांग्रेस का लाहौर मे अधिवेशन हुआ और पिताजी ने बडे गर्व से कांग्रेस की बागडोर अपने बेटे के हाथों सौंपी । जोशीले नौजवानो ने, जो बडी तादाद मे कांग्रेस मे सम्मिलित हो गये थे, जवाहर के गरमागरम विचारो का बड़े उत्साह से समर्थन किया । उसी अधिवेशन मे पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पारित किया गया ।

१९३० का नया दिन हमारे परिवार के ही लिए नहीं, जवाहर के मुह से स्वाधीनता की घोषणा सुनने को रावी के तट पर जमा विशाल जन-समूह के लिए भी स्मरणीय और शानदार दिन था । कांग्रेस स्वयसेवक दल की वर्दी मे लैस इन्दिरा के हृदय मे उत्साह समा नही रहा था । जब उसके पिता ने इस घोषणा को लिखा तो वह उनके पास बैठी हुई थी और उसीने उन्हे पढकर सुनाया था । उसके बाद अपने पिता के, सभा मे उपस्थित जन-जन को अनुप्राणित करनेवाले देशभक्तिपूर्ण इन गहन-गम्भीर शब्दो को तल्लीनतापूर्वक सुन रही थी :

"हम भारतीय प्रजाजन भी, दूसरे राष्ट्रों की तरह अपना यह जन्मसिद्ध अधिकार मानते है कि हम स्वतत्र होकर रहे, अपनी मेहनत का फल खुद भोगे और हमे अपने गुजर-बसर

के लिए जरूरी सुविधाएं मिले । . हम यह भी मानते हैं कि अगर कोई सरकार जनता से इन अधिकारो को छीन लेती है और उसे सताती है, तो जनता को उस सरकार को बदल देने या मिटा देने का भी हक है। हिन्दुस्तान की अंग्रेजी सरकार ने भारतीयो की स्वतत्रता को ही नही छीना है, बल्कि उसकी बुनियाद ही गरीबो के शोषण पर रखी हुई है और उसने आर्थिक, राजनैतिक, सास्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से हिन्दुस्तान को तबाह कर दिया है। इसलिए हमारा विश्वास है कि हिन्दुस्तान को अंग्रेजो से नाता तोड़कर पूर्ण स्वराज्य या मुकम्मिल आजादी हासिल कर लेना चाहिए।

"जिस हुकूमत ने हमारे देश को इस तरह तबाह और वर्वाद किया है, उसके तावे मे रहना हमारी राय मे मनुष्य और ईश्वर दोनो के प्रति गुनाह है । मगर हम यह भी मानते है कि हमारे लिए अपनी आजादी हासिल करने का कारगर रास्ता हिसा नही है । इसलिए हम ब्रिटिश सरकार से, जहा-तक वन पडेगा, अपनी मर्जी से किसी भी तरह का सहयोग न करने की तैयारी करेगे और अपने को सिविल नाफरमानी (सविनय अवज्ञा) और करबन्दी तक के लिए तैयार करेगे। .. इसलिए हम शपथपूर्वक सकल्प करते हैं कि पूर्ण स्वराज्य की स्थापना के लिए काग्रेस समय-समय पर जो आज्ञाए देगी उनका पूरा-पूरा पालन करेगे ।"[४]

काग्रेस ने जवाहर की इस घोपणा को राष्ट्र के ध्येय के रूप मे स्वीकार कर लिया । २६ जनवरी को स्वाधीनता-दिवस मनाने की घोपणा की गई । उस दिन काग्रेस ने सारे देश मे सभाएं कर के पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने की प्रतिज्ञा की ।

गांधीजी ने जनता को सत्याग्रह करने का आदेश दिया। इस बार उसका बिलकुल नया ही रूप था। लोगों से कहा गया कि वे नमक-कानून तोड़े। नमक बनाने का एकछत्र अधिकार सरकार के हाथ में होने के कारण कोई भी समुद्र के पानी से नमक नही बना सकता था। १२ मार्च, १९३० को गांधीजी ने अपनी सुप्रसिद्ध दांडी-यात्रा आरम्भ की। यह जगह अहमदाबाद से दो सौ मील के फासले पर समुद्र के किनारे एक छोटा-सा गांव है। नमक-कानून तोड़ने के लिए गांधीजी ने इसी गांव को चुना। इस यात्रा में हजारों लोग उनके साथ हो गए। ५ अप्रैल को दांडी पहुंचकर सत्याग्रही रात-भर प्रार्थना करते रहे। सवेरे गांधीजी ने समुद्र में प्रवेश किया और नमक बनाने के लिए पानी ले आये। फिर तो सारे देश में जनता ने कड़ाहियो में नमक बनाने का आन्दोलन शुरू कर दिया।

पहले तो पिताजी और जवाहर को अवज्ञा का यह ढंग बेकार ही लगा। भला नमक बनाने में क्या तुक हो सकता था! मगर बात-की-बात में यह आन्दोलन स्वतंत्रता का प्रतीक बन गया और हम सब उसमें शरीक हो गए। जवाहर के शब्दों में :

"आज यात्री अपने लम्बे रास्ते पर अग्रसर होता है। एक महान संकल्प की उमंग से भरा हुआ और अपने देश-वासियों का असीम प्यार लिये हुए। और उसमें है प्रचण्ड सत्य-निष्ठा और अनुप्राणित करनेवाला स्वातंत्र्य-प्रेम। और जो भी उसकी राह से गुजरता है, उसके जादू से प्रभावित हुए बिना रह नहीं सकता, और गांव-शहर के साधारण लोगो में

भी नया जोश भर गया है।"[५]

अंग्रेजो ने पहले इसे बचकानापन कहकर उपेक्षा की, लेकिन जैसे ही सारे देश की जनता इस आन्दोलन में शरीक हुई, खतरो के प्रति सरकार सजग हो उठी। भारत मे निर्मम दमन का दूसरा दौर शुरू हुआ। शान्तिपूर्ण जुलूसो को भंग करने के लिए अध्यादेश जारी किये गए। पुलिस को जन-समूह पर लाठी चार्ज और गोलीबारी करने के आदेश दे दिये गए। इस नृशंस आक्रमण ने भारतीय जनता को—यहां के स्त्री, पुरुष और बच्चो को—क्रोधोन्मत्त कर दिया और ब्रिटिश सरकार का विरोध करने का उनका दृढ निश्चय और भी द्विगुणित हो गया।

गांधीजी, पिताजी और जवाहर-सहित हज़ारों लोग पकड़कर जेलो मे ठूस दिये गए। अब कमला, नान और मुझ-पर उन लोगो के काम का भार आ पड़ा। हम सभाएं करतीं और कांग्रेस के आदेशों का पालन भी; यहांतक कि बुढापे और कमजोर स्वास्थ्य के बावजूद अम्मां ने भी पिकेटिंग किया, जुलूस निकाले और पुलिस की लाठियां खाईं। कमला (जो इलाहाबाद जिला कांग्रेस की अध्यक्ष थीं) अपनी बीमारी को जैसे भूल ही गईं और सविनय अवज्ञा आन्दोलन को बढाने और सगठित करने के लिए शहर और सारे जिले में दौड़-धूप करने लगी। उनकी उमंग और अथक परिश्रम निश्चय ही वीरतापूर्ण और सराहनीय थे।

भारतीय इतिहास और पुराण वीरांगनाओं, भक्त महिलाओ, साध्वियों और देवियों के आख्यानों से भरे पड़े हैं। इन दुर्जेय महिलाओं में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई हैं, जो सिर्फ

सौ सवासौ साल पहले अंग्रेजो से लडी थी, काश्मीर की महारानी दिद्दा है, जिसने मुगल आक्रमणकारियो के दांत खट्टे कर दिये थे; और दूसरी बहुत-सी वीरागनाएं हैं, जिन्होने लडाई के मैदान मे दुश्मनो से मोर्चे लिये । उन महिलाओ मे लीलावती-जैसी गणितज्ञ भी हैं, जो अपने भाई कन्नौज के महाराजा हर्षवर्धन के दरबार मे उनके साथ बराबरी के दर्जे मे बैठती और राज-काज निपटाती थी । और उन महिलाओं मे भक्त मीराबाई भी हैं, जिनके भजन आज भी सारे भारत मे श्रद्धा-भक्ति से गाये जाते हैं । हमारे धर्मशास्त्रों में अकेले शिव, कृष्ण और राम आदि पुरुप-देवताओं का ही उल्लेख नही है, इनके साथ हमेशा इनकी पत्नियो के भी नाम जुडे हुए हैं और एक साथ शिव-पार्वती, राधा-कृष्ण, सीता-राम की पूजा-प्रार्थना का विधान है । हमारे धर्म में नारी और पुरुष की अविच्छिन्न एकता को अर्धनारीश्वर की कल्पना मे साकार और स्वीकार किया गया है । हमारे यहां जबतक पति के साथ पत्नी नही बैठती, कोई भी धार्मिक कृत्य, व्रत, उत्सव या अनुष्ठान सम्पन्न नही होता ।

गांधीजी ने भारत की महिलाओ से अपील की कि वे पुरुषो के साथ अपना सही और उचित स्थान ग्रहण करे । उन्होने इस बात पर जोर दिया कि स्वतंत्रता की लडाई अकेले पुरुषो द्वारा नही जीती जा सकती । महिलाएं, जो मनुष्य-जाति का आधा भाग हैं, अपने पर लादे हुए एकान्तवास से वाहर निकले, पुरुषो के कन्धे-से-कन्धा भिडाकर खडी हो और आजादी की लडाई मे अपनी बराबरी की भूमिका अदा करे । उनकी इस अपील का बड़ा ही अनुकूल प्रभाव हुआ । पहले

१६२१ मे थोडी संख्या मे और फिर १६३० मे काफी वड़ी तादाद मे महिलाएं पुरुषो की सहायता के लिए निकल आई। वे जुलूसो मे भाग लेने, लाठी-गोली खाने और गिरफ्तार होकर जेल भी जाने लगी। वे विदेशी कपडे और शराब की दुकानों पर धरना देती हुई गर्मी के दिनो घण्टो धूप मे खडी रहती। वे काग्रेस सगठन मे अध्यक्ष के पदो पर आसीन हुई और उन्होनेअपने क्षेत्र के रोजमर्रा के राजनैतिक कार्यो को कुशलता-पूर्वक निबाहा।

मैं यूथ लीग (नौजवान भारत सभा)की सचिव थी और अपने परिवार की महिलाओ मे सबसे पहले गिरफ्तार होने का सौभाग्य मुझे मिला। इन्दिरा को जेल से बाहर रह जाना अच्छा न लगा। उसने स्वयसेवक दल मे कार्य करने के लिए आवेदन किया, लेकिन वह वहुत छोटी थी --सिर्फ बारह बरस की, इसलिए उसे भर्ती न किया जा सका। तब काग्रेस की कार्रवाइयो मे भाग लेने के लिए कृतनिश्चय उसने अपने ही ढग से काम करने का फैसला किया।

उसने पास-पड़ोस के सभी गरीब-अमीर लडके-लडकियो को वुलाकर कहा कि मुहल्ले के तमाम बच्चो को पीछेवाले लान मे इकट्ठा कर सभा का आयोजन करो। उसमे मैं उन्हे एक बहुत बढिया योजना बताऊगी। दूसरे दिन हमारे पिछवाडे-वाले लान मे सैकड़ो वच्चे आ जुटे। इन्दिरा ने एक पक्के-पौढे नेता की तरह उनके आगे भाषण दिया। उसका सुझाव था कि जो कांग्रेस देश की आजादी की लड़ाई लड़ रही है उसका काम करने के लिए वच्चो का एक सेवा दल वनाया जाय। कांग्रेस के काम मे हाथ वटाने के जितने भी रहस्यपूर्ण तरीके

उसने सोचे थे, वे भी उसने अपने बाल-श्रोताओ को बताये।

उसने कहा :

"जो कुछ मैं बता रही हूं उसे करने मे खतरा तो जरूर है। अगर पुलिस ने हम गिरफ्तार किया तो बडो की तरह जेल शायद ही भेजे, कोई और ही सजा दे, हो सकता है कि बेत मारकर छोड़ दे।"

और अन्त मे उसने पूछा कि क्या आप लोग मातृभूमि की सेवा के लिए तैयार है ? वहां उपस्थित सभी बालक-बालिकाओं के लिए युद्ध मे सम्मिलित होने का यह आह्वान था। चारों ओर जो-कुछ हो रहा था उसकी जानकारी बच्चों को थी ही और फिर स्वय उनके माता-पिता लाठी-गोली का सामना कर रहे थे, इसलिए सब-के-सब फौरन एक स्वर से राज़ी हो गए। उनके लिए खतरा अपने-आपमें बहुत बड़ा आकर्षण था और घर के बडे-बूढो की तरह वे स्वय भी खतरा उठाने को बेताब हो रहे थे।

इन्दिरा ने रामायण की कथा के आधार पर अपने इस संगठन का नाम 'वानर-सेना' रखा। वनवास में जब रावण सीता को हर ले गया तो वानरश्रेष्ठ हनुमान ने लंका के अशोकवन मे जाकर सीता का पता लगाया, वानरों की सहायता से समुद्र पर पुल बाधकर लंका पर आक्रमण किया गया और वानर-सेना की मदद से ही रावण का वध, लंका-विजय और सीता की मुक्ति हुई। ...

इन्दिरा ने रामायण की इस कथा का स्वाधीनता-संग्राम में व्यावहारिक उपयोग किया। उसने जो पुल बनाया वह बड़ो और बच्चों के बीच एकता का सेतु था। हजारो बच्चे उसकी

वानर-सेना मे भर्ती हुए। वह उनसे कवायद-परेड करवाती और सबको अलग-अलग काम सौपती। बच्चे झण्डे बनाने, लिफाफो पर पते लिखने, जुलूस मे स्वयसेवकों को पानी पिलाने आदि कई कामो के द्वारा कांग्रेस की मदद किया करते। कुछ निडर और हिम्मती बच्चे रात मे सभाओ और जुलूसो के पोस्टर चिपकाते। वे एक दल का सन्देश दूसरे दल को इतनी सावधानी और सफाई से पहुंचाते कि किसी को कानोकान खबर न होने पाती; उनका यह काम भूमिगत पद्धति की वीरतापूर्ण मिसाल ही था। गिरफ्तारियो के लिए जव पुलिस मकानो को घेर लेती तो ये बच्चे बड़े भोलेपन से अन्दर-बाहर दौडा करते। पुलिस यह सोचकर उनकी ओर कोई ध्यान न देती कि कुतूहलप्रिय बच्चे तमाशा देखने की गरज से आ जुटे हैं और अपनी बालसुलभ चंचलता के कारण भाग-दौड़ कर रहे है। उन्हें क्या पता कि बच्चे कांग्रेस की महत्त्वपूर्ण सूचनाएं ज़ुबानी पहुंचाने का काम करते थे।

बाद मे इन्दिरा से इस वीरता और साहसपूर्ण कार्य के बारे मे अक्सर पूछा जाता रहा है। उसीके शब्दों में सफलता के कारण ये थे :

"पुलिस-घेरे के बाहर-भीतर उछल-कूद करनेवाले बच्चे पर कोई ध्यान न देता। इस बात की ओर किसी का खयाल भी न जाता कि वह कोई महत्त्वपूर्ण काम भी कर सकता है। और बच्चा था कि सन्देश-सूचना को रट-रटाकर सम्बन्धित लोगो के पास पहुंच जाता और कहता : 'सुनिए, आपको यह करना है और यह नही करना है। पुलिस दल-बल के साथ यहा पहुंच गई है। फलां-फलां साहब गिरफ्तार किये जाने-

वाले है।' या और जो भी खबर होती वह पहुंचा देता।

"इसी तरह हम लोग भेदिये का काम भी करते थे। थाने के सामनेवाले हिस्से में बैठे सिपाही अक्सर आपस मे बाते किया करते कि आज कहां तलाशी होगी, कौन गिरफ्तार किया जायगा, आदि। और बाहर कबड्डी या कौडी-काड़ा खेल मे लगे चार या पाच बच्चो की ओर उनमे से किसीका ध्यान न जाता। और इस तरह बच्चे आन्दोलन मे लगे लोगो तक खबर पहुंचाया करते।"[६]

आजादी का आन्दोलन दिनोंदिन ज़ोर पकड़ता गया और उसके साथ ही गिरफ्तारियो की तादाद भी बढती गई। पिताजी और जवाहर नैनी-जेल मे थे। कांग्रेस कार्यकारिणी को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया था। जो नेता गिरफ्तार हो जाते, वे अपनी जगह दूसरो को समिति का सदस्य नियुक्त कर जाते और पुलिस उन्हें भी गिरफ्तार कर लेती। इस तरह कमला और दूसरी बहुत-सी औरते कार्यकारिणी की सदस्य बनी। जिस नये भारत का आविर्भाव हो रहा था उसमे महिलाए अपना उपयुक्त स्थान ग्रहण करती जा रही थीं और इसके लिए पुरुषों ने उनका स्वागत और प्रशंसा ही की। स्वयं जवाहर ने अपने आत्मचरित 'मेरी कहानी' में महिलाओ के इस कार्य के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित की है :

"हमें अपनी जनता और खासतौर पर अपनी महिलाओं पर गर्व था। मै अपनी माता, पत्नी और बहनो तथा कई चचेरी वहनो और महिला मित्रों के कार्यो से बहुत ज्यादा सन्तुष्ट और खुश था। एक महान कार्य में साथी होने

की नई भावना से जुड़े हुए हम एक-दूसरे के बहुत करीब आ गए थे। ऐसा लगता था कि परिवार एक ज्यादा बडे समूह मे विलीन हो गया है और फिर भी अपनी पुरानी लज्जत और घनिष्ठता को बरकरार रखे हुए है।"[७]

और इस तरह हमारे परिवार के सभी छोटे-बडे सदस्य उस आन्दोलन मे अपना योगदान कर रहे थे। हमारी कार्रवाइयो की उडती खबरे पिताजी को जेल मे मिली और उन्होने १६ जुलाई, १९३० को परिवार के नाम एक गश्ती चिट्ठी लिखी। (बन्दियों को महीने में सिर्फ एक पत्र लिखने की इजाजत थी, इसलिए पिताजी सबको एक साथ गश्ती चिट्ठी के जरिए लिखा करते थे).

हुजूरसाहब (नौकर अम्मां को इसी नाम से पुकारते थे, इसलिए पिताजी भी मजाक में इसी सम्बोधन का प्रयोग करते थे:) "अपने बूढे हाड़ों पर आप कुछ ज्यादती ही कर रही हैं। अगर स्वराज्य को अपनी जिन्दगी में कायम होते देखना चाहती है तो वेचारी वूढी हड्डियों पर थोड़ा रहम फरमाइए।"

कमला : "तुम्हारा खत उतना मुकम्मिल नही है जितनी मुझे उम्मीद थी और अपनी सेहत के बारे मे तुमने कुछ नहीं बताया। डा० मर्स की सलाह के मुताविक ठीक से अपना इलाज कर रही हो न? जो डेपुटेशन हमसे मिलने के लिए आना चाह रहा है, उसे अन्देशा है कि नाउम्मीद ही लौटना होगा। स्वराज्य भवन किन लोगों के हाथ में है? इस बात का खयाल रहे कि वह मकान लापरवाही का शिकार न हो जाय।"

नान : "लगता है कि 'दावतनामे' के लिए तुम बहुत

बेकरार हो रही हो। अगर तुम्हें हमारे साथ रखा जा सके, तो उसमें कोई तुक भी है, मगर यह मुमकिन नहीं। जल्दबाजी मे दावतनामा मंजूर करके तुम पीछेवालों की मुश्किलों मे इजाफा ही करोगी। अगर वक्तसर वह आये, जैसाकि देर-सवेर तुम सभी के लिए--मेरा मतलब है बीवी मां और बच्चों को छोड़कर बाकी सबके लिए—आयगा ही तो फिर बिला शक कोई चारा नही रह जाता। मगर तुम्हे अपने तई कोई जल्दबाजी नहीं करना चाहिए।"

बेट्टी (मेरा घर का नाम): "क्या बात है बेगमसाहबा, इस हफ्ते तुमने हमें एक सतर तक नही लिखी ? खत लिखने मे तो तुम्हें खूब महारत हासिल है। अपने गरीब बाप को अपनी इस खुसूसियत से महरूम क्यो रखती हो ? उम्मीद तो यही करता हूं कि तुम भली-चंगी हो, वर्ना किसी-न-किसी ने तो जरूर ही बताया होता कि नही हो। दावतनामे के बारे में जो एहतियात नान को बरतने के लिए कहा है वही तुम्हारे बारे में भी दोहराना चाहता हूं। खत लिखना—अपने मीठे प्यारे ढग से, जिसकी कि तुम आदी हो।"

इन्दु (इन्दिरा): "वानर-सेना मे तुम्हारी हैसियत क्या है ? मेरा सुझाव है कि हर मेम्बर के दुम होनी चाहिए और वह उसके ओहदे के लिहाज से लम्बी-छोटी हो। बिल्ले पर हनुमान की छाप ठीक है, मगर हनुमानजी के हाथ मे रहने-वाली गदा का न होना ही मुनासिब है। याद रखो कि गदा का मतलब होता है हिसा, और हम लोग अहिसक फौज हैं। तुम लोगो को कवायद-परेड की तालीम देनेवाला कोई है या नहीं ? यह बहुत जरूरी है। तुम्हे अपने-आपको चुस्त-दुरुस्त

भी रखना होगा। दौडने की मश्क करती रहो। पापू (उसके पिताजी) रोज सवेरे दो मील की दौड़ लगाते है। तुममे विना रुके कम-से-कम एक मील दौड़ने का माद्दा तो होना ही चाहिए। धीरे-धीरे फासला बढाती जाओ। मैं अपने बागीचे के उस ढाल पर, जो नीचेवाली जमीन को दूसरे हिस्सो से जुदा करता है, घूमता था और उसे मैंने नपवाया भी था, मगर नाप याद नही रहा। तुम फिर से उसका नाप करवा लेना और मालूम करना कि उसके कितने फेरे करने से एक मील बनता है। फिर दौड़ते हुए उसके दो या तीन फेरे करो, जितना तुम आसानी से विना थके और विना दम फूले कर सको। धीरे-धीरे फेरो को बढाती जाओ, मसलन हर दूसरे या तीसरे दिन आधे फेरे के हिसाब से। इस तरह तुम जल्दी ही बिना थके या बिना दम फूले एक मील तक दौडने लगोगी।"[७]

—मोतीलाल नेहरू

जेल-जीवन के तनावो और कष्टो का परिणाम होना ही था और आखिर वह हुआ। जवाहर बराबर पिताजी की सेवा-टहल मे लगे रहते, (क्योकि दोनो की कोठरिया पास-पास थी), मगर उनका स्वास्थ्य तेजी से गिरता ही गया और सितम्बर मे उन्हे रिहा कर दिया गया। अम्मां, नान और मैं उन्हे स्वास्थ्य-सुधार के लिए मसूरी ले गई। कमला इलाहाबाद मे कांग्रेस की गतिविधियो मे लगी हुई थी, इसलिए वह और इन्दिरा घर पर ही रही। कुछ हफ्तो बाद, जब जवाहर भी रिहा हो गए तो वह और कमला हमारे पास मसूरी आ गए। लेकिन जब हम लौटकर इलाहाबाद आये तो जवाहर को एक भाषण देने के अपराध मे पुनः गिरफ्तार कर के ढाई

बरस की सजा ठोंक दी गई ।

सारे देश मे इस गिरफ्तारी और सजा के विरोध में सभाए हुई । एक सभा मे अम्मां, नान और मैं भी गई, जिसमे कमला ने वह पूरा भापण पढकर सुनाया जिसके लिए जवाहर को इतनी लम्बी सजा दी गई थी । नतीजा यह हुआ कि वह भी गिरफ्तार कर ली गई ।

१९३१ की जनवरी खत्म होते-होते पिताजी की हालत बहुत खराब हो गई । वह अब-तब के मेहमान हो गये । कमला, जवाहर, गाधीजी, रणजीत (नान के पति) और कांग्रेस कार्य-कारिणी के सभी सदस्य रिहा कर दिये गए । पिताजी ने बैठकर सबका स्वागत किया । यद्यपि उन्हे बहुत तकलीफ हो रही थी, लेकिन अपार आत्म-बल के कारण उन्होने हम सबसे शान्तिपूर्वक बाते की और बराबर होश मे रहे ।

"मनुष्य खुद देवदूतो के आगे हार नही मानता और न वह मौत के सामने ही पूरी तरह सिर झुकाता है । वह हार मानना है तो अपनी क्षीण इच्छा-शक्ति की कमजोरी की वजह से ही मानता है ।"　　—एडगर एलन पो

□　　□　　□

पिताजी की मृत्यु ६ फरवरी को हुई । उस महान् शोक में गांधीजी ने अम्मां को सान्त्वना दी । हम सब भी उस महान पिता और दादा के न रहने से बहुत दु खित थे । यही खयाल आता कि अब आनन्द भवन उनके प्रसन्न ठहाकों से कभी न गूजेगा । लेकिन इतना सन्तोष जरूर था कि वह हमारे लिए साहस और दुर्बलता के सामने नतमस्तक न होने की बड़ी ही गौरवशाली विरासत छोड़ गए है ।

२६ अप्रैल, १६३१ को जवाहर ने इन्दिरा को दिलासा देते हुए एक पत्र लिखा था (उस दिन वह अपने पिता और माता के साथ श्रीलंका जानेवाले जहाज पर थी) :

"हम उनके लिए शोक करते है और कदम-कदम पर उनकी कमी को महसूस करते हैं। दिन गुजरते जाते हैं, लेकिन न तो दुःख कम होता दीखता है और न उनके विछोह की असह्यता ही। लेकिन फिर सोचता हूं कि हमारा ऐसा आचरण उन्हे कभी पसन्द न आता। उन्हे यह हर्गिज पसन्द न होता कि हम दुःख से पस्त हो जायं। वह तो यही चाहते कि जैसे उन्होंने अपनी तकलीफों का मुकाबला किया, हम भी वैसा करे और उनपर विजय पाये। वह यही चाहते कि हम उनके अधूरे छोड़े हुए काम को जारी रखे। जब काम हमे पुकार रहा है और भारत की आजादी का मसला हमारी सेवाओ की मांग कर रहा है, हम चुप कैसे बैठ सकते हैं और व्यर्थ के शोक के सामने सिर कैसे झुका सकते हैं ? इसी उद्देश्य के लिए उन्होने जान दी। इसी उद्देश्य के लिए हम जिन्दा रहेगे, कोशिश करेंगे, और अगर जरूरत हुई तो जान भी दे देगे। आखिर हम उनकी संतान हैं और हममे उनकी लगन, ताकत और दृढ निश्चय का कुछ-न-कुछ अंश मौजूद है।"[८]

६

जेल की कोठरी से पिता द्वारा इतिहास की शिक्षा

•

इन्दिरा कुछ दिनों दिल्ली के एक कान्वेंट स्कूल में पढ़ी और फिर इलाहाबाद के एक स्कूल मे जाने लगी। लेकिन स्कूलों मे उसकी नियम से लगातार शिक्षा न हो सकी। जवाहर जेल से पत्र लिख-लिखकर उसकी शिक्षा की पूर्ति करते रहे। उसके विचारों और ज्ञान को दिशा देने के इरादे से उन्होंने उसकी दसवी वर्षगांठ के दिन से उसे पत्र लिखना शुरू किया था जो बाद में इलाहाबाद के एक प्रकाशक द्वारा 'पिता के पत्र पुत्री के नाम' पुस्तक के रूप में प्रकाशित किये गए। और चूंकि जवाहर उसे इतिहास का रसास्वादन कराना चाहते थे, इसलिए पत्रो की दूसरी किस्त मे उन्होंने दुनिया की तमाम घटनाओ का—आदि मानव से वर्तमान सभ्यताओ तक का वर्णन किया है।

"दुनिया ने कैसे आहिस्ता-आहिस्ता लेकिन निश्चित रूप से तरक्की की है। दुनिया के आरम्भ के सरल जीवो की जगह पर ज्यादा उन्नत और पेचीदा जीव कैसे आ गए और कैसे सबसे आखीर मे जीवो का सिरताज आदमी पैदा

हुआ और अपनी बुद्धि के जोर पर विजय पाई।"[1]

इन्दिरा अपने पिता के पत्रों को प्यार करती थी। वे पत्र उसे हमारे पुस्तकालय की पुस्तकें पढने को प्रेरित करते थे। लम्बी-लम्बी टागोवाली दुबली-पतली, गम्भीर और सकोची स्वाभाव की वह किशोरी देखने मे सुकुमार लगती थी। कोई भी बात हो, वह मेरे पास दौड़ी आती, मानों सहारे के लिए मुझी पर निर्भर करती हो और आशा है, इसमे कोई परिवर्तन न होगा।

१९३० में जवाहर ने, पुन नैनी जेल से, उसे एक स्मरणीय पत्र लिखा :

"इन्दिरा प्रियदर्शिनी के नाम,

उसके तेरहवे जन्म दिन पर—

"अपनी साल गिरह के दिन तुम बराबर उपहार, और शुभकामनाए पाती रही हो। शुभकामनाए तो तुम्हे अब भी बहुत-सी मिलेगी, लेकिन नैनी जेल से मैं तुम्हारे लिए कौन-सा उपहार भेज सकता हूं? मेरे उपहार बहुत वास्तविक या ठोस शक्ल के नही हो सकते। वे तो हवा के समान सूक्ष्म ही होगे। जिनका मन और आत्मा से सम्बन्ध हो—ऐसा उपहार शायद तुम्हें कोई नेक परी ही दे सके—और जिन्हे जेल की ऊची दीवारे भी नही रोक सके।

"प्यारी बेटी, तुम जानती हो कि उपदेश देना और नेक सलाह बाँटना मुझे कितना नापसन्द है। इसलिए मेरा हमेशा से यह विश्वास रहा है कि यह जानने के लिए कि क्या सही

[1] इन पत्रो का हिन्दी अनुवाद 'विश्व-इतिहास की झलक' नाम से सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली ने प्रकाशित किया है।

है और क्या नही, क्या करना चाहिए और क्या नही करना चाहिए। सबसे अच्छा तरीका यह नही है कि उपदेश दिया जाय बल्कि सही तरीका यह है कि बातचीत और चर्चा की जाय, क्योकि अक्सर ऐसी चर्चाओ में से कुछ-न-कुछ सचाई निकल आती है।

"इसलिए अगर मेरी कोई बात तुम्हे उपदेश-जैसी जान पडे तो उसे कड़वी घूट मत समझना। यही समझना कि मानो हम दोनो सचमुच बातचीत ही कर रहे हैं और मैंने तुम्हारे सामने विचार करने को कोई सुझाव रखा है।"

"जिस साल तुम्हारा जन्म हुआ, अर्थात् सन १९१७, वह इतिहास का एक बहुत प्रसिद्ध वर्ष है। इसी साल एक महान नेता ने, जिसके हृदय मे गरीबों और दुःखियो के लिए बहुत प्रेम और हमदर्दी थी, अपनी कौम के हाथों से ऐसा ऊँचा काम करवा लिया, जो इतिहास मे अमर रहेगा। उसी महीने मे, जिसमे तुम पैदा हुई, लेनिन ने उस महान क्रान्ति को शुरू किया था, जिससे रूस और साइबेरिया की काया पलट हो गई और आज भारत मे भी एक दूसरे महान नेता ने, जिसके हृदय मे मुसीबत में फसे और दुःखी लोगो के लिए दर्द है और जो उनकी सहायता के लिए बेताब हो रहा है; हमारे देशवासियो मे महान प्रयत्न और उच्च बलिदान करने के लिए नई जान डाल दी है, जिससे हमारा देश फिर आजाद हो जाय और भूखे, गरीब और पीड़ित लोग अपने पर लदे हुए बोझ से छुटकारा पा जाय।" "भारत में आज हम इतिहास का निर्माण कर रहे हैं। हम और तुम बडे खुश-किस्मत हैं कि ये सब बाते हमारी आखो के सामने हो रही

है, और इस महान नाटक में हम भी कुछ हिस्सा ले रहे है।

"मैं नही कह सकता कि हम लोगो के जिम्मे कौन-सा काम आयगा; लेकिन जो भी काम आ पडे, हमे यह याद रखना चाहिए कि हम ऐसा कुछ नही करेंगे, जिससे हमारे उद्देश्यो पर कलंक लगे और हमारे राष्ट्र की वदनामी हो ·· सही क्या है और गलत क्या है, यह तय करना आसान काम नही होता। इसलिए जव कभी तुम्हे शक हो तो ऐसे समय के लिए तुम्हे एक छोटी-सी कसौटी बताता हूं। शायद इससे तुम्हें मदद मिलेगी। कोई काम खुफिया तौर पर मत करो, और न कोई ऐसा-काम करो जिसे तुम्हें दूसरो से छिपाने की इच्छा हो; क्योकि छिपाने की इच्छा का मतलव है कि तुम डरती हो और डरना वुरी वात है और तुम्हारी शान के खिलाफ है। ··

"प्यारी नन्ही, अव तुमसे विदा लेता हूं, और कामना करता हूं कि बड़ी होकर भारत की सेवा के लिए एक वहादुर सिपाही बनो।"[२]

और इन्दिरा "वडी होकर भारत की सेवा के लिए एक वहादुर सिपाही वनी।"

१९३१ के नये साल के नये दिन जो पत्र लिखा गया, उसमे जवाहर ने इतिहास पर कुछ और चिन्तन करते हुए विछोहजनित एकाकीपन पर मर्मस्पर्शी टिप्पणी की है :

"इतिहास एक सिलसिलेवार मुकम्मिल चीज है, और जवतक तुम्हे यह मालूम न हो कि दुनिया के दूसरे हिस्सो मे क्या हुआ, तुम किसी एक देश का इतिहास समझ ही नही सकती।·· हमेशा याद रखो कि अलग-अलग देशो के लोगों

मे इतना ज्यादा फर्क नहीं होता जितना लोग समझते हैं।

" मुझे तुम्हारी मम्मी का और तुम्हारा खयाल आया इसके बाद सवेरा होने पर खबर मिली कि तुम्हारी मम्मी गिरफ्तार कर ली गई। और मुझे इसमे कोई शक नही कि मम्मी बिलकुल प्रसन्न और सन्तुष्ट होंगी।

"लेकिन तुम अपने आपको अकेली अनुभव कर रही होगी। पन्द्रह दिन मे तुम एक दफा मुझसे और एक दफा अपनी मम्मी से मिल सकोगी और हम दोनो के सदेशे एक-दूसरे को पहुंचा दिया करोगी। लेकिन मैं तो कलम और कागज लेकर बैठ जाया करूंगा और तुम्हारा ध्यान किया करूंगा। तब तुम चुपके से मेरे पास आ बैठोगी, और हम एक-दूसरे से बहुत-सी चीजों के बारे में बातचीत करेंगे। हम गुजरे हुए जमाने का स्वप्न देखेंगे और भविष्य को बीते हुए जमाने से ज्यादा शानदार बनाने की तरकीबे सोचेंगे।"[3]

पिताजी की बीमारी के कारण जवाहर जेल से रिहा कर दिये गए, इसलिए उनका पत्र लिखने का यह सिलसिला कुछ समय के लिए रुक गया। पिताजी की मृत्यु के तुरंत बाद गांधीजी लार्ड इर्विन से बातचीत करने के लिए दिल्ली गये। उनके बीच सुप्रसिद्ध दिल्ली-समझौता हुआ—जो 'गाधी-इर्विन समझौता' कहलाता है। उस समझौते से हममें से कइयो को घोर निराशा हुई, क्योकि उसके कारण सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित कर दिया गया था। और यों हमारे महान संघर्ष का सारा जोश और उल्लास समाप्त हो गया।

कराची मे कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ उसमे गांधीजी ने समझौते की धाराओ का खुलासा किया और जवाहर ने

उसके समर्थन मे एक प्रस्ताव भी रखा। लेकिन अपने भाषण मे उन्होने समझौते के प्रति अपने संशय भी अभिव्यक्त किये।

कराची-कांग्रेस के बाद, जवाहर का स्वास्थ्य इतना खराब हो गया कि डाक्टरो ने आराम करने और आबहवा बदलने की सलाह दी। कमला और इन्दिरा के साथ श्रीलका मे एक महीने की छुट्टी मनाने के लिए वह जहाज के रास्ते बम्बई से रवाना हुए। ग्यारह महीने के बाद जवाहर फिर जेल मे बन्द कर दिए गये और उन्होने इन्दिरा के लिए इतिहास की झलक के पत्रो का सिलसिला पुनः प्रारम्भ किया। पहले ही पत्र मे उन्होने उस 'शानदार छुट्टी' की मधुर स्मृतियां का भावुकतापूर्ण उल्लेख किया है। कमला और इन्दिरा के साथ बिताये उन आनन्ददायी दिनों की स्मृति ने अपनी बेटी को पत्र लिखने की उनकी इच्छा को और भी बलवती कर दिया था।

इस बीच सविनय अवज्ञा आन्दोलन फिर शुरू हो गया था। गांधीजी अभी दूसरी गोलमेज परिषद में भाग लेकर लन्दन से लौट भी नही पाये थे कि हमारे कई नेता समझौता भंग करने के आरोप मे गिरफ्तार कर लिये गए और कांग्रेस को गैर-कानूनी कर दिया गया। कमला उन दिनो बम्बई मे बीमार पडी थी और आन्दोलन मे भाग न ले पाने के कारण खूब कसमसाती रहीं। नान और मैं आन्दोलन में जी-जान से जुट गई, गिरफ्तार हुई और पन्द्रह महीने की सजा हो गई। अम्मां ने एक जलूस का नेतृत्व किया और पुलिस की लाठियो से बूरी तरह घायल हुई—पुलिस ने निशाना साधकर बार-बार उनके सिर पर लाठिया बरसाई थी।

घर पर इन्दिरा और नान की तीनों छोटी बच्चियो की पढ़ाई की समस्या उठ खडी हुई। स्वराज्य भवन (कांग्रेस के मुख्यालय) पर सरकार ने कब्जा कर लिया था और आनन्द भवन को भी जब्त करने की अफवाह जोरो पर थी। गांधीजी ने पूना के एक बोर्डिंग स्कूल का नाम सुझाया—'प्युपिल्स ओन स्कूल', जिसे उनके परिचित वकील नाम के एक राष्ट्रवादी पारसी दम्पती चलाते थे। इसलिए चारों लडकियों को पूना भेज दिया गया।

शुरू-शुरू मे तो इन्दिरा को वहां जरा भी अच्छा न लगा। घर की खूब याद आती। रात मे बिस्तर मे मुह छिपाकर रोया करती। लेकिन श्रीमती वकील के स्नेहपूर्ण व्यवहार के कारण धीरे-धीरे चित्त को अशान्ति और उदासी दूर होती गई। फिर यह खयाल भी था कि घरवाले सुनेंगे तो क्या कहेंगे—अपनी बेटी की इस दुर्बलता को वे धिक्कारते ही, और पिता के पत्र भी बराबर इस बात की याद दिलाते रहते कि उसे घर के दूसरे लोगो का खयाल रखना और उनसे अच्छा व्यवहार करना चाहिए। इसलिए जल्दी ही वह छोटे बच्चों की देख-भाल करने लगी—उन्हे कपडे पहनाती, बाल ओछ देती और उनकी पढ़ाई में मदद करती।

वह स्वयं बड़ी सजग, कड़ा परिश्रम करनेवाली और कुशाग्रबुद्धि छात्रा थी। खासतौर पर अंग्रेजी भाषा, इतिहास और फ्रेंच भाषा का, जो उसने स्विट्ज़रलैण्ड मे सीखी थी, उसका ज्ञान बहुत अच्छा था। बहुश्रुत (खूब पढा था और राजनैतिक जानकारी भी प्रचुर मात्रा मे थी) और नेतृत्वगुण-

है) होने के कारण उसने स्कूल के सास्कृतिक कार्यक्रमो मे अपनी ओर से बहुत योग दिया। वह खेल-कूद मे भाग लेती और स्कूल की ओर से खेले जानेवाले नाटकों मे उसने अभिनय भी किये। वह शिक्षको और छात्रों दोनो मे ही समान रूप से और बहुत लोकप्रिय हो गई। उसके राजनैतिक ज्ञान और वाद-विवाद प्रतियोगिताओ मे उसकी श्रेष्ठता के परिणामस्वरूप स्कूल में नकली (मॉक) पार्लमिट का जो आयोजन किया गया, उसकी वह प्रधानमन्त्री चुनी गई थी।

इन्दिरा और उसकी तीनों फुफेरी बहने पूना की यरवदा-जेल में गांधीजी से भेट करने भी गई थी। सितम्बर १९३२ मे उन्होने ब्रिटिश सरकार द्वारा दलित जातियो को पृथक् निर्वाचन का अधिकार देने सम्बन्धी साम्प्रदायिक निर्णय के विरुद्ध जेल मे आमरण अनशन शुरू कर दिया था। इस सामाजिक अन्याय ने, जिसे अंग्रेजो ने बहुत बड़ा राजनैतिक मसला बनाना चाहा था, देश की जनता को जगा दिया और सारे राष्ट्र में एक जबर्दस्त हलचल शुरू हो गई। कांग्रेस छुआछूत मिटाने के काम मे लग गई। गांधीजी के उपवास की बदौलत 'पूना-पैक्ट' अस्तित्व मे आया। देशव्यापि उग्र आन्दोलन से घबराकर ब्रिटिश मंत्रिमण्डल को पूना पैक्ट स्वीकार करना पड़ा और गांधीजी का उपवास समाप्त हुआ।

जब चारो लडकिया मिलने के लिए आई तो अपनी बेटी के लिए जवाहर की सतत उत्कण्ठा का खयाल कर गांधीजी ने उन्हे तार किया : "इन्दु (और) स्वरूप की बच्चियो से मिला। इन्दु खुश दिखाई दी और कुछ तगड़ी थी। खूब मज़े

१९३३ के आरम्भ मे नान और मै जेल से रिहा हुई। पहले तो हम दोनो अम्मां के साथ कमला को देखने के लिए कलकत्ता गईं, जो वहां इलाज करवा रही थी। उसके बाद हम लोग पूना गईं और वहां नान की लड़कियो और इन्दिरा के साथ एक हफ्ता हँसी-खुशी से बिताया।

जवाहर की दो बरस की सजा की अवधि पूरी होने को आई और उसके साथ ही विश्व इतिहास की झलक देनेवाले पत्रो का सिलसिला भी खत्म हुआ। ९ अगस्त, १९३३ को उन्होने इन्दिरा के नाम इस शिक्षा-माला का अन्तिम पत्र भेजा, जो बहुत ही सुन्दर और कई राजनेताओं, दार्शनिकों तथा कवियो के उद्धरणों से भरा हुआ है :

"प्यारी बेटी, हमारा काम खत्म हुआ। इस लम्बी कहानी का अन्त आ गया। अब मुझे आगे कुछ नही लिखना है, परन्तु धूमधाम से पूर्णाहुति की इच्छा मुझे एक और पत्र लिखने को प्रेरित करती है—यही अन्तिम पत्र है!...

"विश्व के सौन्दर्य की सराहना तथा विचार और कल्पना के जगत मे विचरण करना आसान है। लेकिन इस तरह दूसरो की तकलीफों से कतराने की कोशिश करना और इस बात की फिक्र न करना कि दूसरो पर क्या बीतती है, न तो साहस का लक्षण है और न सहानुभूति की भावना का ही। विचार तभी सार्थक है जब वह कर्म के रूप मे प्रकट हो। 'कर्म ही विचार की अन्तिम परिणति है।' हमारे मित्र रोम्यॉ रोलॉं ने कहा है, 'जो विचार कर्म की ओर प्रवृत्त न हो, वह सब-का-सब निरर्थक और महज विश्वासघात है। इसलिए, अगर हम विचार के दास हैं तो हमें कर्म के भी दास होना चाहिए।'

"हमारा काम खत्म हुआ, प्यारी बिटिया, और अब यह अन्तिम पत्र भी समाप्त होता है। अन्तिम पत्र ! नही, कभी नहीं ! मैं तुम्हे जाने कितने पत्र और लिखूगा। मगर यह सिलमिला खत्म होता है, इसलिए,

तमाम शुदा !"[५]

घर लौटते ही जवाहर को एक नई पारिवारिक समस्या से जूझना पड़ा। मैंने नान से उन्हें यह बताने को कह दिया था कि मैंने अपने भावी पति का चुनाव कर लिया है। यह सुनकर भाई की जो प्रतिक्रिया हुई, उसका वर्णन मैं अपनी पुस्तक 'कोई शिकायत नही'* मे कर चुकी हूं.

"जवाहर ने मुझसे राजा के बारे मे बड़े ही विशिष्ट ढंग से बात की। आंखो मे प्रसन्न मुस्कराहट के साथ उन्होने कहा, 'अच्छा तो प्यारी वहन, मैंने सुना है कि तुम शादी करने की सोच रही हो। क्या उस युवक के बारे मे मुझे कुछ बता सकती हो ?' पहले तो मैं सकपका गई, लेकिन फिर कहा कि जरूर वताऊगी। जवाहर ने पूछा कि राजा क्या करते हैं। मैंने कहा कि बैरिस्टर है और अभी-अभी वकालत शुरू की है। फिर जवाहर ने राजा के परिवार के बारे मे पूछा तो मुझे कहना पडा कि उसके बारे मे तो मैं कुछ भी नही जानती।" जवाहर ने किसी क़द्र परेशानी के कहा, 'क्या वाहियात वात करती हो' !"[६]

पर भाई अपने होनेवाले वहनोई से मिलने के लिए फौरन बम्बई दौड गए और लौटकर अपनी स्वीकृति दे दी। राजा

* यह पुस्तक हिन्दी मे सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली से प्रकाशित हुई है।

हठीसिंह और मेरी शादी आनन्द-भवन में २० अक्तूबर, १९३३ को हुई।

जवाहर को मालूम था कि उनका अधिक दिन जेल से बाहर रहना न हो सकेगा। जितने दिन बाहर रहे उसमें उन्हे दो काम करने का अवसर मिल गया। एक तो कमला के साथ ज्यादा-से-ज्यादा समय गुजार सके और दूसरे, इन्दिरा की आगे की शिक्षा का प्रबन्ध कर सके। "मै इस बात के सख्त खिलाफ हूं कि वह किसी सरकारी या अर्द्ध-सरकारी विश्व-विद्यालय मे भर्ती हो।" उन्होने लिखा था, "मुझे वे नापसन्द हैं, और उनका पूरा तौर-तरीका दफ्तरी, सख्त, बेरहम और निरकुश होता है।"[७]

१९३४ के जनवरी महीने मे वह कमला के इलाज के बारे मे डाक्टरो से सलाह-मशविरा करने के लिए कमला को साथ लेकर कलकत्ता गये। कलकत्ता से वे लोग रवीन्द्रनाथ ठाकुर से मिलने और उनके द्वारा स्थापित विश्वविद्यालय को देखने के लिए भी शान्तिनिकेतन गये। उन्होने इन्दिरा को वही भर्ती कराने का फैसला किया।

पूना मे 'प्युपिल्स ओन स्कूल' की तीन साल की नियमित पढाई से इन्दिरा को बहुत लाभ हुआ। १९३४ मे उसने मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास की और शान्तिनिकेतन मे भर्ती हो गई। इस महान अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय मे साहित्य, सगीत, कला और नृत्य पर खास ध्यान दिया जाता था। सारी दुनिया के विद्यार्थी वहां शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते थे। वहां का जीवन बड़ा ही सयमित और सादगीपूर्ण था। विद्यार्थियो को खुद ही अपने कमरो की सफाई और दूसरे

घरेलू काम करने पड़ते थे। इन्दिरा की रुचि कला और नृत्य की ओर हुई। उसने मणिपुरी नृत्य सीखा और रवि बाबू की एक नृत्य नाटिका मे एकल नृत्य भी किया।

शान्तिनिकेतन मे इन्दिरा का पहला साल अभी पूरा हो ही रहा था कि उसे अकस्मात् वहा की पढाई छोड़नी पड़ी। कमला की हालत बहुत खराब हो गई थी और डाक्टरों ने जर्मनी के बेडनवीलर सेनीटोरियम मे चिकित्सा कराने की सलाह दी। जवाहर जेल मे थे, इसलिए इन्दिरा का अपनी बीमार मां के साथ परदेश जाना जरूरी हो गया। रवि बाबू ने जवाहर को लिखा

"खिन्न मन से ही हमने इन्दिरा को विदा किया है, क्योंकि वह यहां हमारे लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो रही थी। मैंने उसे बहुत ध्यान से देखा है और जिस प्रकार आपने उसका लालन-पालन किया वह निश्चय ही प्रशसनीय है। उसके सभी शिक्षक एक स्वर से उसकी प्रशंसा करते हैं और छात्र-समुदाय की भी वह अत्यन्त प्रियपात्र है। आशा करता हूं कि सब शुभ ही होगा और वह यहा शीघ्र लौटेगी।"[८]

अपने जीवन मे शान्तिनिकेतन के योगदान को इन्दिरा स्वीकार करती है, क्योंकि रवि बाबू ने उसे कला और कविता से प्यार करना सिखलाया।

७

"हमारे सुख के सपने सारे..."

•

१९३३ के अगस्त महीने की आखिरी तारीख से लेकर १२ फरवरी, १९३४ तक—पूरे पांच महीने और तेरह दिन, कमला और जवाहर साथ-साथ रहे। इन खुशियो भरे महीनो मे जो उन्होने कलकत्ता मे, रवि बाबू के साथ शान्तिनिकेतन मे और इलाहाबाद मे बिताये, दोनो एक-दूसरे के बहुत निकट और प्रिय हो गए थे। कमला बहुत प्रसन्न थी और लगता था जैसे तबीयत बिलकुल ठीक हो गई है।

लेकिन जवाहर फिर जेल मे ठूस दिये गए। इस बार उन्हे पहले कलकत्ता के अलीपुर-जेल मे रखा गया और फिर वहा से ७ मई को उनका देहरादून तबादला कर दिया गया। देहरादून की जेल मे ही उन्होने अपना आत्मचरित—'मेरी कहानी'* लिखना शुरू किया—कुछ तो जेल-जीवन की उदासी और निष्क्रियता से मुक्ति पाने और कुछ भारत मे जो हुआ

---

* यह पुस्तक हिन्दी मे सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली से प्रकाशित हुई है।

और हो रहा था उसके सम्बन्ध मे अपने सवालो का जवाब पाने के लिए।

जुलाई मे कमला बहुत बीमार हो गई। उनकी हालत इतनी चिन्ताजनक हो गई कि जवाहर को पुलिस के पहरे मे इलाहाबाद लाया गया। इन्दिरा भी शान्तिनिकेतन से आ गई। कमला को अत्यधिक दुर्बल और क्षीण पाकर जवाहर सन्न रह गए। एक ही उद्देश्य के लिए समर्पित दोनो के मन पूरी तरह मिले हुए थे और वे एक-दूसरे पर निर्भर भी करते थे। कमला जवाहर के लिए सुख-शान्ति का स्रोत थी और उन्होने कभी अपने पति को यह मालूम न होने दिया कि वह कितनी अधिक बीमार है और पति के सग-साथ के लिए कितनी लालायित रहती है। उन्होने निराशा को कभी पास नही फटकने दिया और जब भी जवाहर के पास रही, चिन्ता और निराशा के क्षणो मे उन्हे दिलासा और नई हिम्मत देती रही।

जवाहर को अपनी पत्नी के पास ग्यारह दिन रहने की अनुमति दी गई। उनकी उपस्थिति और प्यारभरी सेवा-टहल से कमला का मन बहलता रहा और उन्हे इतना आराम पहुंचा कि तबीयत सुधरने के आसार दिखाई देने लगे। लेकिन ब्रिटिश सरकार को यह स्वीकार न हुआ। इलाज करनेवाले डाक्टरो से रोज कमला के स्वास्थ्य की बुलेटिन मगवाई जाती थी। जैसे ही पता चला कि खतरा टल गया है, पुलिस भेजकर जवाहर को नैनी जेल, जो आनन्द-भवन से सिर्फ आठ मील के फासले पर है, पहुंचा दिया गया। ब्रिटिश हुकूमत उन्हे खतरनाक मानती थी और इसलिए जेल में ही बन्द

रखना ठीक समझती थी। कलेजे पर पत्थर रखकर उन्हें जाना पड़ा। विदा करते समय बीमार पत्नी की वीरतापूर्ण मुस्कान उनकी आंखो में नाचती रही।

उनके जाने के बाद कमला की हालत बराबर बिगड़ती चली गई। सितम्बर मे फिर हालत चिन्ताजनक हो गई और जीवन के लिए खतरा पैदा हो गया। सरकार ने जवाहर को रिहा करने के लिए यह शर्त रखी की वह राजनैतिक कार्रवाइयो मे भाग न लेने का आश्वासन दे। यह जानते हुए भी कि पत्नी की इस विकट बीमारी में वह उसे छोड़कर कोई भी राजनैतिक कार्य नही कर सकते, उन्होने आश्वासन देने से इन्कार कर दिया। नतीजा यह हुआ कि अक्तूबर मे पुलिस पुनः उन्हे इलाहाबाद छोड़ गई। उन्होने आकर देखा कि कमला तो तेज बुखार मे तपता हड्डियो का ढांचा-भर रह गई है। लेकिन उस क्षणिक-सी मुलाकात मे भी वज्र संकल्प की उस महिला ने अपनी सारी शक्ति बटोरकर पति के कान में यही कहा, "आपके द्वारा सरकार को आश्वासन देने की कोई बात हो रही है क्या ? ऐसा हर्गिज न कीजिएगा।"[1]

डाक्टरों ने यह सोचकर कि स्वच्छ हवा और शक्तिवर्धक जलवायु मे रहने से शायद लाभ हो, कमला को भुवाली के सेनीटोरियम मे भर्ती करा दिया गया। यह छोटा-सा पहाडी कस्बा हिमालय के वनाचल मे ऐसी जगह स्थित है, जहा से गिरिराज की हिममण्डित धवल चोटिया साफ दिखाई देती हैं। यहां का ठण्डा और आरोग्यदायी जलवायु अनुकूल सिद्ध हुआ और उनका स्वास्थ्य सुधरने लगा। सरकार ने इतनी सौजन्यता जरूर बरती कि जवाहर को अल्मोडा जिला जेल

भेज दिया, जो भुवाली से ज्यादा दूर नही है। साढे तीन महीने मे उन्हे पाच वार अपनी पत्नी को देखने जाने की इजाजत दी गई।

हमारे एक चचेरे (ममेरे या फुफेरे ?) भाई डा० मदन अटल शुरू से कमला की परिचर्या कर रहे थे। मई १९३५ में उन्होने कमला को जर्मनी ले जाने का फैसला किया, क्योकि वहां के ब्लैक फारेस्ट में स्थित वेडनवीलर सेनीटोरियम में वढिया-से-बढिया इलाज हो सकता था। इसीलिए इन्दिरा को शान्तिनिकेतन की अपनी पढाई छोड़नी पड़ी, जिससे वह अपनी मां को बेडनवीलर ले जा सके और साथ रह सके। निष्ठावान डाक्टर अटल भी उन लोगो के साथ गये।

वहा उन लोगो से मिलने के लिए फीरोज गाधी नामक (महात्मा गाधी का सम्बन्धी नहीं) एक पारसी युवक, जो लन्दन स्कूल आफ इकनॉमिक्स का विद्यार्थी था, जब भी छुट्टी पाता, अक्सर लन्दन से पहुंच जाया करता था। वह कमला का बड़ा भक्त और प्रशंसक था। कमला की ही वजह से वह सविनय अवज्ञा आन्दोलन मे काग्रेस का स्वयसेवक वना था।

कमला का और मेरा उससे परिचय उस समय हुआ जब हम महिलाओ की एक टुकड़ी के साथ एक कालेज पर धरना दे रही थी। कालेज के लड़के, जिनमे फीरोज भी था, चहार-दीवारी पर बैठे हमे देख रहे थे। हमने नारे लगाये और उनसे सरकारी कालेज की पढ़ाई छोड़कर राष्ट्रीय आन्दोलन में शरीक होने के लिए कहा।

उस दिन गजब की गर्मी थी, लेकिन हम लोग चिल-

चिलाती धूप मे घण्टो पिकेटिंग करती रही। मारे प्यास के हमारे गले सूख रहे थे। आमतौर पर ऐसा होता था कि दर्शक धरना देनेवालों को पानी पिला दिया करते थे, लेकिन लड़को ने ऐसा कुछ नही किया। उन्होने इसे एक अच्छा-खासा तमाशा ही समझा और मजा ले-लेकर देखते रहे। सहसा कमला बेहोश हो गई। फौरन लड़के चहारदीवारी पर से कूदकर हमारे पास दौडे आये। वे कमला को उठाकर पेड की छाया मे ले गए, भागकर पानी लाये और उनके सिर पर गीली पट्टी रखी। उन्ही मे से कोई पखा ले आया और कमला के चेहरे पर झलने लगा। होश आने पर हम कमला को घर ले आये।

इस घटना ने विद्यार्थियो के दिल-दिमाग को बदल दिया। दूसरे ही दिन कई विद्यार्थियों ने, जिनमे फीरोज भी था, कालेज छोड दिया और काग्रेस कार्यालय मे आकर स्वयसेवको मे नाम लिखा लिया। सत्याग्रह के प्रति कमला की निष्ठा, उनकी वीरता और कष्ट-सहिष्णुता से फीरोज इतना प्रभावित हुआ कि उनका भक्त ही बन गया और हमेशा छाया की तरह उनके साथ रहने लगा। जिला समिति के अध्यक्ष की हैसियत से उन्हे अक्सर गावो का दौरान करना पडता था। फीरोज उनके चाय-नाश्ते की टोकरी उठाये गांव-गांव साथ फिरा करता।

इसलिए जब उसे पता चला कि कमला को इलाज के लिए यूरोप ले गये हैं, तो अपनी मालदार मौसी (चाची या बुआ ?) को उसने किसी तरह इस बात के लिए राजी कर लिया कि वह उसे पढने के लिए इग्लैण्ड भेज दे। मा की चिन्ता मे व्याकुल इन्दिरा के लिए वह एक बड़ा सहारा हो

गया था।

अभी भी, अल्मोड़ा की पहाड़ी जेल में बन्द, जवाहर कमला और इन्दिरा दोनो की चिन्ता मे घुल रहे थे। पहाड़-से दिन काटे नही कट रहे थे। तभी एक दिन तार मिला (सरकारी खानापूरी और सेन्सर के कारण यह तार भी हमेशा की तरह देर से ही दिया गया था) कि कमला की हालत तेजी से गिरती जा रही है। ४ सितम्बर १९३५ को उन्हे सूचना दी गई कि बाकी रही छः महीने की सजा रद्द की जाती है। दूसरे दिन वह इलाहाबाद पहुच गए और वहा से हवाई जहाज के द्वारा यूरोप के लिये चल दिए। कई शहरो मे रुकना पडा और रेल से भी यात्रा करनी पडी और इसलिए पूरे पाच दिन लग गए, तब कही ९ सितम्बर को वह बेडनवीलर पहुच पाए।

बीमार पत्नी के बिस्तर के पास बैठे और ब्लैक फारेस्ट मे घूमते हुए उन्हे सत्याग्रह-सग्राम मे कमला के उत्साह, साहस और वीरतापूर्ण कार्यो का ही विचार आता रहता था। उन विषाद-भरे दिनो के विचारो को आठ वर्ष बाद उन्होने लिपि-बद्ध किया

"एक-एक करके कमला के सैकडो चित्र और उसके गहरे और अनमोल व्यक्तित्व के सैकड़ो पहलू मेरे दिमाग में घूमते रहते। हमारे ब्याह को करीब बीस वर्ष हो चुके थे, फिर भी न जाने कितनी बार उसके मन और आत्मा के नये रूपो को देखकर मैं अचम्भे मे पड जाता था। मैंने उसे कितनी ही तरह से जाना था और बाद के दिनों मे तो उसे समझ पाने की पूरी कोशिश भी की थी। यह बात नही कि मै उसे बिलकुल पहचान ही न सका हूं, लेकिन यह सन्देह अक्सर मेरे मन में

होता था कि मैने उसे पहचाना भी है या नही। उसमें परियो जैसा कुछ मायावी था—दुर्ग्राह्य, वास्तविक होते हुए भी अवास्तविक, जिसे पूरी तरह समझ पाना मुश्किल···

"मेरे सामने अपनी बीती हुई जिन्दगी की तस्वीरे घूम रही थी और उनमे कमला हमेशा साथ दिखाई देती थी। मेरे लिए वह भारत की महिलाओं की ही नही बल्कि नारी-मात्र की प्रतीक बन गई थी। मै उससे कहा करता कि हम लोग कितने भाग्यवान हैं और वह भी इसे स्वीकार करती; क्योकि आपस मे हम कभी-कभी लडे भले ही हों, एक-दूसरे से नाराज भी हुए हों, लेकिन उस जीवन-ज्योति को कभी बुझने न दिया, सतत जलाये रखा और जिन्दगी हम दोनों को नये-नये करिश्मे दिखाती और एक-दूसरे की नई झलक देती रही।"[२]

कमला ने कुछ ताकत हासिल करके हम सबको चकित कर दिया। क्रिसमस के बाद वह कहने लगी कि बेडनवीलर मे रहते-रहते मैं उकता गई हूं, अब कही और ले चलो। डाक्टर अटल राज़ी हो गए। १९३६ का जनवरी महीना खत्म होते-होते उन्हे स्विट्‌जरलैण्ड मे लोजान के निकट एक दूसरे सेनीटोरियम मे ले जाया गया।

कमला की हालत में फिर सुधार होने लगा। इन्दिरा बेक्स (जो लोजान से ज्यादा दूर नही था) के उस स्कूल मे पढने चली गई जहां वह पहले पढ चुकी थी और जवाहर चूकि दुबारा कांग्रेस के अध्यक्ष चुने थे, अप्रैल के अधिवेशन के लिए भारत लौटने की तैयारियां करने लगे। उनकी उडान के चार दिन पहले कमला की हालत अचानक बहुत ज्यादा खराब हो गई। २८ फरवरी १९३६ को उनका प्राणान्त हो

गया और लोजान मे ही दाह-संस्कार हुआ। मृत्यु के समय जवाहर, इन्दिरा और फीरोज उनके पास थे।

इन्दिरा मातृ-बिछोह-जनित शोक पर काबू पा सके, इसलिए जवाहर उसे सुरम्य झीलोंवाले मांट्रचू ले गये और वहां कुछ दिनो स्नेह-दुलार भरी बातो से समझाते और उसका मन बहलाते रहे। फिर वह बेक्स के स्कूल चली गई और जवाहर हवाई जहाज से भारत लौट आये।

उड़ान के दरमियान, जैसाकि उन्होने आठ बरस बाद अहमदनगर किले के जेलखाने से लिखा .

"एक भयानक अकेलापन मुझपर छा गया और मैंने ऐसा महसूस किया कि मुझसे कुछ रह नही गया और मैं बिना किसी मकसद का हो गया हूं। मै अपने घर की तरफ अकेला लौट रहा था, उस घर की तरफ जो अब घर नही रह गया था, और मेरे साथ एक टोकरी थी और उस टोकरी में राख और अस्थियो का एक कलश था। कमला का सिर्फ यही बच रहा था और हमारे सुख के सपने सारे मर चुके थे और राख हो चुके थे। वह अब नही रही, कमला अब नही रही—मेरा मन अब यही दुहराता रहा।"[३]

बगदाद पहुंचकर उन्होने अपने आत्म-चरित के प्रकाशक को लन्दन एक समुद्री तार भेजा। उन्होने पुस्तक मे यह समर्पण जोड़ने की सूचना दी थी—"कमला को, जो अब नही रही।"

कराची मे झुण्ड-के झुण्ड लोग उनसे मिलने के लिए आये। "और तब इलाहाबाद, जहा हम लोगों ने उस कीमती कलश को वेग से वहनेवाली गंगा तक पहुंचाया और फिर उस पवित्र नदी मे उन अस्थियो को प्रवाहित कर दिया।"[४]

वह इतने शोक-सन्तप्त हुए कि असमय ही बूढे लगने लगे। उनकी उदास आंखो में अन्तर की गहन पीड़ा छलकी पड़ती थी। उनकी यह हालत देखकर मेरे हृदय मे हूक उठती और मैं तिल-मिलाकर रह जाती थी।

८

जीवन कसौटी पर

जवाहर इन्दिरा को आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय मे भर्ती करवाना चाहते थे, इसलिए वेक्स मे कुछ समय पढने के बाद वह लन्दन की मैट्रिकुलेशन परीक्षा की तैयारियो के लिए इग्लैण्ड चली गई और वहां ब्रिस्टल के वैडमिण्टन स्कूल मे दाखिल हो गई। उसके भारत लौटने और राजनीति मे उलझने मे कोई तुक नही थी, क्योकि सविनय अवज्ञा आदोलन के स्थगित हो जाने से देश का राजनैतिक वातावरण शान्त हो गया था। वह फीरोज से, जो 'लन्दन स्कूल आफ इकनॉमिक्स' मे पढता था, बराबर मिलती रहती। ब्रिस्टल के बाद वह आक्सफोर्ड के सोमरविले कालेज मे पढने लगी। लेकिन राजनीति उसके खून मे समायी हुई थी, इसलिए वह उससे अलग न रह सकी। वह जब भी लन्दन जाती, इण्डिया लीग के लिए काम करती। उसके सचालक उन दिनो कृष्ण मैनन थे। इदिरा कभी भारत की स्पेन-सहायता-समिति के लिए तो कभी चीन-सहायता-समिति के लिए (दोनो के संस्थापक और अध्यक्ष उसके पिता ही थे) चन्दा जमा किया करती और

कभी वह केवल स्पेनी अभिनेत्री ला पेशोनारिया से मिलने के लिए ही लन्दन जाती थी।

१९३७-३८ मे यूरोप मे खासी उथल-पुथल मची हुई थी। हिटलर ने पड़ोसी देशो पर अपने हमले शुरू कर दिये थे। स्पेन मे घरेलू युद्ध छिडा हुआ था। अमरीका और यूरोप में उदार विचारो की नई लहर के कारण वहा का नवयुवक स्पेनी गणतन्त्र को बचाने के लिए इन्टरनेशनल ब्रिगेड (अतर्राष्ट्रीय मुक्ति-सेना) मे खिचा चला आ रहा था। जो भारतीय विद्यार्थी यूरोप में थे उनके लिए वह समय बड़ा ही उत्तेजनापूर्ण था। अपने स्वतन्त्रता-आन्दोलन के प्रति सजग और इंग्लैंड के मुक्त वातावरण मे रहने के कारण वे समझ सकते थे कि जो जनता सार्वजनिक रूप से यह घोषणा कर सकती है कि वह 'राजा और देश' के लिए युद्ध नही करेगी, उसके निकट स्वतन्त्रता का क्या मतलब होता है। ऐसी खुली घोषणाओ और प्रदर्शनों ने भारतीय सघर्ष की अतिम विजय में इन्दिरा की आस्था को और भी दृढ किया।

बहुत-से लोगों को पता था कि जवाहर की बेटी इंग्लैंड में है और वे उससे परिचय भी बढाना चाहते थे, लेकिन इन्दिरा ने अपने को सबसे दूर ही रखा। हां, अपने परिवार के विश्वासपात्र फीरोज़ से वह बराबर मिलती रहती थी।

इंग्लैंड मे उसकी दूसरी घनिष्ठ मित्र शान्ता गांधी नाम की एक भारतीय लड़की थी, जो पूना के 'प्युपिल्स ओन स्कूल' में उसकी सहपाठिनी रह चुकी थी। उत्कट राष्ट्र-प्रेम के अतिरिक्त उन दोनो में और भी कई बातो मे समानता थी। इन्दिरा की तरह शान्ता भी भारतीय नृत्य जानती और स्पेन

की सहायता के लिए किये जानेवाले कार्यक्रमों मे अक्सर नाचा करती थी। इन्दिरा टिकट बेचती या सहायता के दूसरे काम करती थी। एक दिन इन्दिरा ने शान्ता को फीरोज से मिलाया और शान्ता का दावा है कि दोनो के प्रेम का अनुमान उसे उसी समय हो गया था। १९४२ मे फीरोज से इन्दिरा की शादी हुई, तो शान्ता ने शायद यह कल्पना की होगी कि दोनों के प्रेम की बात उसने उन लोगो के विद्यार्थी-काल मे ही जान ली थी; लेकिन इन्दिरा, एक सच्चे नेहरू की तरह, कभी अपनी भावनाओ को प्रगट नही करती और न उस ममय उसने की होगी।

कई प्रमुख यूरोपियनो से पिता की अच्छी और काफी समय से दोस्ती थी, इसलिए इन्दिरा को बडे-बडे लोगों से मिलने के अवसर बराबर प्राप्त होते रहते थे। आक्सफोर्ड मे पढते समय अर्न्स्ट टालर और उसकी पत्नी क्रिस्टाइन से (जिससे वह १९२७ मे स्विट्जरलैंड मे मिली थी) उसने अपना परिचय फिर ताजा किया। अब वे हिटलर के आतक के कारण जर्मनी से भागे हुए शरणार्थी थे। इन्दिरा के कथनानुसार अर्न्स्ट टालर की आंखो में गहन पीडा भरी हुई थी। वह पहले महायुद्ध के बाद से ही जर्मनी का क्रान्तिकारी नेता रहा था। इन्दिरा ने उसकी बातो को गहन मानवता और स्वातन्त्र्य-प्रेम से ओत-प्रोत पाया। उसके महान नाटक 'मैन एण्ड दी मासेज' (मनुष्य और जनता) में हिंसा के विरुद्ध मानव-आत्मा के सघर्ष को अकित किया गया है। इन्दिरा के प्रति टालर-दम्पती का प्रेम उस पत्र से प्रकट होता है, जो क्रिस्टाइन ने जवाहर को लिखा था, "वह सुन्दर ही नही,

पवित्र भी इतनी है कि मन प्रसन्न हो जाता है। मुझे वह एक नन्हे फूल की तरह लगती है, जिसे हवा आसानी से उड़ा ले जाती है; लेकिन मेरा खयाल है कि वह हवा से डरती नही।"[1] टालर-दम्पती इंग्लैड से सयुक्त राज्य अमरीका मे बसने के लिए चले गए। १९३९ मे अर्न्स्ट टालर ने आत्महत्या कर ली। इन्दिरा के मन मे वह हिटलर द्वारा सताये हुए अत्याचार-पीडितो का प्रतीक था।

जवाहर फिर पूरी तरह कांग्रेस की गतिविधियो मे रम गए। १९३७ मे वह पुनः अध्यक्ष चुने गए। ब्रिटिश सरकार ने भारत के लिए एक नया सविधान तैयार किया था—तीन गोलमेज परिषदो के बाद। इस सविधान मे सूबो की धारा-सभाओ को नाम-मात्र के अधिकार (अधिकारो आ आभास-मात्र) दिये गए थे, लेकिन केन्द्र मे कोई अधिकार नही दिया गया था। यह सविधान कांग्रेस को स्वीकार न था, उसने चुनाव लड़ने और जीतकर बहुमत मे आने पर सूबो मे अपने मंत्रिमण्डल बनाने का फैसला किया। जवाहर इस नीति से सहमत न थे, फिर भी कांग्रेसी उम्मीदवारों के पक्ष मे उन्होंने चुनाव-प्रचार मे जी-जान से भाग लिया और सारे देश का दौरा किया। यह चुनावी दौरा उनके लिए 'भारत की खोज की यात्रा' सिद्ध हुआ, उन्हे अपने देश से प्यार था, "लेकिन यहा के लोगों और उन्हे एकता के सूत्र मे बांधे रखनेवाली सदियों पुरानी सस्कृति से कोई परिचय नही था।"

उनका ध्यान बराबर अपनी बेटी की ओर लगा रहता और अपने भाषणो मे वह बडे स्नेह से उसका उल्लेख भी करते। एक बार पठान कबाइलियों के आगे भाषण देते हुए

उन्होंने कहा था :

"मेरे एक बीस बरस की बेटी है, जो इस समय बहुत दूर इग्लैंड मे है। वह मेरी इकलौती सन्तान है और मुझे बहुत प्रिय है। मैंने उसे हिम्मत और अपने-आप पर भरोसा करना और कुछ भी क्यों न हो जाय, डर को कभी पास न फटकने देना वगैरा बातें सिखाने की कोशिश की है। अगर इस वक्त वह मेरे साथ होती तो मैं बेहिचक उससे कहता कि अकेली कबाइली इलाकों मे जाय, वहा के लोगो से मिले, और उनसे दोस्ती करे। मैं ऐसा इसीलिए कहता कि मुझे उसपर विश्वास है और उन लोगों पर भी (कबाइली लोगो पर भी) विश्वास है।"[१]

जवाहर लगातार दो बार कांग्रेस-अध्यक्ष रह चुके थे, इसलिए १९३७ के अन्त मे जब उनका कार्यकाल समाप्त हुआ तो वह अध्यक्ष-पद से निवृत्त हो गये।

१९३८ के आरम्भ में मैं अपने दोनो नन्हें बेटों के साथ मायके आई, जैसाकि हर साल किया करती थी। नान, उसके पति और उन लोगो के बच्चे वहां पहले से ही थे, और जवाहर भी अपने भारत-व्यापी दौरे से लौट आये थे। आपस में मिलकर हमे बडी प्रसन्नता हुई, खासकर अम्मां के साथ, (जिन्हे दो दौरे पड़ चुके थे) और हम सबकी प्यारी मौसी—बीबी अम्मां के साथ रहने का मौका मिला। बीबी अम्मां हमारी माताजी की बड़ी बहन थी, चढती जवानी मे विधवा हो गई थी और तबसे हमारे यही रहती और अम्मां की खूब देख-भाल करती थी। इन्दिरा अभी इग्लैंड मे ही थी। उसका यहा न होना हम सबको बहुत अखरता और याद भी खूब

आती थी।

अम्मा बहुत खुश थीं और उनकी तबीयत काफी अच्छी लग रही थी। लेकिन एक दिन शाम को हम बैठे बातें कर रहे थे कि वह अचानक लुढक गई। फौरन ही डाक्टर को बुलाया गया। उसने बताया कि बहुत जोर का दौरा पडा है। सारी रात जवाहर, नान, बीबी अम्मा और मैं उनके पास बैठे रहे। सवेरे उनका प्राणान्त हो गया।

मैं बीबी अम्मां से लिपट गई। उन्होने मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "सिर्फ तुम्हारी अम्मां की खातिर ही जी रही थी, अब मेरा काम पूरा हुआ।" और अम्मां की मृत्यु के चौबीस घण्टो के अन्दर-अन्दर वह भी कूच कर गई।

जवाहर थके हुए थे और उदास तथा अकेले भी। वह इन्दिरा के पास जाना चाहते थे। २ जून को वह स्पेन के लिए समुद्री मार्ग से रवाना हुए। वहां से लन्दन पहुंचे और इन्दिरा को साथ लेकर यूरोप की सैर पर निकल गए। यूरोप की अपनी इस यात्रा मे वह जहां भी गये, सर्वत्र हिटलर का आतंक और भय हावी दिखाई दिया। उन्होने यहूदियो की दयनीय दशा देखी और उन सब लोगो को भी देखा जो नाजी जर्मनी के राजनैतिक विरोधी थे। उन्होने हिटलर को ३० लाख जर्मन आबादी वाले चेक सुडेटनलैंड को हड़पते हुए देखा, और २९-३० सितम्बर, १९३८ की म्यूनिख कान्फ्रेन्स भी देखी, जिसमे ब्रिटेन और फ्रान्स ने चेकोस्लोवाकिया से किये अपने सभी वादों को धता बताकर उस आजाद मुल्क को बड़ी बेशर्मी के साथ हिटलर के हवाले कर दिया था। यूरोप और सारी दुनिया पर युद्ध के बादल मडरा रहे थे। नवम्बर में

जवाहर इलाहाबाद लौट आये। अपने साथ वह इन्दिरा को भी ले आये थे।

इस यात्रा के अन्तिम चरण मे, जब वह अरब सागर को पार कर रहे थे, जवाहर ने इन्दिरा के नाम इतिहास की शिक्षावाला एक पत्र लिखा। यह पत्र १४ नवम्बर, १९३८ को लिखा गया था। उन्होने इस पत्र को १९३३ मे लिखे अपने 'अन्तिम पत्र' का 'उपसहार' कहा है।

"इस उपसहार मे मुझे इन पाच वर्षो की कहानी का वर्णन करना है, क्योकि ये पत्र अब एक नई शक्ल में प्रकाशित होने जा रहे हैं, और इनका प्रकाशक चाहता है कि इनमे आज तक की बाते शामिल कर दी जाय।

"अब लोकतत्र का दायरा इतना बढाना होगा कि उसमे आर्थिक बराबरी का भी समावेश हो सके। यही वह महान् क्रान्ति है, जिसमे होकर हम सब गुजर रहे हैं, ताकि लोकतत्र पूरी तरह सार्थक हो और हम लोग विज्ञान तथा तकनालाजी की तरक्की के साथ-साथ चल सके।

"यह समता साम्राज्यवाद या पूजीवाद के साथ मेल नही खाती, क्योंकि उनकी बुनियाद विषमता और राष्ट्र या वर्ग का शोषण है। मौजूदा सघर्ष, जो दुनिया-भर मे दिखाई देता है, एक ओर साम्यवाद तथा समाजवाद और दूसरी ओर फासीवाद के बीच नही है। यह संघर्ष तो लोकतंत्र और फासीवाद के बीच है और लोकतत्र की तमाम असली ताकते कन्धे भिडाकर फासिस्ट-विरोधी बनती जाती हैं।"[3]

नवम्बर के अन्त मे इन्दिरा की तबीयत खराब हो गई। कारण, शायद यूरोप की लम्बी और कठिन यात्राओं की

थकान थी। जवाहर ने कहा कि पहाड़ों में सर्दियां बिताने से भली-चंगी हो जायगी और उन्होंने मुझे भी मेरे तीन और चार साल के दोनों छोटे बेटो को लेकर उसके साथ अलमोडा जाने को कहा, जहां उन्होने उसके रहने के लिए एक बगलिया ठीक कर दी थी। पहाड़ों के शान्त-एकान्त वातावरण मे इन्दिरा और मैं पुस्तकें पढ़कर और जिन महापुरुषो से हम मिली थीं उनके विचारो पर चर्चा करके या बर्फ में बच्चो को खेलते हुए देखकर अपना समय गुजारा करती। कभी हमसे मिलनेवाले भी आ जाया करते थे—यूरोपीय कलाकार और भारतीय वैज्ञानिक बोशी सेन और उनकी अमरीकी पत्नी। हमारी वे सर्दियां खूब आनन्द से कटी।

१९३९ के मार्च महीने में त्रिपुरा में काग्रेस का अधिवेशन हुआ, जिसमे हमारे पूरे परिवार ने भाग लिया। इस अधिवेशन का वातावरण बहुत उत्तेजनापूर्ण था। सुभाषचन्द्र बोस अध्यक्ष-पद के लिए दुबारा चुनाव लड़ रहे थे और गांधीजी उनके विरोधी थे तथा कांग्रेस की कार्यसमिति द्वारा नामज़द उम्मीदवार का समर्थन कर रहे थे। जवाहर भी बोस के विरुद्ध थे, क्योकि सुभाष इस आशा से तानाशाही शक्तियों से सहयोग की वकालत कर रहे थे कि वे भारत को स्वतत्र होने मे सहायता देंगी। यद्यपि कार्यकारिणी तनी रही और झगडे भी खूब हुए, फिर भी सुभाषबाबू दुबारा अध्यक्ष चुन लिये गए। मगर एक महीने के बाद ही उन्हे, गाधीजी के प्रभाव के कारण, अपने पद से इस्तीफा दे देना पड़ा।

अप्रैल १९३९ में इन्दिरा आक्सफोर्ड लौट गई। वहां वह अपनी पढ़ाई और कालेज-जीवन के संगी-साथियो में मगन

हो गई। इस बार वह जिन लेखकों से मिली उनमे एडवर्ड जे० थामसन भी थे, जिन्होने भारत पर कई पुस्तके लिखी है। दिसम्बर मे उन्होने इंग्लैण्ड से जवाहर को लिखा था :

"मैं इन्दु से मिला था। अच्छी भली लग रही थी और 'अच्छी-भली' है भी। दुवली जरूर है और चाहे तो 'सुकुमार' भी वेशक कह सकते हैं और रहने-सहने में उसे काफी सावधानी भी वरतनी होगी। लेकिन अन्दर से बहुत मजबूत है और किशोरावस्था के ये संकट-भरे दिन जव बीत जायगे, तो वास्तव मे उसकी शक्ति निखर आयगी।"[४]

लेकिन १९४० मे उसे प्लूरिसी हो गई और लन्दन के एक अस्पताल मे भर्ती होना पडा। डाक्टरों को उसकी मां की बीमारी का इतिहास मालूम था। वे डरे कि फेफड़े की सूजन कही क्षय का रूप न ले ले। उन्होने सलाह दी कि अस्पताल से छुट्टी पाते ही फौरन स्विट्जरलैंड चली जाय और वहा की सूखी और धूपवाली आवोहवा में रहे।

मैंने सुना तो बहुत घवरायी और जल्दी-से-जल्दी उसके पास पहुचने को व्याकुल हो उठी। लेकिन राजा ने विरोध किया, क्योकि युद्ध के कारण समुद्री यात्रा निरापद नही रह गई थी। इतने मे जवाहर का पत्र आ गया और मेरे जी को कुछ शान्ति मिली :

"इन्दु का अभी-अभी तार मिला। तार सालगिरह का है, मगर अपने वारे मे उसने अच्छी खवर भी जोड़ दी है। पिछले १९ दिनो से उसे बुखार नही है और सूजन भी उतर गई है। पांचेक पौड वजन वढा है। मतलव यह कि उसकी तवीयत मे सन्तोषजनक सुधार है, मगर अभी दो हफ्ते और

उसे अस्पताल में रहना होगा। उसके बाद स्विट्ज़रलैंड चली जायगी—या तो लेजिन मे या डावो किसी जगह। बहुत करके अगाथा भी उसके साथ जायगी, पर वहां रहेगी नहीं। डाक्टरों की राय उसे वहां चार या पांच महीने तक रखने की है। उसके बाद इस दुनिया का या हम लोगों का भी क्या होगा, कुछ कहा नही जा सकता।"

लेकिन युद्ध के कारण स्विट्ज़रलैंड मे चार या पांच महीने की यह अवधि बराबर बढ़ती गई। अब उसका आक्सफोर्ड लौटना ठीक नही था, क्योंकि इग्लैंड के नगरों पर जर्मन बमबारी बहुत तेज और उग्र हो गई थी। १६४१ के आरम्भ मे इन्दिरा ने घर लौटने का फैसला किया, क्योकि भारत का स्वतन्त्रता-संग्राम फिर सक्रिय होने जा रहा था।

वाइसराय ने भारतीय जनता से परामर्श करना उचित न समझा और न जनता को स्वतन्त्रता तथा लोकतत्र के अधिकार ही दिये और भारत की ओर से युद्ध की घोषणा कर दी, तो कांग्रेस ने इसके विरोध में व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू कर दिया। कांग्रेस कार्यसमिति ने वक्तव्य दिया कि गुलामी में रहते हुए भारत इग्लैड के समर्थन मे लड़े जानेवाले युद्ध मे भाग नही ले सकता। गांधीजी ने दूसरे सत्याग्रही के रूप मे (विनोबा भावे के बाद) जवाहर को चुना। उन्हे, सरकार को यह सूचना देने के बाद कि वह एक सार्वजनिक सभा मे जनता को युद्ध-प्रयत्नो मे किसी भी तरह का सहयोग न देने के लिए कहेगे, ७ नवम्बर, १६४० को सत्याग्रह करना था। लेकिन सरकार ने हमेशा की तरह उन्हें इस बार भी पहले ही गिरफ्तार कर लिया। ३१ अक्तूबर को, जब वह गांधीजी से मिलकर

लौट रहे थे, पकडे गए और कोई महीने-भर पहले दिये गए तीन भाषणो के दण्डस्वरूप उन्हे चार वर्ष कैद की सज़ा दे दी गई। इस तरह वह फिर देहरादून की जेल में पहुंच गए।

जब मुझे पता चला कि इन्दिरा ने भारत लौटने का फैसला किया है तो बड़ी घबराहट होने लगी। उन दिनों समुद्री यात्रा खतरे से खाली न थी। जर्मन पनडुब्बियां मित्र-राष्ट्रों के कई जहाजों को डुबो चुकी थी और बराबर डुबाये जा रही थी। मैंने जवाहर को पत्र लिखा कि उसे आने से किसी भी तरह रोका जाय। मेरे इस डरपोकपन के लिए मुझे आड़े हाथो लेते हुए उन्होने लिखा :

"मैं खुश हूं कि उसने लौटने का फैसला किया। डर और खतरे तो बेशक कई हैं, मगर सबसे दूर अकेले और दु.खी रहने से बेहतर है उनका सामना करना। अगर वह लौटना चाहती है तो खतरा उठाये या फिर जो ऊपर आये उसे भोगते रहना होगा। हम सबकी जिन्दगी कठोर और कष्टमय होती जाती है। आराम के दिन कभी के बीत गए और गुजरे जमाने की बात हो गए। वे कब लौटेंगे, कौन जानता है ! और क्या कभी लौटेंगे भी ? जिन्दगी जैसी है, हमे उसके माफिक अपनेको ढालना होगा और जो नही है उसकी लालसा करते रहना बेकार है। शरीर को होनेवाली तकलीफे और खतरे मन के कष्टो और तूफानो के मुकाबले कुछ भी नही हैं। और फिर जीवन सुखमय हो या कठोर, उससे हमेशा कुछ-न-कुछ तो पाया ही जा सकता है। जिन्दगी का अगर आनन्द लेना है तो उसके लिए चुकाई जानेवाली कीमत की परवाह मत करो।"

इन्दिरा एंटिवेस, बार्सीलोना और लिस्बन होती हुई इंग्लैंड

पहुँची, जहां फ़ीरोज़ ने उसे एक फौजी जहाज में, जो सैनिको के लिए उत्तमाशा अंतरीप का चक्कर लगाता हुआ भारत आ रहा था, किसी तरह जगह दिलायी—इस यात्रा मे उसके लिए युद्ध के खतरे तो थे ही।

रास्ते में उसका जहाज एक हफ्ते डरबन मे रुका रहा। इन्दिरा को दक्षिण अफ्रीकी सरकार की रंगभेद की नीति की बात मालूम थी, इसलिए उसने जहाज पर ही रहना ठीक समझा। लेकिन डरबन में भारतीय काफी बड़ी सख्या मे रहते थे। उन्होने सुना कि जवाहर की बेटी जहाज पर है, तो उसका सार्वजनिक सम्मान करने का आग्रह करने लगे। जब इन्दिरा ने इनकार कर दिया, तब वे उसे शहर दिखाने के लिए ले गए और इस तरह इन्दिरा ने अपनी आंखो रंगभेद की नीति के शिकार नीग्रो लोगों की दुर्दशा देखी। वह इतनी विचलित हो उठी कि सार्वजनिक स्वागत-सम्मान का निमत्रण स्वीकार कर लिया और उसमें एक जोरदार भाषण दे डाला। उसने दक्षिण अफ्रीका में रहनेवाले भारतीयो से साफ-साफ कहा कि आप लोगों को अगर यहां रहना है तो यहां के असली बाशिन्दों यानी नीग्रो लोगो के साथ, जो यहां के सच्चे मालिक है, करीबी रिश्ता कायम करना चाहिए। गोरे शासको की गुलामी करने के रवैये और रगभेद की नीति स्वीकार करने के लिए उसने भारतीयो की निन्दा की और वहां की रगभेद नीति की नाजियों के जातीय उत्पीड़न से तुलना करते हुए उसे धिक्कारा। उसके इस भाषण से डरबन का भारतीय समाज इस कदर डर गया कि जबतक इदिरा का जहाज वहां रुका रहा, किसी ने उधर का रुख भी नही किया।

जून मे इन्दिरा बम्बई पहुंची। उन दिनों मैं और राजा वही रहते थे। वह दुबली और बीमार लग रही थी। सबसे पहले वह अपने पिता से जेल मे मिलने के लिए गई और उसके बाद आनन्द-भवन गई, जो पिता, माता, दादी और मौसी-मा — बीबी अम्मा के बिना अब बिलकुल सूना और उजाड लगा होगा। जवाहर उसके स्वास्थ्य के बारे मे चिन्तित तो थे ही, इसलिए फौरन उसकी डाक्टरी जाच-पडताल का बन्दोबस्त उन्होंने करवाया और मसूरी मे आराम करने और स्वास्थ्य-लाभ के लिए एक बगलिया किराये पर ले दी। उन्होने मुझे भी मेरे दोनो बेटो को लेकर साथ जाने के लिए कहा—अब एक लड़का सात बरस का और दूसरा छ. का हो गया था। मसूरी में हमारी वे गर्मियां बडे आराम और आनन्द से बीती और इन्दिरा के स्वास्थ्य मे भी बहुत सुधार हुआ। अक्तूबर में मैं बम्बई लौट आई, लेकिन इन्दिरा वही रही, क्योकि वह जगह देहरादून से जहां उसके पिता बन्दी थे, ज्यादा दूर नही थी और वह उनसे मिलने के लिए आसानी से जा सकती थी।

१

शादी जिसने तहलका मचा दिया

•

जेल की एक मुलाकात में इन्दिरा ने अपने पिता को बताया कि वह फीरोज गांधी से शादी करना चाहती है। फीरोज़ का परिवार इलाहाबाद मे ही रहता था और वह बराबर आनन्द-भवन आया-जाया करता था।

'गांधी' कुलनाम या उपनाम है और इसका संबध भी अन्य भारतीय उपनामो की ही तरह परिवार के पेशे या व्यवसाय से है। जो लोग मोदी, पंसारी या गंधी का काम करते, वे गाधी कहलाते थे। आरम्भ में जाति या सम्प्रदाय से इसका कोई सम्बन्ध नही था। महात्मा गांधी हिन्दू थे और फीरोज गांधी पारसी, और दोनो का आपस में कोई रिश्ता नही था।

पारसी लोग जोरोस्टरीय अथवा जरथुस्त्री धर्मको माननेवाले हैं और इस धर्म के प्रवर्त्तक पैगम्बर जरथुस्त्र के अनुयायी हैं। इनकी मान्यता है कि पैगम्बर जरथुस्त्र ही स्वर्ग से पवित्र अग्नि को पृथ्वी पर लाये। इसीलिए पारसी लोग अग्नि की पूजा करते हैं और इनके मन्दिर अग्नि-मन्दिर कहलाते हैं। मूलतः ये लोग फ़ारस अथवा ईरान से (कुछ [illegible] के

मतानुसार लगभग बारह सौ वर्ष पहले) मुस्लिम विजेताओं के धार्मिक अत्याचारो से त्रस्त होकर शरण की खोज मे भारत आये। कहा जाता है कि ये कई दलो मे समुद्र-मार्ग से भारत आये, लेकिन इनके भारत आने और यहां आकर बसनेवाले स्त्री-पुरुषो की निश्चित संख्या के बारे में कोई प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध नही है। कुछ लोगो का कहना है कि पांचसौ पुरुषों का सिर्फ एक ही समूह आया और उनमें कोई स्त्री नही थी। दूसरों का कहना है कि कम-से-कम पांच हजार आदमी और बीस औरतो का समूह आया। सचाई जो भी रही हो, यह सभी मानते है कि इनका काफिला भारत के पश्चिमी तट पर सूरत के विशाल और सम्पन्न नगर के समीप संजाना के बन्दर-गाह पर आकर उतरा। उन दिनों सजाना का शासक एक हिन्दू राजा था, जो सजाना का राणा कहलाता था। पारसी उसकी सेवा मे उपस्थित हुए और प्रार्थना की कि उन्हें वहां बसने और स्थानीय लोगों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने की अनुमति प्रदान की जाय। राणा ने कुछ शर्तो पर उन्हे अपने यहा शरण देते हुए प्रार्थना स्वीकार कर ली। राणा की शर्ते थी कि एक तो वे गाय को पवित्र और पूज्य मानेंगे, उसका वध नही करेंगे, दूसरे, अपनी विवाह-विधियो में कुछ हिन्दू रीतियो का समावेश करेंगे। आगन्तुक पारसियो ने इन शर्तो को खुशी-खुशी स्वीकार कर लिया और आज इतने बरसो के बाद भी उनका निष्ठापूर्वक पालन कर रहे हैं।

आज भारत मे करीब डेढ लाख पारसी हैं और अधिकतर बम्बई और उसके पड़ोसी जिले बलसाड़ मे रहते हैं। ये बडे ही परिश्रमी और उद्यमशील लोग है और हमारे देश के उद्योग

तथा विधि एवं चिकित्सा आदि व्यवसायों में प्रमुख स्थानों पर हैं। इन्हे भारत के यहूदी भी कहा जाता है। बहुत थोड़ी संख्या मे होने के कारण ये लोग अपने पुराने रीति-रिवाजो और धार्मिक कृत्यो-अनुष्ठानों से दृढतापूर्वक चिपके हुए हैं। भारत के किसी भी प्रमुख शहर मे पसारी की दुकान या शराब बेचने का कारबार करता हुआ कोई-न-कोई पारसी आपको जरूर मिल जायगा।

यह जानकर कि इन्दिरा फीरोज से शादी करना चाहती है, जवाहर थोडा परेशान हो गए। परेशानी का कारण यह नही था कि फीरोज की जाति या उसका धर्म भिन्न था। हमारे परिवार मे जाति, धर्म या राष्ट्रीयता को कभी बाधक नही समझा गया। हम दोनो ही बहनो ने गैर-काश्मीरियो से शादी की। मेरी दो चचेरी बहनो ने मुसलमानों से और एक चचेरे भाई ने हंगेरियन से शादी की है। जवाहर के विरोध के कारण कुछ और ही थे। एक तो उनका यह खयाल था कि फीरोज की पारिवारिक पृष्ठभूमि और उसका लालन-पालन हमसे बिलकुल ही भिन्न प्रकार के हैं। हमारा लालन-पालन बिलकुल पाश्चात्य ढग से हुआ था और हम लोग जीवन में भी उन्ही मान-मूल्यो को अपनाये हुए थे और जब भी किसी मित्र या रिश्तेदार की शादी होती तो अभिभावको द्वारा तय की हुई शादियों के बखिये उधेड़ने लगते। अम्मां जरूर सनातनी-हिन्दू परिवार की लड़की थी, मगर पिताजी ने उन्हें समझा दिया था कि अगर दोनों परिवारो की पृष्ठभूमि एक-जैसी है तो फिर किसी से शादी कर लेने मे कोई हर्ज नही। हमारे देश में तो आज भी शादियां अभिभावक ही तय करते

है। फर्क सिर्फ इतना हुआ है कि परिचित परिवारो के लड़के-लडकियों को आपस मे मिला देते हैं और अन्तिम फैसला उन्ही-पर छोड देते हैं। अगर माता-पिता या अभिभावकों का चुनाव उन्हे स्वीकार न हुआ, तो दूसरे प्रस्ताव रखे जाते हैं।

जवाहर की दूसरी आपत्ति यह थी कि बहुत समय विदेश मे रहने के कारण इन्दिरा को भारत के दूसरे युवको से मिलने और उन्हे समझने का अवसर नहीं मिल पाया है। लन्दन में उसने सिर्फ एक भारतीय युवक—फीरोज से ही घनिष्ठ सबंध रखा। आक्सफोर्ड मे उसने नये मित्र नही बनाये, पुरानो से ही मिलती-जुलती रही। १९३८ के नवम्बर महीने मे जब भारत लौटी (और अप्रैल १९३९ मे तो पुन. आक्सफोर्ड चली गई थी) तो हम सब राष्ट्रीय आन्दोलन में लगे थे और सामाजिक जीवन के लिए वक्त ही नही था।

जवाहर का सुझाव था कि इन्दिरा फिलहाल अपने निर्णय को स्थगित रखे और वर्तमान अवसर का उपयोग भारत के अन्यान्य युवको से मिलने-जुलने और उन्हे समझने मे करे। लेकिन इन्दिरा तो पक्का फैसला कर चुकी थी, इसलिए उन्होंने सुझाया कि वह नान से और मुझसे भी इस मामले मे परामर्श कर ले।

इन्दिरा पहले नान के पास गई, तो उन्होने भी इस शादी का विरोध ही किया। अपनी दलील के रूप मे उन्होंने परम्परा, सन्कृति और ऐसी ही अन्य बातों के अन्तर पर जोर दिया।

फिर वह बम्बई आई। कुछ दिन हमारे पास रही और इस मसले पर दिल खोलकर हमसे बाते की। राजा का तो

पहले ही दिन से यह कहना रहा कि अगर फीरोज को सच्चे मन से प्यार करती हो तो सलाह-मशविरे का चक्कर छोडो और उससे शादी कर लो। मगर मेरी राय वही थी, जो मेरे भाई की। मैंने सलाह दी कि जो फैसला सारी जिन्दगी के लिए है, उसमे जल्दबाजी नही करनी चाहिए। जवाब मे इन्दिरा ने मेरी ही शादी का उदाहरण देकर मुझे निरुत्तर कर दिया।

"आपको और राजाभाई को मिले," उसने कहा, "सिर्फ दस ही दिन हुए थे और इतने कम समय मे आपने शादी करने का फैसला कर लिया। राजाभाई शायद आपके बारे मे कुछ जानते रहे हों, आप तो उनके बारे मे कुछ भी नही जानती थी। चित्ती (फूफी के लिए तमिष शब्द), मै फीरोज को बरसो से जानती हूं और खूब अच्छी तरह जानती हूं। विदेश मे बहुत-से भारतीय युवको से भी मिल चुकी हूं। अब अपनी इच्छा के विरुद्ध दूसरो से क्यों मिलू, आखिर किसलिए ? मैं तो फीरोज़ से ही शादी करना चाहती हूं।" जवाब उसका बहुत ही युक्तियुक्त था।

जवाहर ४ दिसम्बर, १९४१ को जेल से रिहा किये गए। ७ दिसम्बर को जापान ने पर्ल हारबर पर बमबारी की। दूसरे दिन सयुक्त राज्य अमरीका और ग्रेट ब्रिटेन ने जापान के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी। एशिया मे नया मोर्चा खुलते ही अंग्रेजो की मुसीबतें भी बढ चली। ११ दिसम्बर को अमरीका ने जर्मनी और इटली के खिलाफ युद्ध की घोषणा की। मित्र-राष्ट्रो के साथ अमरीका के आ मिलने से अन्तिम विजय में अंग्रेजों का विश्वास बढ़ चला। अब भारत

के लिए इसका सिर्फ एक ही मतलब था और वह यह कि ब्रिटेन समझौते के लिए किसी भी शर्त पर तैयार न होगा, क्योंकि क्या मिस्टर चर्चिल ने कहा नही था कि वह ब्रिटिश साम्राज्य को खत्म करने के लिए इग्लैंड के प्रधानमन्त्री नहीं बने हैं? और जहा तक भारत का सम्बन्ध था, राष्ट्रपति रूजवेल्ट की चतुर्विध स्वतन्त्रता (६ जनवरी, १९४१ को निरूपित 'फोर फ्रीडम्स') और अतलान्तक चार्टर (१४ अगस्त, १९४१ को घोषित) की पूरी तरह अवहेलना कर दी गई थी। डच, फ्रेंच और ब्रिटिश फौजों को बुरी तरह पीटता हुआ जैसे-जैसे जापान बर्मा मे आगे बढता जाता था, युद्ध हम भारत-वासियो के लिए एक वास्तविकता बनता जा रहा था।

जवाहर के जेल से रिहा होते ही इन्दिरा और फ़ीरोज की शादी करने की इच्छा भी जोर पकड़ती गई। देश की उस समय की स्थिति के कारण और बहुत-कुछ अपने विचारों और मान्यताओं के कारण भी दोनों चुपचाप, बिना किसी धूमधाम के शादी करने के पक्ष मे थे। लेकिन जाने कैसे बात फूट गई और जिन्हें हमसे कुछ लेना-देना नही था, वे तक लगे शोर मचाने। इस अन्तर्जातीय विवाह के विरोध में कड़ी धमकियो से भरे हुए पत्र कट्टरपन्थी हिन्दुओ और पारसियों की ओर से आने लगे। जवाहर ने अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए एक सार्वजनिक वक्तव्य दिया :

"शादी एक निजी और पारिवारिक मामला है, जिसका खास सम्बन्ध विवाह करनेवालो से और कुछ थोड़ा सम्बन्ध उनके परिवारो से भी है। मेरा बहुत पहले से यह नजरिया रहा है कि मा-बाप को इस मामले में सलाह जरूर देनी

चाहिए, मगर आखरी फैसला उन्ही पर छोड़ देना चाहिए, जिन्हे शादी करनी है और अगर वह फैसला खूब सोच-समझ के वाद किया गया है, तो उसे अमल मे लाया जाना चाहिए और मां-वाप को या दूसरे किसी को भी उसमे रोडे अटकाने का कोई हक नहीं है। जब इन्दिरा और फ़ीरोज ने आपस मे शादी करने का इरादा जाहिर किया, तो मैंने फौरन अपनी मजूरी दे दी और साथ ही अपने आशीर्वाद भी।"

जवाहर ने गांधीजी से परामर्श किया था, जैसाकि मेरी शादी के वक्त भी किया गया था। पिताजी की मृत्यु के बाद हमारे परिवार मे उनका स्थान गांधीजी ने ले लिया था और हम उन्ही की सलाह पर चला करते थे। यह बात सभी को मालूम थी, इसलिए गांधीजी को भी धमकी-भरे पत्र मिले। इस पर उन्होने इन्दिरा को यह सलाह दी कि शादी कुछ बडे पैमाने पर ही करनी चाहिए, यद्यपि वह स्वयं हमेशा सादगी से ही विवाह करने के पक्ष मे थे। उनका तर्क था कि "अन्यथा लोग यही समझेंगे कि तुम्हारे पिता तुम्हारा साथ देने को राजी नही हैं, जो उनके और खुद तुम्हारे मामले मे भी सही न होगा।" इसलिए इन्दिरा को थोड़ी धूमधाम से शादी करने के लिए राजी होना पड़ा।

नान ने गैर-काश्मीरी से शादी की थी, मगर उसके पति ब्राह्मण थे, इसलिए दोनों का विवाह हिन्दू धार्मिक पद्धति से ही हुआ था। मेरी बात कुछ और थी। राजा जैन है, और जैन हिन्दुओं के अतर्गत ही आते हैं, फिर भी मैं ब्राह्मण होने के कारण उनसे हिन्दू पद्धति से शादी नही कर सकती थी, इसलिए अपने विवाह की कानूनी मान्यता के लिए मुझे

रजिस्ट्री के द्वारा अदालती विवाह (सिविल रजिस्ट्रेशन मैरेज) करना पडा था। तत्कालीन हिन्दू कानून के अन्तर्गत एक ब्राह्मण पुरुष, उच्च जाति का होने के कारण, किसी भी जाति की महिला से शादी करके उसे अपनी जाति में शरीक कर सकता था, लेकिन ब्राह्मण जाति की महिला अपने से नीची जाति के पुरुष से विवाह नही कर सकती थी। अम्मां मेरी अदालती शादी से खुश नही थी। वह आशा लगाये रही कि बाद में कभी हिन्दू रीति से भी मेरी शादी की रस्म पूरी हो।

इन्दिरा की शादी मार्च १९४२ मे रखी गई थी। उसकी शादी न तो उसके पिता की तरह शाही ठाठ से और न मेरी वहन की शादी-जैसी धूमधाम से हीं हो सकती थी। स्वयं मेरी अपनी शादी बहुत ही सादगी और विना किसी आडम्बर के हुई थी, क्योंकि उस समय अम्मां बहुत वीमार थीं। शादी की अदालती कार्रवाई और रजिस्ट्री का प्रबन्ध हमारे दीवानखाने मे ही कर लिया गया था और उसे फूलों से खूब अच्छी तरह सजा दिया गया था। शादी की पूरी विधि कुल जमा दस मिनट मे ही निपट गई। इसीलिए तो आज भी मेरे पति का कहना है कि शादी हुई हो, ऐसा उन्हे लगता ही नही। लेकिन इन्दिरा का विवाह वैदिक विधि से हुआ और उसमें डेढ़ घण्टे से भी ज्यादा समय लगा। खूब वड़ा शामियाना ताना गया था और सारे देश से वहुत-से मेहमान उसमे आये थे।

मार्च मे शादी का वह दिन भी वहुत सुन्दर और सुहावना था। खूब धूप खिल रही थी। इन्दिरा ने केसरिया रंग की साड़ी पहनी थी, जिसमे चांदी के छोटे-छोटे फूल टंके हुए थे। साडी का सूत उसके पिताजी ने अपने जेल के दिनों मे काता

था। सोने-चांदी के आभूषणों के बदले उसे फूलो के गहनों से सजाया गया था, जैसाकि काश्मीरियो मे रिवाज है। वह हमेशा की तरह शान्त और गम्भीर लग रही थी, परन्तु चेहरे की दमक उसके आन्तरिक उछाह को उजागर किये दे रही थी। देखने मे सुन्दर और प्रिय वह उस समय और भी सुदर्शन और प्यारी लग रही थी। उसका छरहरा बदन स्वर्गिक आभा से मडित हो उठा था।

विवाह की वैदिक विधि भी बहुत ही सुन्दर और सादगी-पूर्ण थी। ठीक समय, शुभ मुहूर्त में, उसे जवाहर लेकर शामियाने मे आये, जहां फ़ीरोज़ अपने परिवार के साथ बैठे उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। वह खादी की शेरवानी और चूड़ीदार पायजामा पहने हुए थे, जैसाकि उत्तरप्रदेश मे रिवाज है। हवनकुण्ड के सामने दूल्हा और दुलहिन पास-पास बिठाये गए। दुलहिन के एक ओर उसके पिता बैठे। उनके पासवाला आसन खाली था। सिर्फ एक कारचोबी का मसनद रखा था, जो इस बात का प्रतीक था कि यह दुलहिन की मां का आसन है, जो खुशी का यह दिन देखने के लिए जीवित न रह सकी। वह खाली आसन दूल्हे और दुलहिन को इस बात की याद भी दिला रहा था कि हर खुशी में दुःख का यत्किंचित् स्पर्श होता ही है। जवाहर ने अपनी बेटी का हाथ दूल्हे के हाथ मे थमा दिया। एक दूसरे का हाथ थामे, पंडितजी द्वारा बोले हुए शादी के पवित्र मंत्रो और प्रतिज्ञाओ का उच्चारण करते हुए, दोनो ने सप्तपदी की, अग्नि के सात फेरे करने की, परम्परागत रस्म पूरी की।

इन्दिरा और फीरोज़ सुहागरात मनाने के लिए काश्मीर

चले गए और कुछ समय वही रहे। एक दिन इन्दिरा को लू-लपटभरी मैदानी गरमीवाले आनन्द-भवन मे अपने पिता के अकेले होने की याद आई और उसने तार दिया, "काश, हम आपको यहा से शीतल बयार के झोंके भेज पाते!" जवाहर ने जवाव दिया, "धन्यवाद, लेकिन तुम्हारे पास वहां आम जो नही हैं।" वह जानते थे कि इन्दिरा को आम बहुत पसन्द हैं और आम इलाहाबाद मे बहुतायत से होते हैं।

इन्दिरा और फीरोज लौटकर इलाहाबाद में रहने लगे। कुछ दिन वे अपने प्यारे घर मे बड़ी ही निश्चिन्तता से और सुखपूर्वक रहे, लेकिन जल्दी ही राजनैतिक हलचलों और गिरफ्तारियो का दौर शुरू हो गया और वे भी जी-जान से उसमे जुट गए। अगस्त मे जवाहर और नान गिरफ्तार किये गए और सितम्बर मे वे दोनो भी पकड़कर जेल भेज दिये गए।

१०

भारत में ब्रिटिश मिशन

•

भारत पर जापानी आक्रमण का खतरा जब बहुत बढ़ गया, तो इग्लैंड ने युद्ध में भारत को सहभागी बनाने की सोची। १९४२ मे ब्रिटेन के युद्धकालीन मंत्रिमंडल ने कांग्रेस का मन जीतने और देशवासियो का रुख मित्रराष्ट्रो के पक्ष मे करने के उद्देश्य से ब्रिटिश पार्लमेंट के मजदूर सदस्य सर स्टैफर्ड क्रिप्स को भारत भेजा। सर स्टैफर्ड १९३९ मे भी भारत आ चुके थे और उन्होने अपनी ईमानदारी और योग्यता की बदौलत जवाहर तथा कांग्रेस का स्नेह और सम्मान अर्जित किया था। वह हमारे घर भोजन करने के लिए आये थे और हम लोग उनकी सादगी, सरलता एवं स्पष्टवादिता से बहुत प्रभावित और उनके प्रशंसक हो गए थे।

क्रिप्स-मिशन ने भारत के सामने निम्न सुझाव रखे, जो युद्ध की समाप्ति पर लागू किये जाने थे—औपनिवेशिक स्वराज्य और विधान बनाने के लिए एक सविधान सभा, और ब्रिटिश भारत का कोई प्रान्त अगर चाहे तो, भावी डोमिनियन (सघ) से उसके अलग रहने का अधिकार। तात्कालिक रूप से

विभिन्न दलों के कुछ भारतीय प्रतिनिधियो का समावेश कर वाइसराय की व्यवस्थापिका परिषद् का विस्तार करने की बात भी थी। लेकिन इन सदस्यो को कोई अधिकार नहीं दिया गया था। खासा बेतुका प्रस्ताव था, जिससे आगे चलकर भारत कई टुकड़ों मे बंट जाता और देश की सुरक्षा में भारत-वासियों की कोई आवाज न थी। जापान दरवाजे पर आ पहुंचा था और देश पर उसके आक्रमण का खतरा बहुत ज्यादा बढ गया था। कांग्रेस का कहना था कि ऐसे समय युद्ध 'व्यापक जन-समर्थन के आधार पर' ही लड़ा जा सकता है।

प्रस्ताव नामजूर कर दिये गए। उन्होने सारे देश में गुस्से और विरोध की लहर उठा दी थी। उधर जापानियों के हाथों अंग्रेजो को पिटते और उनका मान-मर्दन होते देख हमें बड़ी तसल्ली होती, लगता जैसे आंसू पुछ गए!

कांग्रेस हाथ-पर-हाथ धरे चुप बैठी देख तो नही सकती थी कि जापान भारत पर अधिकार कर ले, जो किसी भी क्षण हो सकता था। गाधीजी देशवासियों की नब्ज खूब पहचानते थे। उन्होने महसूस किया कि कुछ करने का ठीक समय आ गया है। लोगो को काग्रेस के मातहत सगठित और सक्रिय करने के लिए उन्होने सत्याग्रह की घोषणा कर दी। अपने पत्र 'हरिजन' मे एक लेख लिखकर उन्होने अंग्रेजों से कहा :

"आप लोग यहां बहुत रह लिये और हमारी कोई भलाई न की। अब बोरिया-बिस्तरा बांधकर कूच कीजिए। हम आपसे कोई नाता नही रखना चाहते। हमें भगवान के भरोसे छोड़कर आप चले ही जाइए!"

कांग्रेस ने गांधीजी का समर्थन किया और काम मे जुट गई। जवाहर पहले तो राजी न हुए, क्योकि वह उस सकट-काल मे अग्रेजो को परेशानी मे नही डालना चाहते थे, लेकिन देश की जनता के बदलते हुए तेवर देखकर उन्होने गांधीजी का नेतृत्व स्वीकार कर लिया।

७ अगस्त, १९४२ को अखिल भारतीय कांग्रेस समिति (महासमिति) की बैठक बम्बई मे हुई। जवाहर, इन्दिरा और फ़ीरोज बैठक के कुछ दिन पहले ही बम्बई आ गए और हमेशा की तरह हमारे यहीं ठहरे। हमारे मकान मे सोने के सिर्फ तीन कमरे थे, इसलिए राजा ने और मैंने अपना कमरा इन्दिरा और फीरोज़ को दे दिया और हम लोगो ने अपने सोने की व्यवस्था पड़ोस मे एक मित्र के यहा कर ली, जिनके पास एक अतिरिक्त कमरा था। हमारा तीसरा कमरा बच्चों के कब्जे मे था।

दिन-भर हमारा बैठको मे जाता, लेकिन बीच-बीच में मैं भोजन आदि का प्रबन्ध करने के लिए घर दौड़ी आती, ताकि मेरे भाई, भतीजी और भतीज-जमाई को किसी तरह की असुविधा और कष्ट न हो। बैठको के दरमियान मेरे भाई से बातचीत और चर्चा करने के लिए अनगिनत लोग आते। हमारे टेलीफोन व दरवाजे की घण्टी बराबर टुनटुनाती रहती। अक्सर आगन्तुक भोजन भी हमारे यही करते और ऐन वक्त बढ़े हुए लोगो के लिए खाने का प्रबन्ध करना पड़ता, जिससे मैं और मेरा रसोइया मुसीबत मे पड़ जाते। लेकिन राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारम्भ से ही मैं इस तरह की गृहस्थी की अभ्यस्त थी। चारों ओर का जोशीला वातावरण हमे

इस तरह की मुसीबतो से पार पाने मे सहायता करता था।

कांग्रेस की उस महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक बैठक के दौरान हमारे मन मे यह आशका बराबर बनी रही कि 'भारत छोडो' प्रस्ताव के पारित हो सकने के पहले ही पुलिस कभी भी झपट्टा मारकर सभी नेताओ को गिरफ्तार कर ले जायगी। इसलिए शुरू के कुछ दिन तो मैंने राते अपनी बैठक मे सोफे पर सोकर गुजारी—पता नही मेरे भाई को गिरफ्तार करने के लिए पुलिस, जैसा कि हमेशा से उसका तरीका रहा था, रात मे किस वक्त आ धमके! लेकिन कई दिन बीत गए और कुछ न हुआ, तो मै ८ अगस्त की रात अपने मित्र के यहा जाकर आराम से सो रही। अधिवेशन की कार्रवाइया बहुत बोझिल रही थी और हम काफी थक गए थे। 'भारत छोडो' प्रस्ताव उसी दिन शाम को ६ बजे पारित हुआ था और हम हलकापन महसूस कर रहे थे। भाई घर जाने के लिए अपनी मोटर मे बैठ ही रहे थे कि किसी अजनबी ने एक पर्चा थमा दी। उसमे लिखा था कि आज रात सभी नेता गिरफ्तार कर लिए जायगे। हमने इस पर विश्वास नहीं किया और अगर गिरफ्तारियां हो भी तो हमें कोई परवा न था। गाधीजी को भी ठीक यही सूचना दी गई थी, लेकिन उन्होंने भी उस पर विश्वास नही किया। उनकी दृढ़ मान्यता थी कि देश पर जापानी हमले के खतरे को देखते हुए वाइसराय अराजकता फैलाने वाला इस तरह का कोई कदम नहीं उठायेंगे।

उस शाम हमारे यहां मुलाकातियो की खूब भीड़-भाड़ रही। सभी आन्दोलन के भावी स्वरूप के बारे में चर्चा करने

के लिए आये हुए थे। उनमे दो पत्रकार भी थे—एक अंग्रेज और दूसरा अमरीकी—फिलिप तालबोट। वे दोनों ही हमारे मित्र थे। (फिलिप तो यह पुस्तक लिखे जाते समय अपने देश के राजदूत हैं।) बहुत-से मुलाकातियों ने हमारे यही भोजन किया और आधी रात के बाद कहीं जाकर भीड छटी और हमें सोना नसीब हुआ। बड़े सवेरे, करीब पांच बजे, हमारे मेज़बान ने दरवाजा खटखटाकर हमें जगाया और सूचना दी कि हमारे यहां पुलिस आई है। राजा और मैं फौरन घर दौड़े गये। ब्लैक आउट के बावजूद हमारे फ्लैट की तमाम बत्तिया जली हुई थी।

मैंने सोचा कि अकेले जवाहर को गिरफ्तार किया जायगा। राजा उनके लिए जेल मे पढने को किताबे बटोर रहे थे कि इन्दिरा ने, जिसकी पुलिस से बाते हुई थी, राजा को बताया कि गिरफ्तार किये जानेवालों में वह भी हैं और इस तरह मेरे भाई और पति को पुलिस पकड़कर ले गई। इन्दिरा, फीरोज़ और मैं एक दोस्त की मोटर मे यह पता लगाने के लिए उनके पीछे-पीछे गये कि उन्हें कहां ले जाते हैं। दूर से हमने उनकी गाडियो को विक्टोरिया टर्मिनस के अन्दर जाते देखा। स्टेशन तक जानेवाली सभी सड़कों और रास्तो पर पुलिस का भारी पहरा लगा हुआ था। गांधीजी-सहित सभी नेता गिरफ्तार कर लिये गए थे।

इन्दिरा रेल से इलाहाबाद चली गई। उसके वहां पहुंचने के दूसरे दिन पुलिस बडे सवेरे आनन्द-भवन आई और नान को गिरफ्तार कर ले गई। अब इन्दिरा अपनी तीन नन्हीं फुफेरी बहनों के साथ आनन्द-भवन में अकेली रह गई थी।

फीरोज़ आन्दोलन को गुप्त रूप से (भूमिगत) चलाने के लिए बिना किसीको बताये चुपचाप लखनऊ चला गया था। इन्दिरा को उसके बारे मे कुछ भी पता न था। उसकी गिरफ्तारी का वारण्ट जारी हुआ, लेकिन किसीको मालूम नही था कि वह कहां है।

एक दिन इन्दिरा ने जानबूझकर गिरफ्तार होना चाहा। एक कालेज के विद्यार्थियों ने उसे अपने यहां कांग्रेसी झण्डा फहराने का निमंत्रण दिया। वह जानती थी कि झण्डा फहराने पर रोक है और उसमे भाग लेनेवाले को गिरफ्तार किया जा सकता है। जब वह वहा पहुंची, तो पुलिस विद्यार्थियों पर लाठिया बरसा रही थी। उसने देखा कि जो लडका झण्डा लिये हुए खडा था वह लहूलुहान होकर जमीन पर गिर पड़ा है। इन्दिरा ने लपककर झण्डा उठा लिया और उसे फहराने लगी। विद्यार्थी उसे घेरकर खडे हो गए। अब पुलिस ने इन लोगों को अपना लक्ष्य बनाया। पहले इन्दिरा की पीठ और फिर उसके हाथो पर लाठियां बरसने लगी, लेकिन उसने न झण्डा छोडा, न उसे झुकाया। नेहरू आत्मसमर्पण करना जानते ही नहीं। न पहले कभी किया और न आगे कभी करेंगे। क्या उसके पिता ने घोडे की टापो से कुचले जाकर घुडसवार पुलिस के डण्डे नही खाये थे? क्या उसकी बूढ़ी दादी कमजोरी और बीमारी के बावजूद तबतक लाठियां नहीं खाती रही जबतक कि लहूलुहान होकर जमीन पर गिर न पड़ी? इन्दिरा उसी पिता की बेटी और उसी दादी की पोती थी। उसने अन्त तक झण्डा अपने हाथ से नही छोड़ा।

के लिए आये हुए थे। उनमे दो पत्रकार भी थे—एक अंग्रेज और दूसरा अमरीकी—फिलिप तालबोट। वे दोनों ही हमारे मित्र थे। (फिलिप तो यह पुस्तक लिखे जाते समय अपने देश के राजदूत हैं।) बहुत-से मुलाकातियों ने हमारे यही भोजन किया और आधी रात के बाद कहीं जाकर भीड़ छंटी और हमें सोना नसीब हुआ। बडे सवेरे, करीब पांच बजे, हमारे मेज़बान ने दरवाजा खटखटाकर हमें जगाया और सूचना दी कि हमारे यहां पुलिस आई है। राजा और मैं फौरन घर दौड़े गये। ब्लैक आउट के बावजूद हमारे फ्लैट की तमाम बत्तियां जली हुई थी।

मैंने सोचा कि अकेले जवाहर को गिरफ्तार किया जायगा। राजा उनके लिए जेल में पढने को किताबे बटोर रहे थे कि इन्दिरा ने, जिसकी पुलिस से बाते हुई थी, राजा को बताया कि गिरफ्तार किये जानेवालों मे वह भी हैं और इस तरह मेरे भाई और पति को पुलिस पकड़कर ले गई। इन्दिरा, फ़ीरोज और मै एक दोस्त की मोटर मे यह पता लगाने के लिए उनके पीछे-पीछे गये कि उन्हें कहां ले जाते हैं। दूर से हमने उनकी गाड़ियो को विक्टोरिया टर्मिनस के अन्दर जाते देखा। स्टेशन तक जानेवाली सभी सड़कों और रास्तों पर पुलिस का भारी पहरा लगा हुआ था। गांधीजी-सहित सभी नेता गिरफ्तार कर लिये गए थे।

इन्दिरा रेल से इलाहाबाद चली गई। उसके वहां पहुंचने के दूसरे दिन पुलिस बडे सवेरे आनन्द-भवन आई और नान को गिरफ्तार कर ले गई। अब इन्दिरा अपनी तीन नन्ही फुफेरी बहनों के साथ आनन्द-भवन मे अकेली रह गई थी।

फीरोज आन्दोलन को गुप्त रूप से (भूमिगत) चलाने के लिए विना किसीको वताये चुपचाप लखनऊ चला गया था। इन्दिरा को उसके बारे मे कुछ भी पता न था। उसकी गिरफ्तारी का वारण्ट जारी हुआ, लेकिन किसीको मालूम नही था कि वह कहां है।

एक दिन इन्दिरा ने जानबूझकर गिरफ्तार होना चाहा। एक कालेज के विद्यार्थियो ने उसे अपने यहां कांग्रेसी झण्डा फहराने का निमंत्रण दिया। वह जानती थी कि झण्डा फहराने पर रोक है और उसमे भाग लेनेवाले को गिरफ्तार किया जा सकता है। जब वह वहां पहुंची, तो पुलिस विद्यार्थियों पर लाठियां बरसा रही थी। उसने देखा कि जो लड़का झण्डा लिये हुए खडा था वह लहूलुहान होकर जमीन पर गिर पडा है। इन्दिरा ने लपककर झण्डा उठा लिया और उसे फहराने लगी। विद्यार्थी उसे घेरकर खडे हो गए। अब पुलिस ने इन लोगो को अपना लक्ष्य बनाया। पहले इन्दिरा की पीठ और फिर उसके हाथो पर लाठियां बरसने लगी, लेकिन उसने न झण्डा छोड़ा, न उसे झुकाया। नेहरू आत्मसमर्पण करना जानते ही नही। न पहले कभी किया और न आगे कभी करेंगे। क्या उनके पिता ने घोड़े की टापो से कुचले जाकर घुड़सवार पुलिस के डण्डे नही खाये थे ? क्या उसकी बूढ़ी दादी कमजोरी और बीमारी के बावजूद तबतक लाठियां नही खाती रही जबतक कि लहूलुहान होकर जमीन पर गिर न पड़ी ? इन्दिरा उसी पिता की बेटी और उसी दादी की पोती थी। उसने अन्त तक झण्डा अपने हाथ से नही छोड़ा।

रात मे फीरोज छिपकर उसे देखने के लिए आया।

के लिए आये हुए थे। उनमे दो पत्रकार भी थे—एक अंग्रेज़ और दूसरा अमरीकी—फिलिप तालबोट। वे दोनों ही हमारे मित्र थे। (फिलिप तो यह पुस्तक लिखे जाते समय अपने देश के राजदूत हैं।) बहुत-से मुलाकातियों ने हमारे यही भोजन किया और आधी रात के बाद कही जाकर भीड़ छंटी और हमें सोना नसीब हुआ। बडे सवेरे, करीब पांच बजे, हमारे मेज़बान ने दरवाजा खटखटाकर हमें जगाया और सूचना दी कि हमारे यहां पुलिस आई है। राजा और मैं फौरन घर दौडे गये। ब्लैक आउट के बावजूद हमारे फ्लैट की तमाम बत्तियां जली हुई थी।

मैंने सोचा कि अकेले जवाहर को गिरफ्तार किया जायगा। राजा उनके लिए जेल में पढने को किताबे बटोर रहे थे कि इन्दिरा ने, जिसकी पुलिस से बाते हुई थीं, राजा को बताया कि गिरफ्तार किये जानेवालों में वह भी हैं और इस तरह मेरे भाई और पति को पुलिस पकड़कर ले गई। इन्दिरा, फीरोज़ और मै एक दोस्त की मोटर मे यह पता लगाने के लिए उनके पीछे-पीछे गये कि उन्हें कहां ले जाते हैं। दूर से हमने उनकी गाडियों को विक्टोरिया टर्मिनस के अन्दर जाते देखा। स्टेशन तक जानेवाली सभी सड़कों और रास्तो पर पुलिस का भारी पहरा लगा हुआ था। गांधीजी-सहित सभी नेता गिरफ्तार कर लिये गए थे।

इन्दिरा रेल से इलाहाबाद चली गई। उसके वहां पहुंचने के दूसरे दिन पुलिस बडे सवेरे आनन्द-भवन आई और नान को गिरफ्तार कर ले गई। अब इन्दिरा अपनी तीन नन्हीं फुफेरी बहनो के साथ आनन्द-भवन में अकेली रह गई थी।

फ़ीरोज़ आन्दोलन को गुप्त रूप से (भूमिगत) चलाने के लिए बिना किसीको बताये चुपचाप लखनऊ चला गया था। इन्दिरा को उसके बारे मे कुछ भी पता न था। उसकी गिरफ्तारी का वारण्ट जारी हुआ, लेकिन किसीको मालूम नही था कि वह कहां है।

एक दिन इन्दिरा ने जानबूझकर गिरफ्तार होना चाहा। एक कालेज के विद्यार्थियो ने उसे अपने यहां कांग्रेसी झण्डा फहराने का निमत्रण दिया। वह जानती थी कि झण्डा फहराने पर रोक है और उसमे भाग लेनेवाले को गिरफ्तार किया जा सकता है। जब वह वहां पहुंची, तो पुलिस विद्यार्थियो पर लाठिया बरसा रही थी। उसने देखा कि जो लड़का झण्डा लिये हुए खड़ा था वह लहूलुहान होकर जमीन पर गिर पड़ा है। इन्दिरा ने लपककर झण्डा उठा लिया और उसे फहराने लगी। विद्यार्थी उसे घेरकर खडे हो गए। अब पुलिस ने इन लोगों को अपना लक्ष्य बनाया। पहले इन्दिरा की पीठ और फिर उसके हाथो पर लाठियां बरसने लगी, लेकिन उसने न झण्डा छोड़ा, न उसे झुकाया। नेहरू आत्मसमर्पण करना जानते ही नही। न पहले कभी किया और न आगे कभी करेंगे। क्या उसके पिता ने घोडे की टापों से कुचले जाकर घुड़सवार पुलिस के डण्डे नही खाये थे? क्या उसकी बूढ़ी दादी कमजोरी और बीमारी के बावजूद तबतक लाठियां नहीं खाती रही जबतक कि लहूलुहान होकर जमीन पर गिर न पड़ी? इन्दिरा उसी पिता की बेटी और उसी दादी की पोती थी। उसने अन्त तक झण्डा अपने हाथ से नही छोड़ा।

रात में फ़ीरोज छिपकर उसे देखने के लिए आया।

इन्दिरा का उत्साह समा नही रहा था, क्योकि पुलिस के लाठी-चार्ज के बावजूद झण्डा फहराया जा सका था। कुछ दिनो के बाद इन्दिरा ने काग्रेसी कार्यकर्त्ताओ की बैठक बुलाकर उन्हे अपने पिता और दूसरे नेताओ के बारे मे सच्ची खबरे बताई, जो उसे प्राप्त हुई थी। उस समय देश में ये अफवाहे जोरो पर थी कि सरकार नेताओ को चुपचाप या तो अण्डमान द्वीप के काले पानी ले गई है या पूर्वी अफ्रीका। ऐसी अफवाहों का यह दुष्परिणाम होता कि लोग बौखला जाते और सविनय अवज्ञा आन्दोलन को शान्तिपूर्ण ढंग से चलाने के बजाय हिंसा और हत्याओं-जैसी उग्र कार्रवाइयों पर उतर आते। भारत के ब्रिटिश शासक तो यह चाहते ही थे, जिससे वे अपने दमन-राज्य और बिना मुकदमा चलाये नेताओ और कार्यकर्त्ताओ को बन्दी शिविरो-जैसी स्थितियो में नजरबद रखने के औचित्य को प्रमाणित कर सके।

अग्रेजी सरकार द्वारा सार्वजनिक सभाओ पर रोक लगा दी गई। इन्दिरा ने इस निषेध-आज्ञा को तोडने का फैसला किया। पर्चे तो छापे नही जा सकते थे, इसलिए मुह-जुबानी प्रचार करके ही सभा करना सम्भव था। कानो-कान खबर करने का यह तरीका बहुत कारगर साबित हुआ और काफी बड़ी सख्या मे लोग उसका भाषण सुनने के लिए इकट्ठा हो गए। जैसे ही इन्दिरा ने अपना भाषण शुरू किया, बड़ी सख्या में ब्रिटिश सैनिक बन्दूके ताने हुए आ धमके और सभा को चारो ओर से घेर लिया। इन्दिरा ने अपना भाषण जारी रखा। इसपर एक गोरा अफसर आगबबूला होकर यह हुक्म देते हुए उसपर झपटा कि भाषण बन्द करो, वरना गोली मार

दी जायगी। ठीक उसी समय एक आदमी लपककर इन्दिरा और उस अफसर के बीच मे आ खड़ा हुआ। वह आदमी और कोई नही, फीरोज था। भीड़ भी उसकी रक्षा के लिए आगे की ओर लपकी और हाथापाई होने लगी। इन्दिरा, फ़ीरोज और कई लोग गिरपतार कर लिये गए।

उन दिनो जेल जाना बड़े गौरव की बात समझी जाती थी। कई दिनो बाद इन्दिरा ने, उस समय की अपनी मन.-स्थिति का वर्णन करते हुए कहा है, "मैंने फैसला कर लिया था कि मुझे जेल जाना ही होगा। उसके बिना बहुत-कुछ अधूरा ही रह जाता। इसलिए अपनी गिरफ्तारी पर मुझे बहुत खुशी हुई।"[1]

इन्दिरा नैनी-जेल पहुंची, जहां उसकी बुआ नान हफ्तों पहले से बन्द थी। बुआ ने भतीजी का बड़े स्नेह-दुलार से स्वागत किया। कुछ दिनों के बाद नान की सबसे बडी लड़की लेखा भी वहां आ गई। नान उन दिनो डायरी लिखती थीं। उससे पता चलता है कि नेहरू लोग मनहूस जेल मे भी अपना मनोरजन किस तरह कर लेते हैं :

सितम्बर १३ : इन्दु लेखा को फ्रेंच सिखाने मे सहायता कर रही है।

सितम्बर २३ : पिछली रात इन्दु को बाहर सोने की इजाजत दी गई, मगर फिर भी वह सारी रात बेचैन रही।

सितम्बर २६ : हमे बताया गया कि स्वास्थ्य के आधार पर इन्दु को रिहा करने की सिफारिश की गई है। उसे लगातार बुखार रहता है।

अक्तूबर २२ : आज सिविल सर्जन इन्दिरा को देखने

आये। उन्हे आदेश दिये गए है कि वह उसके स्वास्थ्य की जांच कर अपनी रिपोर्ट सरकार को दे।

नवम्बर २० : कल इन्दिरा की पच्चीसवी सालगिरह थी। फ़ीरोज से उसकी पाक्षिक मुलाकात हुई। जब दफ्तर से लौटी तो बहुत खुश लग रही थी।

नवम्बर २७ : इन्दु और लेखा दोनों ही कल्पना की धनी है, इसलिए शायद ही कोई शाम नीरस बीतने पाती है। जेल की जिस बिल्ली का नाम इन्दु ने मेहितावेल रखा है, उसने चार बिलौटे दिये है और इन्दु और लेखा फूली नही समा रही हैं। बन्द कर दिये जाने के बाद इन्दु और लेखा, पात्र के रूप में बारी-बारी से, नाटक पढ़ती हैं। मैं दर्शक और श्रोता हूं। बड़ा मजा आता है।"[२]

इन्दिरा का स्वास्थ्य बराबर खराब चलता रहा। १३ मई, १९४३ को वह नान के साथ रिहा कर दी गई। दोनों पर यह बन्दिश लगाई गई थी कि वे कही आयंगी-जायंगी नहीं और न जुलूसो या सभाओ में भाग ही लेगी। दोनों ने इस तरह का आश्वासन देने से इन्कार कर दिया और एक हफ्ते के बाद नान पुनः गिरफ्तार कर ली गई। इन्दिरा को इन्फ्लुएंजा हो गया था, इसलिए वह अकेली रह गई। जवाहर, अहमदनगर किले की तनहाई मे, इस बात को लेकर चिन्तित थे कि इलाहाबाद की भीषण गर्मी मे उस पर क्या बीत रही होगी। उन्होने उससे पहाड़ो मे किसी ठण्डी और स्वास्थ्य-वर्द्धक जगह जाने का आग्रह किया। एक पत्र मे उन्होने मुझे लिखा, "मेरा खयाल है कि गर्मी और उन तमाम नियामतों का, जिनकी वहां इफरात है, मजा लेने के लिए उसे किसी भी

दिन नैनी (जेल) भेज दिया जायगा।" इन्दिरा बम्बई के निकट पंचगनी के पहाड़ी स्थान में रहने के लिए गई और वहां जाकर अच्छी हुई। अगस्त मे जब फ़ीरोज जेल से रिहा हुआ तो वह वहां से अपने घर इलाहाबाद लौट आई। आखिर अब जाकर उसे और उसके पति को साथ रहने का अवसर मिला।

भारत उन दिनो बड़े ही सकट-काल से गुजर रहा था। बंगाल के दुर्भिक्ष मे लाखो लोग भूख से मर गए थे। कलकत्ता की सड़कें मरे हुए और बेहाल भूखे-मरते लोगो से पट गई थी। नान रिहा होकर सहायता-कार्य मे मदद देने के लिए कलकत्ता दौड़ी गईं, लेकिन उन पर दु:ख की गाज गिरी और भागे-भागे घर लौटना पड़ा। उनके पति रणजीत भाई को जेल की कष्टदायी परिस्थितियों में निमोनिया हो गया था। १४ जनवरी, १९४४ को लखनऊ मे उनकी मृत्यु हो गई।

११

इन्दिरा का पहला बच्चा

•

जनवरी के आरम्भ में इन्दिरा के पहली बार मां बनने के आसार दिखाई दिये। मार्च मे वह गर्भावस्था का समय बिताने और प्रसूति के लिए हमारे पास बम्बई आ गई। फीरोज़ फिर जेल मे पहुच गया था, इसलिए मेरा आग्रह था कि वह आनन्द-भवन मे अकेली न रहे। इन्दिरा स्वय भी बम्बई की चिकित्सा-सुविधाओ से फायदा उठाना और मेरे साथ रहना चाहती थी। बम्बई के प्रसिद्ध स्त्री-रोग-विशेषज्ञ डाक्टर शिरोडकर ने बहुत अच्छी तरह उसकी पूरी जाच-पडताल की। उसके वाद हम सव, बम्बई से करीव सत्ताईस मील दूर, माथेरान नामक पहाड़ी जगह रहने चले गए।

एक दिन तीसरे पहर हमने काफी दूर से आती, लेकिन वहुत जोर की गड़गड़ाहट की आवाज सुनी। इन्दिरा का खयाल था कि वन्दरो की कोई टोली हमारे होटल की टीन की छत पर कूद-फांद रही है। माथेरान मे बन्दर बहुत हैं और हम अक्सर उन्हे लेकर हँसी-मजाक किया करते थे। रात में हमने रेडियो पर खवर सुनी कि बम्वई के वन्दरगाह में गोला-

बारूद और विस्फोटको (टी एन टी) से लदे एक जहाज में विस्फोट हो गया, जिससे काफी नुकसान हुआ और शहर का गोदी के पासवाला इलाका तो ध्वस्त ही हो गया। हमे अपने मकान की चिन्ता हुई। एक मित्र के यहां टेलीफोन जोड़ने की कोशिश की, लेकिन लाइन खराब थी। कुछ दिनों के बाद जब बम्बई लौटे तो हमे अपना मकान सही-सलामत मिला। विस्फोट मे जो लोग बेघर हुए थे, हम उनकी सहायता में जुट गए।

जब इन्दिरा के बच्चा होने के दिन आ गए तो फीरोज भी उसके पास बम्बई आ गया। वह कुछ ही दिनो पहले रिहा हुआ था। २० अगस्त को सवेरे कोई पांच बजे के लगभग इन्दिरा ने हमें बताया कि उसे पीडा होने लगी है। हमने फौरन डा० शिरोडकर को टेलीफोन किया कि वह अपने उपचर्या-गृह (नर्सिंग होम) पहुंच जाय और हम इन्दिरा को वहां ले गए। पहला बच्चा होने के कारण वह बहुत डर रही थी और इसरार करती रही कि मैं जच्चाघर मे भी उसके साथ ही रहूं। घबराहट के मारे खुद मेरा बुरा हाल हो रहा था और बराबर प्रार्थना करती और मनाती रही कि सब-कुछ सकुशल निपट जाय। मैंने डाक्टर शिरोडकर को (जैसा कि उन्होने बाद में बताया) बार-बार यह कहकर खूब परेशान कर दिया था, "देखिये डाक्टर, लडका ही होना चाहिए, क्योकि मेरे भाई के लड़का नही है।" और लडका ही हुआ, २० अगस्त १९४४ को जन्मा। हम सबकी खुशी का पार न रहा। मैंने जवाहर को तार से खबर की और पत्र भी लिखा। हमेशा की तरह सेन्सरो ने अपना समय लिया और सरकार

ने उन्हें पत्र और तार साथ-साथ ही दिये।

जवाहर ने लिखा :

"खबर पाकर मुझे खुशी हुई। तुम्हारे जितना उछाह जरूर नही हुआ, क्योंकि भावनाओं मे वह जाना मेरे स्वभाव में कम ही है। परिवार मे किसी नये सदस्य का जन्म हमेशा पुरानी यादों को जगा देता है और अपने वचपन की और दूसरों के जन्म लेने की बातें याद आती हैं। और जव-जब भी किसी का जन्म होता है वह अपने-आप में बिलकुल नई बात होती है, दूसरो की तरह और फिर भी अपनी ही तरह की अनोखी। कुदरत अपने-आपको बराबर दोहराती रहती है; उसकी अपार विविधता का कोई अन्त ही नही और हर वसन्त एक कायाकल्प है, हर नया जन्म एक नई शुरुआत, खास तौर पर जब वह नया जन्म हम से घनिष्ट रूप से जुड़ा हुआ हो, वह हमारे लिए पुनर्जीवन वन जाता है और हमारी सभी पुरानी आशाओ का केन्द्र।"

डाक्टर शिरोडकर ने मेरी चुटकी ली कि इन्दिरा के लिए तो मैंने लड़का मांगा और अपने लिए लड़की की रट लगाये रही। यह मेरे दूसरे बच्चे के समय की बात है, क्योंकि लड़का तो एक मेरे था और अब मुझे लड़की की उत्कट चाह थी। मेरे भाई और बहन दोनो के यहां सिर्फ लड़कियां हुईं, जिससे अम्मां को, वे पुराने ख्यालो की थीं, बहुत निराशा हुई। आखिर मेरे पहले बेटे हर्ष के जन्म से उनकी मुराद पूरी हुई और उन्हें एक धेवता मिला। सिर्फ अम्मां ही नही, जवाहर, नान और दूसरे बीसियों रिश्तेदारो को उसके जन्म से बहुत खुशी हुई और सबने मुझे इस कद्र बधाइयां

दी, मानो मैंने बडा कमाल कर दिखाया हो। जब मेरे दूसरे वेटे अजीत का जन्म हुआ तो अम्मां इसलिए नाराज हुई कि मैंने लडकी क्यो चाही, लडका क्यो नही। उनके वेटे-वेटी के घर चार लडकियां थी—चार धेवतियां और ये सब अपनी वेटी के यहां लडके-ही-लड़के चाहती थी--सभी धेवते।

बच्चे के जन्म के बाद इन्दिरा हमारे साथ लगभग दो महीने और रही। जैसे ही इस लायक हुई कि यात्रा कर सके वह फीरोज के पास लखनऊ चली गई, जहां उनका मकान था और जिसे अब उनके नन्हे बच्चे ने गुलजार कर दिया था। बच्चे का नाम उसकी नानी के नाम पर राजीव रखा गया, क्योकि राजीव और कमला दोनो ही कमल पुष्प के पर्याय-वाची नाम हैं।

जवाहर को देखे हमे दो साल से भी ज्यादा समय हो गया था, क्योकि परिवार वालों को इस बार उनसे मिलने नही दिया जाता था। हमे उनकी जितनी याद आती उससे कही अधिक उन्हे जेल के उन यातना-भरे दिनो मे हमारी याद आती और अकेलापन अखरता था। निजी सम्पर्क और मुलाकातो से प्रियजनो के चेहरो की याद और पारस्परिक प्रीति एव अनुभूतियों का नवीनीकरण और पुनरुज्जीवन होता रहता है। मेरे नाम एक पत्र मे उन्होने अपने अकेलेपन और विलगाव (तनहाई) के बारे मे लिखा है :

"लम्बे समय के बाद मुलाकात होने पर क्या हम एक-दूसरे को पहले की ही तरह पहचान और पा सकेंगे ? या हमारे बीच सकोच और बेगानापन होगा, जैसा कि अक्सर उन लोगो से मुलाकात करते वक्त होता है, जिन्हे हम पूरी

तरह जानते-समझते नही ? मन की मौज, भावना और कल्पना के अपने-अपने जिन निजी संसारों मे हम लोग रहते है वे काफी समय से परस्पर इतने दूर हैं कि उनके आपसी परिचय का धुधला हो जाना बहुत सम्भव है—अलग-अलग घेरे उतने परस्परव्यापी नही रह पाते जितने कि हुआ करते थे। यह कुछ तो हमारी उम्र बढ़ने के साथ होता ही है, लेकिन हमारे रहन-सहन की गैरमामूली हालते इस प्रक्रिया को और भी तेज कर देती है।"

१२

युद्ध का अन्त

•

फ्रांस मे मित्रराष्ट्रों की सेनाओ के उतारे जाने के साथ यूरोप मे द्वितीय महायुद्ध का अन्तिम चरण शुरू हुआ। अक्तूबर १९४४ मे ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि अहमदनगर किले के बंदियो को अपने रिश्तेदारो से मिलने दिया जायगा। नान ने ओर मैंने जवाहर से मिलने की अनुमति मांगी, लेकिन उन्होंने वन्दियो के जिस अधिकार से उन्हे इतने समय तक वंचित रखा गया था उसका उपभोग करने से इन्कार कर दिया। उनका कहना था कि मुलाकात शायद ऐसी हालत मे करवाई जाय, जो 'मेरी और मेरे प्रियजनो की शान' के खिलाफ हो। अप्रैल १९४५ मे उनका तबादला बरेली जेल (उत्तरप्रदेश) कर दिया गया।

अप्रैल के मध्य में राजा और मैं छुट्टियां मनाने के लिए काश्मीर गये। वहां इन्दिरा और उसका बेटा भी हमारा साथ देने के लिए आ गए। अपने पुरखों की उस सुन्दर भूमि की यात्रा मे हमे बड़ा आनन्द आया। श्रीनगर से हम ऊपर पहाड़ो मे गये। वहां किसी तरह के समाचार नही मिलते थे, ...

में भारत के तत्कालीन वाइसराय लार्ड वेवल भारत की स्वाधीनता के सम्बन्ध मे एक योजना प्रस्तुत करने वाले थे। गांधीजी, काग्रेस की कार्यकारिणी और मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियो को बुलाया गया था।

लार्ड वेवल ने भारतीय सदस्यों के बहुमत वाली वाइसराय की कौंसिल अर्थात् व्यवस्थापिका परिषद् (एक्जीक्यूटिव कौंसिल) गठित करने का प्रस्ताव रखा। कौंसिल मे सिर्फ दो अग्रेज सदस्यो (एक वाइसराय और दूसरा कमाडर-इन-चीफ) के सिवा शेष सभी भारतीय सदस्य रखने की बात कही गई थी, लेकिन स्वाधीनता और लोकतत्र अभी भी दूर की बाते थी। उस सम्मेलन से जो भी अच्छा नतीजा निकल सकता था उसे मुस्लिम लीग के अध्यक्ष मुहम्मद अली जिन्ना ने अपनी मागो पर अडे रहकर चौपट कर दिया। इस सम्बन्ध मे मैं अपनी पुस्तक 'हम नेहरू' मे लिख चुकी हूं :

"शिमला-सम्मेलन की असफलता के लिए जिन्ना ने यह तरीका अपनाया कि वह वाइसराय की नई कौंसिल के सभी मुसलमान सदस्यो को स्वय नामजद करने की अपनी मांग पर अड गए। मेरे भाई और गांधीजी को यह स्वीकार नही था, क्योकि ऐसा करना उन सभी भले मुसलमानों के साथ विश्वासघात करना होता जो कांग्रेस के प्रति निष्ठावान रहे थे और जिनमे कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष मौलाना आजाद भी थे। गांधीजी और वाइसराय-सहित सभी ने जिन्ना को बहुत समझाया और पूरी कोशिश की कि समझौते की कोई सूरत निकल आये, पर जिन्ना टस-से-मस न हुए। दो हफ्तों की कोशिशों के बाद सम्मेलन भग हो गया और कुल मिलाकर नतीजा शून्य

भी जाने क्यो राजा को ऐसा लगा, मानो कोई महत्त्वपूर्ण घटना हो रही है और वह हमारे लौटने पर जोर देने लगे। हमने अपने डेरे-तम्बू समेटे और पहलगाम लौट आये, जहा से पहाड चढ़ना शुरू किया था। पहलगाम की बढिया आबोहवा के कारण वहां आमतौर पर यात्रियों की भीड़ लगी रहती थी, लेकिन हमने लौटकर पाया कि सभी श्रीनगर जाने की तैयारियो मे लगे थे। हमने किसी तरह एक मित्र की महायता से मोटर-कार का इन्तजाम किया और उससे श्रीनगर आये। वहा इस खबर पर बढा जोश फैला हुआ था कि ७ मई को जर्मनी ने आत्मसमर्पण कर दिया। इसलिए जवाहर-सहित सभी राजबन्दी रिहा कर दिये गए।

नाजियो के हारने की हमें खुशी जरूर हुई, लेकिन स्वतंत्रता और लोकतन्त्र के नाम पर जिस तरह हमारा अपमान किया गया था और हमारे लोगों को जबर्दस्ती हमसे जुदा कर जिस अमानुषी ढंग से जेलों में ठूसा गया था, वह सब याद आते ही मन खिन्न और खट्टा हो गया और सारी खुशी किरकिरी हो गई। अपने भाई की खबर पाने के लिए मैं बेताब हो गई। कुछ दिनों के बाद हमें उनका तार मिला कि गांधीजी से मिलने बम्बई जा रहे हैं और वहां से सीधे इलाहाबाद पहुंचेगे। उन से मिलने के लिए हम फौरन इलाहाबाद के लिए चल पडे। इन्दिरा और फ़ीरोज़ भी आनन्द-भवन मे उत्कण्ठापूर्वक उनकी प्रतीक्षा करते रहे। एक बार फिर हम सबका मिलन हुआ, साथ रहने का मौका मिला। हमारी खुशी का क्या पूछना!

जून १९४५ मे जवाहर को शिमला-(राजा और मैं वहां उनके साथ गये थे) सम्मेलन का बुलावा मिला। इस सम्मेलन

में भारत के तत्कालीन वाइसराय लार्ड वेवल भारत की स्वाधीनता के सम्बन्ध मे एक योजना प्रस्तुत करने वाले थे। गांधीजी, कांग्रेस की कार्यकारिणी और मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियो को बुलाया गया था।

लार्ड वेवल ने भारतीय सदस्यो के बहुमत वाली वाइसराय की कौसिल अर्थात् व्यवस्थापिका परिपद् (एक्जीक्यूटिव कौसिल) गठित करने का प्रस्ताव रखा। कौसिल मे सिर्फ दो अग्रेज सदस्यो (एक वाइसराय और दूसरा कमाडर-इन-चीफ) के सिवा शेष सभी भारतीय सदस्य रखने की बात कही गई थी, लेकिन स्वाधीनता और लोकतत्र अभी भी दूर की बाते थी। उस सम्मेलन से जो भी अच्छा नतीजा निकल सकता था उसे मुस्लिम लीग के अध्यक्ष मुहम्मद अली जिन्ना ने अपनी मांगो पर अडे रहकर चौपट कर दिया। इस सम्बन्ध मे मै अपनी पुस्तक 'हम नेहरू' मे लिख चुकी हूं :

"शिमला-सम्मेलन की असफलता के लिए जिन्ना ने यह तरीका अपनाया कि वह वाइसराय की नई कौसिल के सभी मुसलमान सदस्यो को स्वय नामजद करने की अपनी मांग पर अड गए। मेरे भाई और गांधीजी को यह स्वीकार नही था, क्योकि ऐसा करना उन सभी भले मुसलमानों के साथ विश्वासघात करना होता जो कांग्रेस के प्रति निष्ठावान रहे थे और जिनमे कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष मौलाना आजाद भी थे। गांधीजी और वाइसराय-सहित सभी ने जिन्ना को बहुत समझाया और पूरी कोशिश की कि समझौते की कोई सूरत निकल आये, पर जिन्ना टस-से-मस न हुए। दो हफ्तों की कोशिशों के बाद सम्मेलन भग हो गया और कुल मिलाकर नतीजा शून्य

ही रहा ।"[1]

लार्ड वेवल ने समझौते की ईमानदारी से कोशिशे की होगी, लेकिन उनके सलाहकार सरकारी सिविल सर्विस के नौकरशाह उनके सारे प्रयत्नो पर बराबर पानी फेरते रहे। समझौता-वार्ता का भविष्य तो तभी पता चल गया था जब मुसलमानों के प्रतिनिधि के रूप मे सिर्फ मुस्लिम लीग को बुलाया गया और दूसरे मुस्लिम सगठनो की, जिनके अन्तर्गत देश के अधिसंख्य मुसलमान संगठित थे, उपेक्षा की गई।

वाइसराय की प्रस्तावित कौसिल में कांग्रेस और मुस्लिम लीग को समान प्रतिनिधित्व देने का प्रावधान था। कांग्रेस ने धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय सगठन होने के कारण प्रस्तावित कौसिल में अपनी ओर से नामजद किये जाने वाले पांच सदस्यो मे दो कांग्रेसी मुसलमानो का समावेश किया था। जिन्ना कांग्रेस को कौसिल में किसी भी मुस्लिम सदस्य को नियुक्त करने का अधिकार देने को राजी न हुए। वह बराबर यही दावा करते रहे कि मुसलमानो की प्रतिनिधि सस्था होने के नाते मुस्लिम सदस्य की नियुक्ति का अधिकार सिर्फ मुस्लिम लीग को ही है।

जिन्ना और मुस्लिम लीग ने धर्म के आधार पर भारत के विभाजन की मांग की। उनका कहना था कि भारत के मुस्लिम-बहुल क्षेत्रो को मिलाकर पाकिस्तान के नाम से एक पृथक् राज्य ही बना दिया जाय। (वैसे पाकिस्तान बनाने का मूल विचार भारतीय प्रशासन-सेवा के एक अग्रेज अफसर के उपजाऊ दिमाग मे पैदा हुआ था।) वास्तव में जिन्ना को धर्म से कोई मतलब नही था। वह केवल नाम के मुसलमान थे। असल मे वह नया राज्य इसलिए बनाना चाहते थे कि

उसके महान नेता और सर्वोच्च शासक बन सकें ।

ब्रिटेन ने एक बार फिर अपने गुलाम देशों के साथ बरती जाने वाली साम्राज्यवादी शक्तियों की विशिष्ट भेदनीति—फूट डालो और राज्य करो—का अवलम्बन किया । भारत की ब्रिटिश सरकार ने धार्मिक विद्वेश भडकाकर मुस्लिम लीग को शक्तिशाली बनाने के सभी प्रयत्न किये । इससे हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य बढता गया और अंग्रेजों को भारत मे बने रहने का अच्छा बहाना मिल गया । अगर भारत मे रहने वाले लोग आपसी समझौता नही कर सकते तो इसके सिवा और चारा ही क्या है कि ब्रिटेन अपना शासन जारी रखे और देश मे अमन-कानून बना रहे ! कम-से-कम विदेशी शासक यही तर्क देकर भारत मे बने रहने के अपने औचित्य को सिद्ध कर सकता था ।

तभी भारत के भाग्य का फैसला करने वाली घटनाएं अनपेक्षित रूप से घटित हुईं । इंग्लैंड के आम चुनाव मे चर्चिल की सरकार हार गई और उसके स्थान पर २६ जुलाई १९४५ को क्लीमेंट एटली के प्रधानमन्त्रित्व मे मजदूर दल शासनारूढ़ हुआ । एटली की सरकार ने भारत मे ऐसी सविधान-निर्मात्री परिषद् के चुनाव का आदेश दिया, जो हमारे देश को स्वराज्य प्रदान कर सके ।

अब भारत मे अग्रेज सशस्त्र सैनिकों की स्वामि-भक्ति पर निर्भर नही कर सकता था । सिगापुर मे जो भारतीय सेना थी, उसके अधिकाश सैनिक सुभाष बोस की आजाद हिन्द फौज (आई० एन० ए०) मे भर्ती होकर अग्रेजो से लड़ चुके थे । १९ फरवरी, १९४६ को नौसैनिको ने अपने अंग्रेज

अफसरों के दुर्व्यवहार के खिलाफ बम्बई मे विद्रोह कर वहां के बन्दरगाह के सभी जहाजो पर कब्जा कर लिया था। अब भारत पर पहले की तरह राज्य करने के लिए अंग्रेजो को बहुत से आदमियो, माज-सामान और साधनो की जरूरत होती, जो युद्ध की समाप्ति पर (अगस्त १९४५ मे) इग्लैड के लिए बिलकुल ही सम्भव नही था। फिर इग्लैड की मजदूर सरकार भारत से समझौता करने के पक्ष मे थी और मानसिक रूप से उसके लिए तैयार भी थी।

इसलिए मार्च १९४६ में इग्लैंड से एक 'केबिनेट मिशन' नई दिल्ली आया, जिसका उद्देश्य भारत के सभी राजनैतिक दलो से विचार-विनिमय कर भारत की स्वाधीनता का सर्व-सम्मत हल खोजना था। लेकिन काग्रेस, जो भारत के विभाजन के विपक्ष में थी और मुस्लिम लीग की परस्पर-विरोधी मांगों के कारण कोई परिणाम न निकला। अन्त मे केबिनेट मिशन ने अस्थायी सरकार की नियुक्ति और संविधान बनाने के लिए एक सविधान परिषद् आयोजित करने की अपनी ही योजना की घोषणा की। योजना मे सघवाद पर आधारित भारतीय सघ राज्य (फेडरेटेड इंडियन यूनियन) और हिन्दू-मुसलमानो के समान प्रतिनिधित्व वाली केन्द्रीय सरकार की बात कही गई थी।

कांग्रेस की कार्यकारिणी ने इस योजना पर बहुत गम्भीरता से विचार किया, लेकिन उसे स्वीकार तभी किया गया, जब लार्ड वेवल ने अस्थायी (अन्तरिम) सरकार की नियुक्ति की घोषणा कर दी। ७ जुलाई को योजना के समर्थन और स्वीकृति के लिए बम्बई मे अखिल भारतीय कांग्रेस

समिति (महासमिति) की बैठक हुई। १२ अगस्त को वाइसराय की ओर से जवाहर को, कांग्रेस अध्यक्ष के नाते, अन्तरिम सरकार बनाने का निमत्रण प्राप्त हुआ।

मुस्लिम लीग ने तो योजना को जून मे ही स्वीकार कर लिया था, लेकिन जिन्ना को अपने इस कार्य के लिए तुरत पछताना भी पडा और जब कांग्रेस ने इसे स्वीकार कर लिया तो वह और भी खिन्न और रुष्ट हुए। उन्होने खिसियाकर लीग का समर्थन वापस ले लिया। लीग की २७ जुलाई की सभा मे उन्होने लीग के सदस्यो को हिन्दुओ के खिलाफ जिहाद शुरू करने के लिए कहा। नफरत पैदा करने वाले उनके उग्र भाषण से प्रभावित लीग ने 'सीधी कार्रवाई' का प्रस्ताव अगीकार किया और उसे अमली रूप देने के लिए १६ अगस्त को प्रतिवाद-दिवस मनाना तय किया।

१३

दूसरा बच्चा

•

इस सारे समय इन्दिरा, उसका बच्चा राजीव और फीरोज़ आनन्द-भवन मे ही रहे। इन्दिरा तो अपने पुत्र के लालन-पालन मे लगी रही और फीरोज ने सचित्र पत्र-पत्रिकाओ मे लेख लिखकर उन सुन्दर और बढिया तसवीरो का सदुपयोग किया जो, उसने यूरोप मे उतारी थी। कुछ वह बीमे का काम भी करता था। उसकी देख-रेख मे आनन्द-भवन का बागीचा सुन्दर फूलो से लहलहा उठा। अपने घर को पुरानी सुषमा और गरिमा से मडित होते देख मुझे बडी प्रसन्नता होती थी।

नवम्बर १९४६ मे फीरोज 'नेशनल हेराल्ड' का प्रबन्ध-सम्पादक बनकर लखनऊ चला गया। जवाहर ने १९३७ मे इस अग्रेजी दैनिक की स्थापना की थी। बाद मे उन्होने इस पत्र के सचालक-मण्डल से त्याग-पत्र दे दिया। पत्र निकालने का विचार भाई को पिताजी से मिला था। वह भी बरसो पहले अपना एक अग्रेजी दैनिक 'दि इडिपेंडेट' निकाल चुके थे, जो सिर्फ तीन बरस चला और जब पिताजी कांग्रेस मे

शरीक हो गए और उसे चलाना उनके लिए सम्भव न रहा (वह पत्र बराबर भारी घाटा ही देता रहा), तो पत्र बन्द हो गया। १९४२ मे, जब 'भारत छोडो' आन्दोलन शुरू हुआ तो 'नेशनल हेराल्ड' को भी अपना प्रकाशन स्थगित कर देना पडा था, क्योंकि सेसर करवाने से उसने इन्कार कर दिया था। नवम्बर १९४६ मे पत्र का प्रकाशन पुनः आरम्भ हुआ और फीरोज अपने परिवार के साथ लखनऊ रहने लगा।

लखनऊ मे फीरोज ने एक छोटा-सा मकान लिया और उसे बड़ी तबीयत से सजाया-सवारा। फर्नीचर उसने अपनी पसन्द का बनवाया और यहां भी अपना उद्यान-प्रेम उसने जारी रखा। 'नेशनल हेराल्ड' को आत्मनिर्भर बनाने के लिए वह सारा दिन और रात मे भी देर तक काम किया करता। हमेशा अर्थ-कष्ट मे रहनेवाला पत्र फीरोज के कुशल प्रबन्ध मे जल्दी ही अपने पैरो पर खडा हो गया। प्रेस मे काम करने की जितनी भी गुजाइश थी उसका उसने समझदारी से उपयोग किया और छपाई का काम लेना शुरू कर दिया। फीरोज रात-दिन काम मे जुटा रहनेवाला, मशीनो का प्रेमी, मजदूरो का स्नेहभाजन और पत्र के सम्पादक के शब्दों मे 'सामान्य विशेषताओ' का आदमी था।

इन्दिरा घर-गिरस्ती के कामो के अलावा स्थानीय कांग्रेस की गतिविधियो और समाज-कल्याण के कार्यों मे लगी रहती। फीरोज और इन्दिरा दोनो ही प्रगतिशील समाजवादी विचारो के थे, इसलिए कई युवक राजनैतिक कार्यकर्ता और नेता अक्सर उनके घर आते रहते थे, लेकिन दोनो के स्वभाव मे बडा अन्तर था—इन्दिरा सकोची और मितभाषिणी है तथा

फीरोज बहिर्मुख और बेतकल्लुफ (निस्सकोच) था। लखनऊ के उनके छोटे-से घर का जीवन ठीक वैसा तो नही था, जिसकी इन्दिरा आनन्द-भवन मे अभ्यस्त रही थी, लेकिन दोनों मे खूब स्नेह-प्रेम था और दोनो ही एक-दूसरे को समझने और परस्पर सहायता करने के लिए उत्सुक और प्रस्तुत रहते थ।

अस्थायी सरकार के प्रधान मत्री होने के कारण जवाहर का नई दिल्ली रहना जरूरी हो गया था। वह दिल्ली मे यार्क रोड पर १७ नम्बर के एक छोटे मकान मे रहने लगे। उस मकान मे उनके निवासस्थान के अलावा एक बडा दीवान-खाना, परिवार के लोगो के लिए कमरे और उनके कर्मचारियो के काम करने की जगह भी थी। जवाहर के इस दिल्ली-स्थित घर को जमाने और सुव्यवस्थित करने के लिए इन्दिरा और मैं लखनऊ और बम्बई से नई दिल्ली दौडती रहती थी। इन्दिरा जब भी सम्भव होता, पिता की सेवा-सहायता के लिए लखनऊ से आ जाती, परन्तु उसके फिर बच्चा होने-वाला था, इसलिए भाई के मेहमानो के स्वागत-सत्कार का दायित्व अक्सर नान और मुझी को निभाना पडता था। इन्दिरा की प्रसूति का स्थान नई दिल्ली ही रखा गया, क्योंकि वहां राजधानी होने के कारण लखनऊ से ज्यादा अच्छी चिकित्सा-सुविधाए थी।

राजा और मैं अमरीका की अपनी पहली भाषण-यात्रा पर १९४७ के जनवरी के प्रारम्भ मे प्रस्थान करने वाले थे, लेकिन जाने से पहले मैं जवाहर और इन्दिरा से मिल लेना चाहती थी, इसलिए दिसम्बर मे उनके पास दिल्ली गई। उसके

वच्चा होने से पहले मेरे अमरीका जाने की वात इन्दिरा को पसन्द नही आई और वह खिन्न हो गई। उसके पहले वच्चे के जन्म के समय मैं उसके पास थी और वह चाहती थी कि इस वार भी रहूं। मेरे वम्वई लौटने के एक दिन पहले उसका डाक्टर उसे देखने के लिए आया। उसने कहा कि अभी तीनेक हफ्ते वाकी हैं और फिर वोला, "आप कल जा रही हैं, इसलिए वह खिन्न है।" मैं वडी खुशी से अपनी अमरीका-यात्रा स्थगित कर देती, परन्तु डाक्टर ने यह कहकर निश्चिन्त कर दिया कि दूसरी प्रसूति होने के कारण ज्यादा तकलीफ नही होगी।

उस रात सारे परिवार ने साथ बैठकर भोजन किया—मैं जवाहर और इन्दिरा तो थे ही, लखनऊ से फीरोज आ गया था और सिन्धिया स्कूल से मेरे दोनो लड़के भी छुट्टियों मे आये हुए थे। उस रात खूव मजा आया। जवाहर ने अपनी विनोदपूर्ण वातो से हमे इतना हँसाया कि पेट में वल पड़ गए। इन्दिरा भी खूव खुश नजर आ रही थी। उसी दिन आधी रात के वाद कोई तीन वजे के लगभग इन्दिरा की नौकरानी ने मुझे जगाकर कहा कि वीवीजी को पीड़ा होने लगी है। मुझे विश्वास न हुआ। उसकी इस हार्दिक इच्छा के ही कारण कि प्रसव के समय मैं उसके पास रहूं, शायद पीड़ा होने लगी थी। फीरोज और मैं, जवाहर को विना जगाये, उसे अस्पताल ले गए और डाक्टर को वुलवाया। इतने सवेरे वुलाने के कारण वह थोडा झुझला गया और उसने मुझे इन्दिरा के पास जच्चाघर मे रहने की अनुमति नही दी। मैं और फीरोज ठण्डे गलियारो मे चक्कर काटते रहे।

समय काटे नही कट रहा था, लगता था जैसे घण्टो गुजर

गए, फिर डाक्टर आया और उसने हमे बताया कि इन्दिरा को बहुत तकलीफ हुई, काफी खून गया और उसने किसी तरह 'जान बचा दी।' लडका है या लड़की ? हमारे इस सवाल का जवाब देने की उसने जरूरत ही नही समझी । जैसे ही नर्सों से मालूम हुआ कि लड़का हुआ है, हमने जवाहर को फोन किया और वह फौरन अस्पताल दौडे आये । अपनी बेटी को एकदम इतना कमजोर, सफेद और रक्तहीन देखा तो वह भी घबरा गए ।

इन्दिरा ने अपने दूसरे बेटे का नाम सजय रखा। भापण-यात्रा पर रवाना होने से पहले बम्बई मे मुझे उसका पत्र मिला, जो उसने अस्पताल से लिखा था

"प्यारी चित्ती,

"हमेशा चाहती हूं कि आपका धन्यवाद किया करूं। वैसे जो-कुछ मेरे मन मे है उसे व्यक्त करने का यह कोई बहुत उपयुक्त तरीका नही है। कितना चाहती हूं कि बदले मे आपके लिए भी कुछ कर सकू। यह जो मुझे 'बेटी' मानकर आप छुट्टी पा लेती हैं इससे मुझे जरा भी सन्तोष नही होता।

"मैं तो इसे सचमुच अपना सौभाग्य मानती हूं कि बच्चा होने के समय आप यहां थी। ऐसे समय अकेले होने का मुझे बडा डर लग रहा था।'' आप में एक खूबी है और वह यह कि जब भी मुझे किसी के सहारे की ज़रूरत पडी, आप हमेशा, हाजिर हो गई और वह भी एक बार नही, अनेक बार।"

दो दिन वाद राजा के हाथों दूसरा पत्र मिला। वह जवाहर के बुलावे पर दिल्ली गये थे। भाई उन्हे मलय में भारत का उच्चायुक्त बनाकर भेजना चाहते थे। राजा ने इन्कार कर

दिया। उनका खयाल था कि अभी कई बरसों तक सच्चा काम भारत मे ही करने का है, विदेश के भारतीय दूतावासों मे नही। इन्दिरा ने लिखा था :

"मेरे मन मे आपके लिए अपार स्नेह और आदर है और वह इसलिए नहीं कि आप मेरी बुआ हैं। आज भी याद है कि जब मैं निरी बच्ची थी, तब भी आपका कितना सम्मान और कितनी पूजा करती थी। उम्र के साथ आपके प्रति मेरा स्नेह-सम्मान बढा ही है, कम नही हुआ। आपने मेरे और मेरे बच्चो के लिए जो-कुछ भी किया, उसने हमे परस्पर स्नेह-सूत्र में आबद्ध कर लिया है, जो दिनोदिन दृढतर ही होता जायगा।"

मुझे इन्दिरा के धन्यवाद की जरूरत नही। मैंने उसे अपनी बेटी की ही तरह प्यार किया है। उसके ये पत्र मेरी अनमोल निधि हैं और मेरे लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण भी।

१४

विभाजन और हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा

•

जवाहर ने सरकार बनाने का वाइसराय का निमन्त्रण स्वीकार किया ही था कि कलकत्ते मे १६ अगस्त, १९४६ को दगो की भीषण आग धधक उठी। मुस्लिम लीग ने 'सीधी कार्रवाई' के लिए यही दिन निर्धारित किया था। कुछ ही दिन पहले जिन्ना ने कहा था :

"हमने पिस्तौल तान ली है और उसके बल पर पाकिस्तान लेकर रहेगे।"

बगाल मे मुस्लिम लीग का मन्त्रिमण्डल था और प्रादेशिक सरकार हाथ-पर-हाथ धरे बैठी रही और उपद्रवी लोग उन्मत्त होकर हत्या, बलात्कार, लूट-पाट और आगजनी करते रहे। जिन्ना और लीग हिन्दुओ के खिलाफ साम्प्रदायिक विद्वेष और हिसा को भड़काते रहे; इसका परिणाम मुसलमानों के लिए अच्छा न हुआ, हिन्दू भी बदले की भीषण कार्रवाइयो तर उतर आए।

१९४६ मे ब्रिटिश सरकार भारत से गई नही थी। देश के शासक के नाते 'कानून और व्यवस्था' को बनाये रखना

उसका खास फर्ज था। वे अमानुषी दंगे देश के विभाजन की ब्रिटिश नीति के सर्वथा उपयुक्त ही थे। यह अपने देशवासियो की ओर से सफाई नहीं है, क्योंकि उन दिनो मेरे देश के लोगों ने जो लज्जाजनक कांड किये, उनसे इन्कार नही किया जा सकता, लेकिन यह भी याद रखना होगा कि अग्रेज जिस उपनिवेश से भी विदा हुए, उसके टुकडे करके ही वहां से हटे, जैसा कि उन्होने पहले आयरलैंड मे और बाद मे भारत में किया। इस तरह अराजकता और अन्धाधुन्धी फैलाकर किसी भी देश को, जहां तक हो सके, अपने कब्जे मे किये रहने की यह उनकी एक चाल रही है।

और इसीलिए खून-खच्चर होता रहा। कलकत्ता से पूर्वी बंगाल और नोआखली से बिहार और उत्तर भारत के नगरो और कस्बो तक यह आग फैलती चली गई, जिसे एक शेखीबाज़ के थोथे घमण्ड और एक डूबते हुए साम्राज्य की खिसियाहट ने मिलकर भड़काया था और जिसमे अनगिनत बेगुनाह मर्द, औरते और बच्चे स्वाहा हो गए। जब रोम जला तो सिर्फ एक नीरो बासुरी बजा रहा था; यहां दो थे—एक जिन्ना और दूसरा वाइसराय। उस भीषण नर-मेध को रोकने के लिए दोनो मे से किसी ने उँगली तक नही उठाई।

सत्य और अहिसा के प्रचारक अकेले गांधीजी इस आग को बुझाने के लिए प्रेम और मैत्री का अपना सन्देश लेकर गांव-गांव दौड रहे थे। वह एक गांव मे आग बुझाते तो वह दूसरे में भड़क उठती। आज इतने दिनों के बाद उस समय की हमारी मनोवेदना को समझ पाना दूसरो के लिए मुश्किल ही होगा, जो दोस्तो के रातोंरात अकारण ही दुश्मन बन जाने

पर हमे होती थी। एक गांव से दूसरे गांव नंगे पांव दौड रहे गांधीजी की उस समय की मनोव्यथा रवीन्द्र के इस प्रसिद्ध गीत में अभिव्यंजित होती है :

चल अकेला ही !
यदि तेरी पुकार सुन कोई न आये, तब चल अकेला ही!
यदि कोई बात न करे, अरे ओरे ए अभागे,
यदि सब रहे मुंह फेर, सभी करें भय
तब साहस से
ओ तू, मुह खोल अपने मन की बात कह अकेला ही !
यदि सब जाएं लौट, अरे ओरे ए अभागे,
यदि दुर्गम पथ चलते-चलते मुड़कर न ताके कोई
तब पथ के काटे
ओ तू, रक्तरंजित चरण-तलों से रौद अकेला ही !
यदि दीप ना दिखायें, अरे ओरे ए अभागे,
यदि झड़ी बरसती अन्धरात में द्वार बंद हो सबके
तब वज्र अनल से
अपना छाती-पंजर ज्वलित कर जलता चल अकेला ही !

जवाहर ने स्वयं बड़ा खतरा उठाकर लोगो को धीरज बंधाने के लिए दंगाग्रस्त क्षेत्रों का दौरा किया और उन्हे शान्ति तथा साहस से काम लेने की सलाह दी। उपद्रव के दिनों में ही लीग ने अस्थायी सरकार में सम्मिलित होने का फैसला किया ताकि कांग्रेस से अन्दर से भी लड़ा जा सके। लीग की इस चाल को कामयाब बनाने मे ब्रिटिश सरकार के वरिष्ठ अधिकारियो ने उसकी पूरी सहायता की। जवाहर ने वाइसराय लार्ड वेवल पर "गाड़ी (अर्थात् सरकार) के पहिये

निकालने" का आरोप लगाया। १९४७ के आरम्भ मे लार्ड वेवल की जगह लार्ड माउंटबेटन को भेजा गया और एटली सरकार ने जून १९४८ तक भारत से हट जाने के अपने निर्णय की घोषणा की।

३ जून, १९४७ को लार्ड माउटबेटन ने भारत के विभाजन की योजना प्रस्तुत की। यह हमारे देश को भारतीय सघ और पाकिस्तान नाम से दो हिस्सों मे बांटने की योजना थी—हिन्दू-बहुल क्षेत्रों को मिलाकर भारतीय-संघ और मुस्लिम-बहुल क्षेत्रों को मिलाकर पाकिस्तान।

मुस्लिम लीग तो शुरू से ही बंटवारे के पक्ष में थी और उसके लिए आन्दोलन भी करती रही थी, इस लिए उसने फौरन बंटवारे की योजना मंजूर कर ली। काग्रेस ने, जवाहर और सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में, काफी विचार-विमर्श के बाद जब यह देखा कि योजना को अस्वीकार करने का मतलब अराजकता होगा, तो शान्ति और स्वाधीनता की खातिर विवश होकर ही विभाजन को स्वीकार किया। अकेले गांधीजी अन्त तक बंटवारे का विरोध करते रहे। उन्होने लिखा :

"उसे (ब्रिटिश सरकार को) सिर्फ इतना ही करना है कि वादा की हुई तिथि को या उसके पहले ही, चाहे तो अराजकता-पूर्ण स्थिति मे भी, भारत को छोड़कर यहां से हट जाय।"

बटवारे को मंजूर करना उन्होने इस बात की स्वीकृति माना कि "हिसा के अकांड तांडव द्वारा सब-कुछ मिल जाता है।"

१८ जुलाई को पार्लमिंट ने ब्रिटिश शासन को समाप्त

करने का विधेयक पारित किया, जो १५ अगस्त १९४७ को प्रभावशील हुआ।

१४ अगस्त की रात को भारतीय स्वतंत्रता की अगवानी के लिए झुण्ड-के-झुण्ड लोग घरों से बाहर सड़को पर निकल आये। अनन्त बलिदानो और अपार कष्टो से भरा स्वतत्रता का सुदीर्घ संघर्ष अब समाप्त हुआ। १५ अगस्त के स्वतंत्रता-दिवस पर हम लोग उत्साह, उमंग और गर्व से भर उठे, क्योकि हमने स्वाधीनता के संघर्ष मे भाग लिया था। बरसो आजादी के लिए काम करते रहने के सिवा हमने और कुछ नही सोचा था और तब हमे सपने मे भी यह गुमान नही था कि अपने जीवन-काल मे आज का दिन देखने का अवसर मिलेगा। नई दिल्ली में असेम्बली को संबोधित करते हुए जवाहर ने कहा :

"बरसो पहले हमने भाग्य को ललकारा था और आज हमारे उस प्रण को पूरा करने का समय आया है—पूरी तरह या पूरे पैमाने पर तो नही, फिर भी पर्याप्त मात्रा मे।"

अब भारत ब्रिटिश राज्य से मुक्त हो गया था।

लेकिन साथ ही हम उदास भी हो गए। आज़ादी ज़रूर मिली थी, लेकिन हमारे देश के टुकड़े कर दिये गए थे और धर्मोन्माद को बेलगाम छोड़ दिया गया था। नेहरू-परिवार के हम लोगों का लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा नास्तिवादी वातावरण में हुई थी और हम धर्म के आधार पर लोगो में किसी तरह का भेदभाव करना-बरतना नही जानते थे, इसलिए विरोधी धर्मों के अनुयायियों का आपस मे लड़ना और खून-खच्चर करना हमारी समझ के परे था और बीभत्स भी।

मुसलमान सैंकड़ों बरसो से भारत का अभिन्न अंग बन

गए थे। मनुष्य-कुल और दूसरी दृष्टियो से भी वे हमारे और हममें से ही थे। उनका और हमारा इतिहास एक था। जिसे हम भारतीय संस्कृति कहते है, वह हिन्दू धर्म और इस्लाम का समन्वित रूप है। हम पर आक्रमण करनेवाले मुसलमानों की कई प्रथाओं और परम्पराओ को हमने अपने मे रचा-पचा लिया था। कुछ हिन्दुओं ने इस्लाम कबूल कर लिया था, लेकिन अधिसंख्य हिन्दू धर्म को ही अपनाये रहे। फिर भी जब मुस्लिम लीग और मुहम्मद अली जिन्ना ने, जो स्वयं सिर्फ एक पीढ़ी पहले हिन्दू थे, उन लोगो के खिलाफ, जो पहले उन्हीके भाई थे, जिहाद का नारा दिया तो देश की अनपढ़ जनता एक-दूसरे के खून का प्यासी होकर आपस में ही नहीं गुथ गई, बल्कि पढे-लिखे लोग भी धर्म और सम्प्रदाय की लड़ाई में आ कूदे ! हमारे बहुत से मित्र अपने पुरखों का घर-द्वार छोडकर ज्यादा अच्छे भविष्य की आशा मे पाकिस्तान चले गए। लेकिन पाकिस्तान से आनेवाले लाखो लोगो को और भारत से जानेवाले लाखो लोगो को अपना सर्वस्व गंवाकर शरणार्थी हो जाना पड़ा। भारत फिर भी धर्मनिरपेक्ष राज्य था और बराबर अपनी धर्मनिरपेक्षता को प्रतिपादित करता रहा, इसलिए लाखों मुसलमान भारत मे ही रहे, अपना देश छोड़कर पाकिस्तान नही गये। जवाहर और उनकी-सरकार ने बिना किसी भेदभाव के उनकी हरतरह रक्षा की।

१५ अगस्त का उत्सव अभी खत्म भी नही होने पाया था कि पंजाब मे पचास लाख हिन्दू और सिख शरणार्थियों के कत्लेआम की नई खबर ने दिल्ली मे दगा भडका दिया। अपनी सुरक्षा की कोई चिन्ता किये बिना जवाहर ने लोगों

को शान्त करने और मुसलमानों की हिफ़ाजत के लिए दंगाई इलाकों का दौरा किया। उनके दु.ख का कोई पार न था। बडी निर्भीकता और दृढ़ता से उन्होने नृशंसतापूर्ण कार्रवाइयो की निन्दा की और लोगो से पशुओ की तरह नही, मनुष्य की तरह आचरण करने का अनुरोध किया। मुस्लिम आबादी को दगाग्रस्त क्षेत्रो से निकाल कर सुरक्षित कैम्पों मे पहुचाने के कार्य में स्वयं उन्होने मदद की और अपने घर में भी कुछ शरणार्थियो को ठहराया।

पंजाब के हत्याकांड ने कलकत्ता में पुनः नफरत की आग सुलगा दी। हिन्दुओ की एक क्रुद्ध भीड़ ने गांधीजी पर, जो उस समय कलकत्ता मे थे, हमला कर दिया। १ सितम्बर को उन्होंने दूसरी बार आमरण अनशन इस आशा मे शुरू किया कि उससे हिन्दू और मुसलमानों में सुलह और शान्ति हो सके। स्वयं उन्ही के शब्दो में, "जो काम मेरे बोलकर समझाने से नही हो सकता, वह शायद उपवास से हो जाय।" अनशन शुरू करते समय ही उन्होंने यह घोषणा कर दी थी कि उपवास तभी टूटेगा जब हिन्दू-मुसलमानो की हत्याएं बन्द हो जायगी। उनके उपवास का चमत्कारिक असर हुआ। दोनों सम्प्रदायो ने शान्ति बनाये रखने की प्रतिज्ञा की।

गांधीजी ९ सितम्बर, १९४७ को दिल्ली आये तो सारा शहर दगो के कारण अस्त-व्यस्त हो रहा था। जवाहर और उनकी सरकार ने हिसा के खिलाफ कडे कदम उठा रखे थे, लेकिन गांधीजी को पुलिस और फौज द्वारा लगाये गए प्रतिबन्ध जरा भी न सुहाये। वह तो लोगों का हृदय-परिवर्तन चाहते थे। इसके लिए उन्होने दिल्ली को ही अपना केन्द्र

बनाया। एक दिन मैं भी युवक और युवतियों के एक दल के साथ उनसे मिलने के लिए गई थी। उन दिनो दिल्ली में साम्प्रदायिक विद्वेष, पारस्परिक कटुता और हिसा-भावना इतनी वढ गई थी कि मौलाना आज़ाद जैसे सम्माननीय और वयोवृद्ध कांग्रेसी नेता तक का जीवन सुरक्षित नही रह गया था। गांधीजी इसके खिलाफ फिर उपवास पर थे। उन्होने हमसे कहा कि अपने-आपको सच्चा देशभक्त समझने वाले हर हिन्दुस्तानी को भारत की जनता की एकता के लिए काम करना चाहिए। इन्दिरा और हम सभी ने इसके लिए काम करने की प्रतीज्ञा की।

इन्दिरा दूसरे बच्चे के जन्म के बाद से ही खून की कमी के कारण कमजोर चली आ रही थी और अभी तक स्वस्थ नही हो पाई थी। लेकिन वह शरणार्थियों की सहायता के काम मे साहसपूर्वक जुट गई। अपने पिता का दुःख उससे देखा नही जाता था, इसलिए उनका हाथ बंटाने और बोझा कुछ कम करने के लिए वह प्रस्तुत हो गई। अपने बच्चो की सार-संभाल का प्रवन्ध कर वह शरणार्थी-शिविरों में चली जाती और वहां नफ़रत से भरे दिलो की कड़वाहट को मिटाने के साथ-साथ उन मुसीबत के मारों की तकलीफों मे राहत पहुंचाने की कोशिश भी करती थी। जवाहर की बेटी की सहानुभूति-भरी सेवा और सहायता का शरणार्थियो पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा।

जब पाकिस्तान से वहां के हिन्दुओं पर नये सिरे से अत्याचार किये जाने की खवर मिली तो दिल्ली मे पुनः उपद्रव शुरू हो गए। भीड़ ने एक गरीब मुसलमान का मकान

घेर लिया, और जो भी घर के अन्दर थे, उन सबको जान से मारने पर उतारू हो गई। जैसे ही इन्दिरा को पता चला वह फौरन उस जगह पहुंच गई। जाकर देखा तो घिरे हुए लोगों को बचाने के लिए न तो पुलिस थी और न रक्षादल के सदस्य ही। भीड़ ने इन्दिरा को भी गालियां और धमकियां दीं, परन्तु वह उत्तेजित लोगों के बीच से रास्ता बनाती हुई घर के अन्दर चली गई। बेचारे घरवाले अपने प्राणों के भय से एक कोने मे दुबके थर-थर कांप रहे थे। इन्दिरा ने उन्हें हिम्मत बंधाई और कहा कि डरो मत, मेरे पीछे-पीछे चले आओ। गुस्से से बिफरे हुए हिन्दू गालियां बकते और उसका अपमान करते रहे (रोकने की हिम्मत किसी को न हुई), पर वह पूरे मुस्लिम परिवार को जीप मे बिठाकर अपने पिता के घर सुरक्षित ले आई।

आखिर लोगों का विवेक जाग्रत हुआ। उनका गुस्सा शान्त होने लगा, और हिंसक कार्रवाइयों का दौर भी खत्म हुआ। दोनो सम्प्रदायों के नेताओं द्वारा शान्ति बनाये रखने की प्रतिज्ञा को गांधीजी ने स्वीकार किया और अनशन तोड़ा।

जनवरी १९४८ में, अपने भाई के निमंत्रण पर, मैं एक बार फिर दिल्ली आई। मेरी तबीयत अच्छी नही थी। भाई ने यह सोचकर बुला भेजा कि दिल्ली की ठण्डी आवोहवा मेरे स्वास्थ्य के लिए लाभदायी होगी। मैं गांधीजी से मिलना चाहती थी। उनके सचिव ने इसके लिए २९ जनवरी का दिन तय किया। दुपहर का समय खासतौर पर इसीलिए रखा गया था कि मुलाकातियो की भीड़-भाड़ न रहने से हम लोग आराम से वातचीत कर सके। निर्धारित समय पर इन्दिरा,

उसका बेटा राजीव, पद्मजा, नायडू और मैं उनसे मिलने पहुंचे। उस समय वह बागीचे मे बैठे दुपहर का भोजन कर रहे थे। भोजन मे वही हमेशा की उबली हुई सब्जियां थी। नोआखाली के किसानो वाला घास का टोप उन्होने पहन रखा था। हमने प्रणाम किया तो मुस्कराकर बोले, "मेरा यह टोप तुम्हें कैसा लगा ? मैं इसे पहन कर ज़्यादातर सुन्दर लगता हूं न ?" हम हँस पडे और उनके पास बैठ गए। उन्होने सभी से अलग-अलग पूछा कि आजकल क्या कर रही हो और घर के लोग कुशलतापूर्वक तो हैं न ? हाल के उपवास के बावजूद वह बहुत चुस्त-दुरुस्त लग रहे थे और उनका उघाड़ा शरीर स्वास्थ्य की लाली से दमक रहा था। इन्दिरा के चार साल के बेटे राजीव को जाने क्या धुन सवार हुई कि बैठे-बैठे उनके पावों में फूलों की माला लपेटने लगा। बापू ने बडे दुलार से उसके कान खींचकर कहा, "यह क्या कर रहे हो ? जिन्दा आदमी के पांवो मे भी भला कोई फूल चढाता है ?" राजीव बच्चा जो ठहरा, वह क्या समझता ! मैंने फौरन माला वहां से हटा दी।

मुलाकात का समय पूरा हुआ और हम लोग उठे तो मैं थोड़ा ठिठक गई। गांधीजी ने पूछा, "कोई खास बात तो नही है ?" मैंने कहा, "आप से फिर और अकेले मे मिलना चाहती हूं।" उन्होंने प्यार से हाथ खीचकर मुझे अपने पास बिठा लिया और अपनी बांह मेरे गले मे डालकर बोले, "बहुत लोग मुझसे मिलना चाहते हैं। मैं उन्हे मना कैसे कर सकता हूं ? दूसरी बार तो तुम्हे मुझे शायद भीड़-भाड़ मे ही मिलना होगा।" तब मुझे क्या पता था कि यह बापू से मेरी ~ ।त

भेंट है और उनके प्यारे चेहरे को अ

दूसरे दिन, ३० जनवरी को,
कर दी गई। जैसे ही वह प्रार्थना-स
रास्ते में एक हिन्दू युवक ने उन पर

गांधीजी के निधन की खबर से
उनकी जीवन-ज्योति अवश्य बुझ
ने उनके प्राण लिये, वह ला
हृदयो मे व्याप्त साम्प्रदायिव
दिया।

गाधीजी की अस्थियों
वहां उपस्थित विशाल ज
जवाहर ने जो लम्बा भ
प्रकार हैं .

"उनके जीवन मे औ
प्रकाश, जो आनेवाले युगों
करता रहेगा। फिर हम
तो हमे अपने-आप पर,
गत दुर्भावनाओं पर, अपने
पर करना चाहिये। याद र
के ही लिए गांधीजी ने अपनी
कुछ महीनो से उन्होने अपनी पूर
रखी थी।"

हमारे देश ने एक महान
केवल भारत के ही लिए नही, सारी दु
का पुज था।"

"अपने सारे जीवन-काल में उन्होने भारत को उसके गरीबों, दलितो और शोषितों के ही रूप में देखा, समझा और बराबर उन्हीं के बारे मे सोचते और उन्ही की चिन्ता करते रहे। उनको ऊंचा उठाना और आजाद करना ही उनके जीवन का मकसद रहा। उन्होंने उन्ही जैसा जीवन अपनाया और ऐसा लिबास धारण किया कि किसी को नीचा देखना और शर्मिन्दा न होना पड़े। गरीब लोगो की आज़ादी और तरक्की को ही उन्होने अपनी जीत समझा।"[1]

भेट है और उनके प्यारे चेहरे को अन्तिम वार देख रही हूं ।

दूसरे दिन, ३० जनवरी को, महात्मा गांधी की हत्या कर दी गई । जैसे ही वह प्रार्थना-सभा में पहुंच रहे थे कि आधे रास्ते में एक हिन्दू युवक ने उन पर तीन बार गोलियां दागी ।

गांधीजी के निधन की खबर से सारा देश सन्न रह गया । उनकी जीवन-ज्योति अवश्य बुझ गई थी; लेकिन जिस गोली ने उनके प्राण लिये, वह लाखों हृदयो को भेद गई और उन हृदयों मे व्याप्त साम्प्रदायिक घृणा का भी उसने खात्मा कर दिया ।

गाधीजी की अस्थियों को गंगा में विसर्जित करने के बाद वहा उपस्थित विशाल जन-समुदाय को सम्बोधित करते हुए जवाहर ने जो लम्बा भाषण दिया था उसके कुछ अंश इस प्रकार हैं .

"उनके जीवन में और मरण में भी एक तेज है—एक प्रकाश, जो आनेवाले युगो तक हमारे देश को आलोकित करता रहेगा । फिर हम उनके लिए शोक क्यो करे ! शोक तो हमे अपने-आप पर, अपनी कमजोरियों पर, अपनी हृदय-गत दुर्भावनाओं पर, अपने मतभेदों पर और आपसी झगड़ो पर करना चाहिये । याद रहे कि इन सब बुराइयों को मिटाने के ही लिए गांधीजी ने अपनी जान दी । याद रहे कि पिछले कुछ महीनो से उन्होंने अपनी पूरी ताकत इसी काम मे लगा रखी थी ।....

हमारे देश ने एक महान आत्मा को जन्म दिया जो केवल भारत के ही लिए नही, सारी दुनिया के लिए ज्योति का पुज था ।

"अपने सारे जीवन-काल मे उन्होने भारत को उसके गरीबों, दलितों और शोषितों के ही रूप में देखा, समझा और बराबर उन्हीं के बारे में सोचते और उन्ही की चिन्ता करते रहे। उनको ऊंचा उठाना और आजाद करना ही उनके जीवन का मकसद रहा। उन्होंने उन्ही जैसा जीवन अपनाया और ऐसा लिबास धारण किया कि किसी को नीचा देखना और शर्मिन्दा न होना पड़े। गरीब लोगों की आजादी और तरक्की को ही उन्होंने अपनी जीत समझा।"[1]

१५

भारत में नवयुग

•

जवाहर पहली बार, सितम्बर १९४८ में, कामनवेल्थ के प्रधानमंत्रियों की बैठक में भाग लेने के लिए गये तो इंग्लैड के प्रधानमंत्री एटली से उनकी निजी वार्ता अवश्य हुई, परन्तु राजप्रमुखो की उस अधिकारिक बैठक मे भारत-सम्बन्धी कोई चर्चा नही हुई, क्योकि विषय-सूची मे भारत को नहीं रखा गया था। अप्रैल १९४९ मे, लन्दन मे, प्रधानमंत्रियों की जो दूसरी बैठक हुई उसमें जवाहर ने यह प्रस्ताव रखा कि "ब्रितानी ताज की वफादारी से मुक्त सार्वभौम स्वतंत्र गणतंत्र के रूप मे ही भारत कामनवेल्थ के अन्दर रह सकता है।" उनके इस प्रस्ताव से ब्रिटिश विदेश विभाग के कानूनदां लोग भौचक रह गए, और पूछने लगे, "ताज के प्रति वफादार संगठन में एक गणतंत्र का होना कैसे सम्भव है?"

प्रधानमंत्री एटली और बादशाह छठवे जार्ज के जोर देने पर ब्रिटिश शासकों ने "आखिर एक रास्ता निकाला। लन्दन की घोषणा मे कहा गया कि कामनवेल्थ के दूसरे सदस्य जहा ताज के प्रति अपनी वफादारी से जुडे हैं, भारत की पूरी

सदस्यता का दर्जा सिर्फ 'बादशाह को स्वतंत्र सदस्य राष्ट्रों के स्वच्छिक संगठन का प्रतीक मानकर कामनवेल्थ का प्रमुख स्वीकार कर लेने से' ही प्राप्त है।" इस प्रकार अंग्रेजो ने वास्तव मे कामनवेल्थ के सदस्यता-सम्बन्धी सिद्धान्त को ही बदल दिया, जिससे भारत को उसका सदस्य बनाया जा सके।

अब भारत के गणतंत्र बनने मे कुछ ही महीने बाकी रह गये थे। इस बीच सविधान सभा, जिसमे कांग्रेस पार्टी का बहुमत था, गरमागरम बहसों मे लगी हुई थी। भारत का सविधान बनाने के दौरान राष्ट्रभाषा के प्रश्न, सरकार के ससदीय स्वरूप (अस्पृश्यता-विरोधी प्रावधान के साथ) मौलिक अधिकार आदि महत्त्वपूर्ण मामलो के पक्ष-विपक्ष को लेकर संविधान सभा मे उग्र विवाद होता रहा। लेकिन हर सवाल पर जवाहर की राय की कद्र की जाती और कांग्रेस का बहुमत उनके विचारो का समर्थन करता।

कांग्रेस के अन्दरूनी संघर्ष का आधार संगठनात्मक होने के साथ-ही-साथ सैद्धान्तिक अथवा वैचारिक भी था। एक तो यही कि भारत में ब्रिटिश राज्य के खिलाफ लड़ाई के लिए बनाया हुआ ढीला-ढाला संगठन था। स्वतंत्र होने का राष्ट्रीय सकल्प ही उसे एकताबद्ध किये हुए था और वही उसकी मूल-शक्ति भी थी। कम्युनिस्ट, समाजवादी और अनुदार सभी समान रूप से इसी एक ध्येय के लिए काम करते रहे थे। यहां तक कि आर्थिक और सामाजिक प्रश्नो पर जवाहर के फेबियन (आदर्शवादी) समाजवादी विचार भी, सिर्फ राजनैतिक स्वप्नो (महत्वाकांक्षाओ) की सीमाओ तक, कांग्रेस को स्वीकार्य थे। लेकिन स्वतंत्रता प्राप्त होते ही कांग्रेस के अन्दर जो

विभिन्न विचारधारा वाले गुट या समूह थे उनका पारस्परिक संघर्ष उभरकर ऊपर आ गया। १९४७ मे गांधीजी ने तो यह भी सलाह दी थी कि अब कांग्रेस को भग करके नये राजनैतिक दल बना लेने चाहिए, लेकिन जवाहर और सरदार वल्लभभाई पटेल को गांधीजी का यह विचार स्वीकार न हुआ।

संविधान सभा की बैठके १९४७ से १९४८ तक होती रहीं और २६ नवम्बर १९४९ को लोकतंत्र की स्थापना वाला भारत का संविधान अंगीकार किया गया। इस संविधान में बालिग मताधिकार, दो सदनो वाली संसद, प्रधानमंत्री, मौलिक अधिकार आदि का प्रावधान किया गया था। हिन्दी को राजभाषा का दर्जा देने के साथ ही अंग्रेजी को केन्द्र मे सहभाषा (वैकल्पिक) का स्थान दिया गया।

२६ जनवरी १९५० को भारत एक सार्वभौम संप्रभु गणतंत्र—भारतीय गणतंत्र—और ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल का सदस्य बना।

अक्तूबर १९४९ मे जवाहर और इन्दिरा अपनी पहली अमेरिकी यात्रा पर गये। जवाहर को राष्ट्रपति ट्रूमैन ने राजकीय अतिथि के रूप में आमंत्रित किया था और वे लन्दन से राष्ट्रपति के विमान द्वारा यात्रा करने वाले थे। ठीक उन्ही दिनों राजा और मैं भी अपनी दूसरी भाषण-यात्रा के सिलसिले में अमेरिका जा रहे थे। जवाहर और इन्दिरा के प्रस्थान के दस दिन पहले मैं अपने दोनों वेटों के साथ भारत से अमेरिका के लिए रवाना हुई। राजा काफी दिन बाद आने वाले थे। मिस्र मे कुछ दिन रुकने के बाद, एयर-इन्डिया के जिस

विमान से जवाहर और इन्दिरा यात्रा कर रहे थे, उसीमे उन लोगो ने जवाहर से पूछा कि क्या मैं उनके साथ राष्ट्रपति-के विमान में यात्रा कर सकती हूं ? तो उन्होने उत्तर दिया कि ऐसा करना राजनयिक शिष्टाचार के उपयुक्त न होगा; इसलिए हमलोग नियमित हवाई सेवा से गये।

राजकीय कार्यक्रमो के बीच के समय में, और जब भी वे लोग नाश्ते के समय न्यूयार्क मे रहते, मैं और मेरे दोनो बच्चे जवाहर और इन्दिरा के पास चले जाते थे। जवाहर जिन राजकीय समारोहो मे आमंत्रित किये जाते, उन सभी में इन्दिरा उनके साथ नही जाती थी, इसलिए वह और मैं बाजार मे खरीदारी करने, मित्रो के यहा दावत खाने और अजायबघर तथा कलादीर्घाएं देखने चली जाया करती थी। मेरे एक मित्र ने हमे नाइट क्लब का निमंत्रण भी दिया था। इन्दिरा सामाजिक नृत्यों मे भाग नहीं लेती, और यद्यपि मुझे नाचना प्रिय है, हमने वहां केवल भोजन किया, नृत्य देखा किये और लौट आये। इन्दिरा को नाटक पसन्द है, इसलिए उसने कई नाटक भी देखे। कुल मिलाकर यात्रा उसके लिए आनन्ददायी रही और उसने अमेरिका मे बहुत-से दोस्त बनाये। अपनी अद्भुत निरीक्षण-क्षमता के कारण वह विदेश में देखे हुए स्थानों और वहां जिन लोगों से मुलाकात होती है उन्हें बहुत अच्छी तरह याद रखती है। अमेरिकी जनता उसे 'प्यार करने के काबिल' लगी, लेकिन उन लोगों का तड़क-भडक वाला और बहुत खर्चीला आतिथ्य उसे कुछ भारी ही पड़ा। अपनी उस पहली यात्रा के बाद वह कई बार अमेरिका हो आई है।

१७ यार्क रोड वाला प्रधानमत्री का आवास सरकारी कामकाज और राजकीय समारोहों के लिए छोटा पड़ता था। मेहमानो का तांता लगा ही रहता—कुछ एक-दो दिन ठहरते और कई हफ्तो टिके रहते, परिवार के लोग भी अक्सर आ जाया करते थे; और यों भी अनेक कामों से अनेक लोगों की भीड़ लगी रहती थी—इन सब कारणों से बड़ी जगह रहना आवश्यक हो गया। इसके अलावा सुरक्षा का सवाल भी था—वह मकान ऐन सड़क पर होने के कारण सुरक्षा प्रबन्ध कठिन हो जाते थे। वैसे जवाहर को अपनी सुरक्षा की कोई चिन्ता नही थी, लेकिन राजकीय कामो के लिए स्थान के साथ-साथ स्वयं उन्हे भी काम करने के लिए एकान्त चाहिए था। लार्ड माउण्टबेटन ने उन्हे उस बड़े मकान मे चले जाने की सलाह दी जिसमे ब्रिटिश कमाण्डर-इन-चीफ रहा करता था। मकान क्या, बड़े-बडे कमरो और सुन्दर बागीचे वाली विशाल कोठी ही थी। पहले तो जवाहर राजी न हुए; लोगों के सम्पर्क से दूर, कटे हुए और अकेले रहना उन्हे पसन्द न था, मगर अन्त में राजी हो गए। उनके वहां रहने जाने के साथ ही वह जगह प्रधानमन्त्री के निवास के नाम से प्रख्यात हो गई (और अब तीनमूर्ति-भवन कहलाती है)।

१९५० मे इन्दिरा जब अपने पिता का नया घर जमाने के लिए वहां गई तो न जवाहर को और न स्वय इन्दिरा को ही यह कल्पना थी कि अब यही उसका स्थायी घर होगा। आरम्भ मे तो वह कुछ दिनो के लिए बच्चो को फ़ीरोज के पास लखनऊ ले जाया करती थी, लेकिन जैसे-जैसे जवाहर पर प्रधानमत्रित्व का कार्यभार बढ़ता गया और देश की
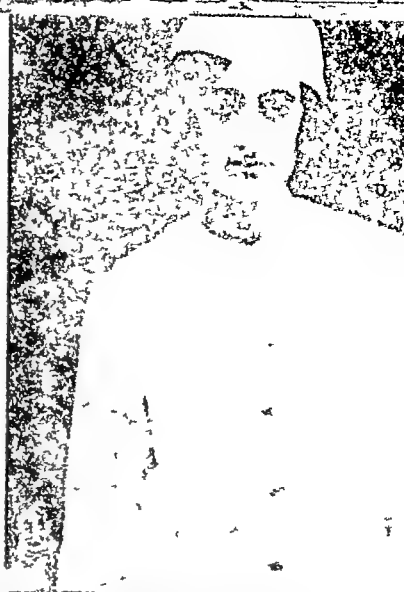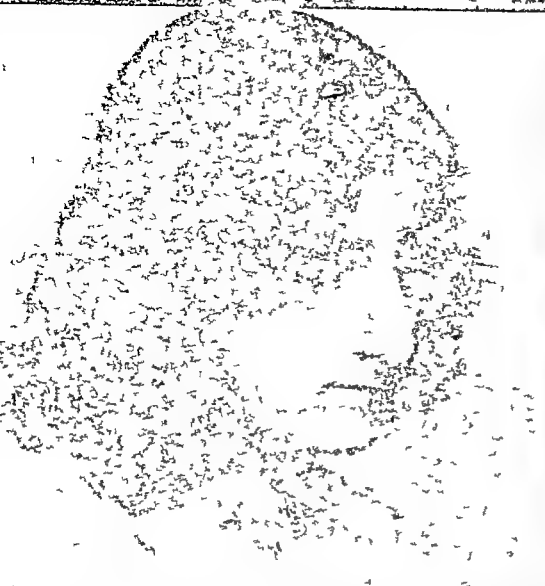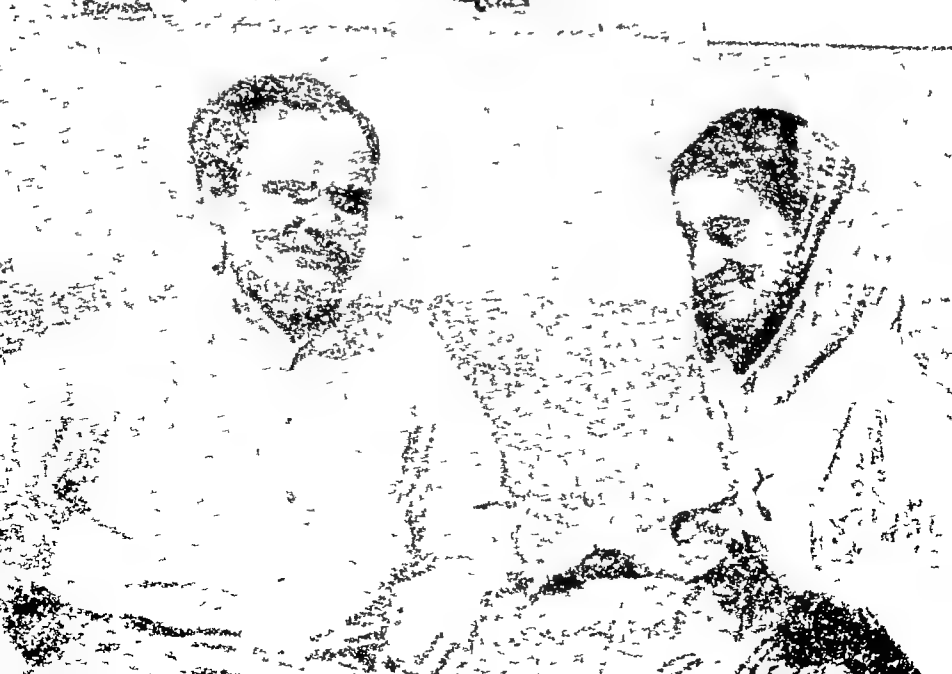
स्थिति तनावपूर्ण होती गई, उसका नई दिल्ली मे रहना भी आवश्यक और अपरिहार्य होता गया—महत्त्वपूर्ण विदेशी मेहमानों के स्वागत-सत्कार का-दायित्व तो उसे निभाना पडता-ही था, पिता की गृहस्थी का प्रबन्ध और उनकी सुख-सुविधा का खयाल रखना भी उसके जिम्मे था। उनकी वेटी होने के नाते यह उसका कर्त्तव्य ही था। मेरी बहन तो अक्सर राजनयिक दायित्वो के सिलसिले मे विदेशो मे रहती और मै अपने पति और बच्चो के पास बम्बई। फिर भी मैं अक्सर दिल्ली चली जाया करती थी। फीरोज ने जब देखा कि सकट के इन दिनो इन्दिरा का अपने पिता के साथ रहना बहुत ज़रूरी है तो उसने तय किया कि वह बार-बार बच्चो के साथ २७० मील की यात्रा कर लखनऊ आये, इसके बजाय वही क्यो न दिल्ली उन लोगो से मिलने के लिए चला जाया करे।

विभाजन के बाद जवाहर को जान से मारने की धमकी-भरे पत्र मिलने लगे थे। उनकी सुरक्षा का प्रवन्ध बहुत जरूरी और महत्त्वपूर्ण था। राजनैतिक अवसरवादियो, बिना किसी निश्चित प्रयोजन के मिलने आने वालों और ऐसे ही अड़गे-बाज़ो और फितरतियो को उनसे दूर रखने में इन्दिरा को वड़ी कठिनाइयो का सामना करना पड़ता था। अपने पिता के प्राणो की रक्षक यह बेटी बडी चतुराई और होशियारी से मिलने के लिए आने वाले लोगो से पेश आती और अवांछनीय तत्त्वो को उनके समक्ष न जाने देती थी। इसके साथ ही वह समाज-कल्याण का कार्य करती और कांग्रेस की कई उपसमितियो की सदस्य भी थी। लेकिन इन सब कार्यो

को उसने कभी बेटों के प्रति अपने कर्त्तव्य मे बाधक नही होने दिया।

इन्दिरा एक वत्सल मां थी और अपने दोनों बेटो के लालन-पालन मे जितना भी सम्भव होता, ज्यादा-से-ज्यादा समय देती थी। वह अपने एकाकी बचपन की बात भूली नही थी, इसलिए राजीव और संजय को कभी अकेलापन अनुभव न करने देती। वह उन्हे अपने सामने खाना खिलाती, उनके साथ खेलती और बच्चो के लायक कोई अच्छी फिल्म होती तो दिखाने ले जाती। बच्चे भी अपनी मां के प्रेम मे निश्चिन्त थे। लेकिन उस उम्र में उन्हे बराबर किसी की देख-रेख की जरूरत थी, इसलिए इन्दिरा ने अन्ना (एक डेन महिला जो भारत मे बस गई थी) को सहायता के लिए वुला लिया। अन्ना सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र वसु की मचिव और उसके बाद नान की पुत्रियों की गवर्नेस रह चुकी थी। वह अनुशासन के मामले में कठोर, ठण्डे जल के फुहारे के नीचे नहाने, सूर्यस्नान और व्यायाम की कट्टर पक्षपाती और नैष्ठिक शाकाहारी थी—कई बार तो कच्ची सब्जियां और और दही खाकर ही रह जाती थी। जव राजीव और सजय देहरादून के वेल्हाम स्कूल मे भर्ती हो गए तो उसने घर का प्रवन्ध सभालकर इन्दिरा को उस जानलेवा काम से मुक्त कर दिया।

फ़ीरोज भी अपने पुत्रो को जी-जान से चाहने वाला—समर्पित पिता था। वह उनके लिए खिलौने बनाता और मशीनो मे उनकी रुचि जाग्रत करता रहता था। हर चीज़ को खोलने और फिर से जोड़ने के कार्य में वह उन्हें बराबर

प्रोत्साहित किया करता था। वह अपने दोनो बेटो को इंजीनियर बनाना चाहता था। (मशीनों की बनावट और कार्य-विधि मे अपने दोनो बेटो की रुचि पैदा करने मे वह इस हद तक सफल हुआ कि बडे होने पर उन्होने इजीनियरिंग को ही अपना पेशा बनाया।)

भारत की समस्याओ को हल करने मे सतत प्रयत्नशील कई कांग्रेसी सहयोगियो की मृत्यु हो जाने से जवाहर को ऐसा लगता था मानो सारी लड़ाई वह अकेले ही सह रहे हैं। मरनेवालो में सरदार वल्लभ भाई पटेल, गोविन्द वल्लभ पन्त और रफी अहमद किदवई थे। अब कांग्रेस के उनके कई साथियों में भारत और विश्व के भविष्य के प्रति दूरदर्शिता का नितान्त अभाव था। इसलिए जवाहर अक्सर इन्दिरा से सलाह-मशविरा किया करते। देश और विदेश मे जो समझौता-वार्ताए होती, उनमें कूटनीतिक चर्चाओ के दौरान पर्यवेक्षक के रूप में निरन्तर उपस्थित रहने के परिणाम-स्वरूप ऐतिहासिक घटनाओ की इन्दिरा की समझ बहुत विकसित, प्रौढ और स्पष्ट हो गई थी, इसलिए जवाहर उसके निर्णय पर भरोसा करते थे।

इन्दिरा का इतिहास-सम्बन्धी विशद ज्ञान उस समय से आरम्भ होता है जब उसकी तेरहवी वर्षगाठ पर उसके पिता ने (नैनी जेल से) उस सिलसिले का, जो बाद मे 'विश्व-इतिहास की झलक' नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ, पहला पत्र लिखा था। अब वह सचमुच जीवित इतिहास मे भाग ले रही थी। वह अपने पिता के साथ अनेक ऐतिहासिक मिशनों पर विदेशो मे गई। १६४८ और १६४६ मे राष्ट्रमण्डल के प्रधान

मन्त्रियो की बैठको में लन्दन, और वहां से पेरिस, जहां संयुक्त राष्ट्रसघ की महासभा मे एशियाई और अफ्रीकी राष्ट्रों की जनता की आकाक्षाओ को जोड़ते हुए भारत की विदेश-नीति पर उन्होने भापरण दिया, १९५३ मे रानी ऐलिजाबेथ के राज्यारोहण-समारोह मे लन्दन; १९५४ में जवाहर की राजकीय यात्रा मे चीन; और १९५५ मे बांडुग के एफ्रो-एशियाई सम्मेलन में इडोनेशिया, जहां अफ्रेशियाई गुट के प्रवक्ता के रूप मे जवाहर ने चीन को अफ्रेशियाई राष्ट्रो की मंडली मे इस आशा से लाने का प्रयत्न किया कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो मे सुधार चीन की अतिवादी नीति को प्रभावित कर सके ।

१९५३ मे इंग्लैंड से लौटने के बाद इन्दिरा निजी रूप से सोवियत रूस की यात्रा पर गई । इस यात्रा के दौरान उसे रूस के जन-जीवन और वहा की सरकार के काम और नीति को देखने-समझने का अच्छा अवसर मिला, और उसके अगले साल जब चीन जाने की बारी आई, तो वह दोनो ही साम्य-वादी देशो की राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों की तुलना कर सकी । निजी चर्चाओ मे उसने भारत और दक्षिण-पूर्वी आग्नेय-एशिया के प्रति चीनी इरादों के बारे मे आशका व्यक्त की थी । १९५४ मे जब जवाहर ने चाऊ एन लाई को राजकीय अतिथि के रूप मे भारत आमंत्रित किया तो इन्दिरा अपने पिता के विचारो से सहमत न हो सकी । जवाहर और चाऊ की भेट का परिणाम एक संयुक्त घोपणा के रूप मे सामने आया, जो पंचशील कहलाता है । इसमे दोनो देशों की पारस्परिक मैत्री को बनाये रखने वाले पांच सिद्धान्त प्रति-

पादित किये गए थे—एक दूसरे की प्रादेशिक अखण्डता और संप्रभुता का सम्मान, अनाक्रमण; अन्दरूनी मामलो मे अ-हस्तक्षेप, समानता और पारस्परिक हित, और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व।

जवाहर को विश्वास था कि चीन अपने वादो को निभायेगा, क्योकि जैसा कि उन्होने कहा था, "दोनो ही महान सभ्यताएं एक हजार वर्ष से पड़ोसियो के रूप में शान्तिपूर्वक रहती आई हैं, दोनो मे से किसी ने हमलावर का बाना धारण नही किया है और दोनों के बीच सदियो से गहरे सांस्कृतिक और व्यापारिक सम्बन्ध चले आते हैं।"

जवाहरलाल नेहरू ने भारत की स्वतन्त्रता के लिए जो ओजस्वी कार्य किये और अन्तर्राष्ट्रीय सौहार्द के लिए उनके मन में जो चिन्ता-उत्कण्ठा थी, उससे आकर्पित होकर कई विदेशी विशिष्ट जन दिल्ली आये—उनमें ख्रुश्चेव, बुल्गानिन, नासिर, चाऊ एन लाई और श्रीमती इल्यानोर रूजवेल्ट थे। इससे इन्दिरा को विश्व की प्रमुख हस्तियो से परिचय प्राप्त करने और महत्त्वपूर्ण घटनाओ की सीधी जानकारी पाने का अवसर मिला, क्योंकि जिन बैठको मे सारी दुनिया को प्रभावित करने वाले अटपटे मामलो पर चर्चाए होती उनमे वह एक पर्यवेक्षक के रूप मे उपस्थित रहती थी।

देश के अन्दर और बाहर जवाहर को बडी जबर्दस्त समस्याओं का सामना करना पड़ा। १९४७ मे काश्मीर पर पाकिस्तानी हमले के बाद भारत और पाकिस्तान के पारस्परिक सम्बन्ध उत्तरोत्तर बिगड़ते गए। १९४७ मे पाकिस्तान दो बड़े भूखण्डो को लेकर, पूर्व पाकिस्तान और पश्चिमी

पाकिस्तान के रूप मे बनाया गया था। इन दोनो हिस्सों को भारत के नौ सौ मील का मध्योत्तर भाग एक-दूसरे से अलग करता था। पाकिस्तान के लिए अपने पृथक् हिस्सो के अलग-अलग लोगो को एकताबद्ध करना बहुत जरूरी था। भारत ने तो अपने लोगो की उन्नति और हालत सुधारने की नीति अपनाई थी, परन्तु पाकिस्तान में बडे ज़मीदार वहां के लोगो को चूसते और दोनो हाथो से धन बटोरते रहे। पाकिस्तानी सरकार को इस असमानता की ओर से किसानो का ध्यान बंटाने के लिए विवश हो जाना पड़ा। इस काम के लिए मज-हब के रूप मे एक अच्छा हथियार भी मिल गया। काश्मीर का झगड़ा १९४८ मे संयुक्त राष्ट्रसघ के इजलास मे गया और १९४९ मे युद्ध-विराम हुआ, परन्तु समस्या हल न हुई। वह झगडा आज भी बरकरार है।

देश के अन्दर जवाहर को कई गुटो के मतभेदो और विरोधों का सामना करना पडा, लेकिन वे एक के बाद एक विकासोन्मुख कार्यक्रम बडे ही कारगर तरीके से पेश करते गए। समाजवादी ढग के कल्याणकारी राज्य में उनका विश्वास था, पर उसे ज़बर्दस्ती लादने के बजाय वे जनता के सह-योग और सहमति से उसे हासिल करना चाहते थे। उन्होंने योजना पर सबसे अधिक जोर दिया, क्योकि उनकी राय मे सामान्य जन के जीवनस्तर को ऊंचा उठाने और उसकी सुप्त प्रतिभाओ को उपयोगी बनाने का सिर्फ यही एक रास्ता था। देश के आर्थिक विकास के लिए उन्होने राजकीय उद्योगो का (सार्वजनिक क्षेत्र मे उद्योग खोले जाने का) अनुमोदन किया। उनके प्रभाव और प्रयत्नो से पचवर्षीय योजनाए शुरू हुई और

बड़े पैमाने पर उद्योग एव कृषि की परियोजनाओं को साथ में लिया गया। नई परियोजनाओ को आरम्भ करने के लिए जिन स्थानों का चुनाव किया जाता वहां वे स्वयं जाते और उनके शिलान्यास-समारोहो की अध्यक्षता के लिए समय भी देते। उनकी नीतियो के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय साधनों का क्रमशः अच्छा उपयोग होने लगा और देश के आर्थिक विकास का रास्ता खुलता गया।

इन्दिरा भी परियोजनाओ को देखने के लिए जाती और इस तथ्य को हृदयंगम करती कि उनसे देश का किस तरह कायाकल्प हो रहा है। पचवर्षीय योजनाएं और कृषि एवं उद्योग का निरन्तर विस्तार भारत के अच्छे भविष्य में उसके पिता की अडिग आस्था के प्रतीक थे। इनसे इन्दिरा को भी उन आदर्शों के लिए काम करने की प्रेरणा मिलती जिनके लिए उसके पिता सतत कार्यरत थे।

नये संविधान के अन्तर्गत पहले आम चुनाव १९५२ में हुए। जवाहर के प्रति भारत की जनता के अनन्य प्रेम को ही काग्रेस ने अपने चुनाव-अभियान का मुख्य आधार बनाया। वे उनकी हालत सुधार रहे थे इसलिए जनता उनको अपना आदर्श मानती थी। स्थानीय उम्मीदवार कोई भी क्यों न रहा हो, हर जगह काग्रेस के चुनाव पोस्टर का मुख्य नारा था, "काग्रेस को वोट . जवाहर को वोट!" हवाई जहाज़, मोटर-कार, रेल और यहा तक कि बैलगाड़ी से भी जवाहर ने सारे भारत का चुनाव-दौरा किया। अक्सर इन्दिरा भी इन चुनाव-दौरो मे उनके साथ जाती थी। कभी कोई स्थानीय उम्मीदवार उसे भी अपने निर्वाचन-क्षेत्र की सभा मे समर्थन-

भाषण के लिए ले जाता था। इन्दिरा को यह देखकर खुशी होती कि वह श्रोताओ को प्रभावित और प्रेरित कर सकती है।

१९५२ के आम चुनाव के पहले उत्तर प्रदेश की प्रदेश कांग्रेस समिति ने इन्दिरा के सामने प्रस्ताव रखा था कि वह राज्य विधान-सभा का चुनाव लड़े, लेकिन इन्दिरा ने मना कर दिया, क्योकि एक तो दोनो बच्चे छोटे थे और दूसरे, समाज-सेवा का जो काम उसने हाथ मे ले रखा था, उसे छोड़ना नही चाहती थी। उसने भारतीय संगीत और नृत्य और भारतीय फिल्मो—खासतौर पर बाल-फिल्मों के विकास के लिए विशिष्ट संस्थाओं की स्थापना की थी। वह भारतीय बाल-कल्याण परिषद की अध्यक्ष और भारत सरकार के केन्द्रीय समाजकल्याण सघ की सदस्य थी। इन कामो मे लगे रहने के कारण उसने फिलहाल राजनीति मे भाग लेने से इन्कार कर दिया। फिर जवाहर को भी उसकी आवश्यकता थी—उनके अतिथियो के स्वागत-सत्कार का भार तो उसपर था ही, जटिल समस्याए उपस्थित होने पर वे परामर्श भी उसीसे करते थे।

और यों इन्दिरा दिल्ली मे अपने पिता के यही रहने लगी। इसके लिए उसे फीरोज से दूर रहना और गार्हस्थ सुख का त्याग भी करना पड़ा। कहा जाता है कि इससे फीरोज दुःखी रहने लगा और यह भी कि उसका यह खयाल हो गया कि इन्दिरा एक सामान्य व्यक्ति की अज्ञातनामा पत्नी बनकर रहने को अपेक्षा प्रधानमंत्री-निवास की तडक-भड़क वाली जिन्दगी में प्रमुख बनकर रहना ज्यादा पसन्द करती है, लेकिन मैं जानती हूं कि यह सच नही है। इन्दिरा ने एक

बार मुझे पत्र में लिखा था : "अपने परिवार वालो को बिलकुल ही महत्त्व न देने की उनकी (जवाहर की) आदत तो आपको मालूम ही है। ' जब कभी काम मे होते हैं तो अपनो के प्रति वैयक्तिक भावनाओ और दायित्वो का उन्हे जरा भी खयाल नही रहता।" मुझे विश्वास है कि फीरोज भी इस बात को जानता और समझता था।

१६

फ़ीरोज़ की मृत्यु

•

१९५२ के आम चुनाव में फ़ीरोज ने बरेली से कांग्रेस टिकट पर लोक-सभा का चुनाव लड़ा और प्रवल बहुमत से विजयी हुआ। 'नेशनल हेराल्ड' के प्रबन्ध-सम्पादक पद से इस्तीफा देकर वह नई दिल्ली चला आया और प्रधानमत्री-भवन के एक हिस्से में अपने बीवी-बच्चो के साथ रहने लगा। लोक-सभा का सदस्य होने के कारण उसे अलग से भी एक मकान मिला था। यह मकान उसने अपने पास ही रखा, क्योकि काम करने,लोगो से मिलने और आगन्तुको का स्वागत-सत्कार करने के लिए अपनी अलग जगह होना जरूरी था। इस मकान की साज-सज्जा के लिए वह लखनऊ से सारा फर्नीचर ले आया, जिसे उसने खुद बनवाया था और तमाम कमरों को इतने आकर्षक ढग से सजाया कि देखते ही बनता था। मकान के साथ एक छोटा वागीचा भी था, इसलिए बागवानी का अपना शौक उसने दिल्ली मे भी जारी रखा।

खाद्य और कृषि-मत्री रफी अहमद किदवाई से, जिनके साथ वह 'नेशनल हेराल्ड' मे काम कर चुका था, फीरोज के

बडे घनिष्ठ सम्बन्ध थे। रफी साहब एक ज़माने मे मेरे पिता-जी के सचिव भी रहे थे और बाद में उत्तर प्रदेश में कांग्रेस-आन्दोलन के बडे योग्य सगठनकर्त्ता के रूप मे सामने आये। जवाहर को उनकी संगठन-क्षमता और प्रशासकीय योग्यता पर पूरा भरोसा था और वे उन्हे बहुत मानते थे। केन्द्रीय मत्री के नाते रफी साहब ने लोगो से काम लेने की अपनी योग्यता का सिक्का जमा दिया और खाद्य और कृषि-विभाग अपने पास रहते उन्होने देश के अन्न-संकट को सफलता से हल कर दिखाया। सामाजिक व्यवस्था के समाजवादी स्वरूप मे विश्वास होते हुए भी वे जरा भी कट्टरपन्थी और रूढि-वादी नही थे और इसीलिए अन्न-सकट को हल करने के अपने काम मे उन्होने निजी व्यापारियों और जन-सेवियो, दोनो का ही पूरा-पूरा सहयोग लिया।

रफी साहब से मैत्री फीरोज के वहुत काम आई। उसने उनसे बहुत-कुछ सीखा—उनकी तरह उसके दरवाजे भी हमेशा सवके लिए खुले रहते और गरीवो की सेवा-सहायता के लिए वह भी चौबीसो घण्टे तैयार रहता था। तांगे-इक्केवाले और टैक्सी-चालक, पोस्टमैन और रेल के कुली-हमाल और फेरी-वाले अपनी समस्याएं लेकर उसके पास आते ही रहते थे और वह बडी तत्परता से उनके मामले हाथ मे लेता और मदद करता था। ऐसे आदमो के घर किसी के आने-जाने पर कोई रोक-टोक नही हो सकती। प्रधानमंत्री-निवास मे सुरक्षा-प्रति-बन्धो के कारण फीरोज़ अपना घर सवके लिए खुला नही रख सकता था।

फीरोज वड़ा ही स्वाभिमानी व्यक्ति था। प्रधान मंत्री के

दामाद के रूप में परिचय दिया जाना उसे ज़रा भी पसन्द नही था और अपने श्वसुर के साथ फोटो खीचे जाने से वह हमेशा बचता था। वह बराबर यही चाहता रहा कि उसे उसकी अपनी योग्यता के आधार पर ही जाना-पहचाना जाय नेहरू-परिवार के पुछल्ले के रूप में नही। अगर किसी समारोह मे वह जवाहर के दामाद के नाते निमंत्रित किया जाता तो जाने से साफ इन्कार कर देता और सिर्फ उन्ही समारोहो में जाता, जहा उसे लोक-सभा के सदस्य की हैसियत से बुलाया जाता था।

राजा और मैं उसे बहुत चाहते थे, क्योकि वह बिलकुल हमारे-जैसा ही था। मैं जब भी नई दिल्ली मे होती वह सवेरे, नाश्ते के बाद, मेरे कमरे में गपशप के लिए चला आता। राजा उसे 'राष्ट्र का जमाई' कहकर अक्सर छेड़ा करते और फ़ीरोज भी बडे तपाक से उन्हे 'राष्ट्र का बहनोई' कहता था।

फीरोज़ के अलग मकान को लेकर बडे किस्से गढे गए और उसकी और इन्दिरा की अनबन की बातें तक जडी गई। यहां तक कि संसद् मे भी कानाफूसी होने लगी कि हिन्दू-विवाह कानून में तलाक का प्रावधान सिर्फ इसलिए किया गया है कि इन्दिरा तलाक ले सके। लोग यह भूल गए थे कि इन्दिरा और फीरोज के लिए तलाक की कार्रवाइयां कतई ज़रूरी नही थी और फिर हकीकत तो यह थी कि वे एक-दूसरे को वास्तव में बहुत ज्यादा प्यार करते थे। लेकिन आज भी ऐसे कई लेखक हैं जो दोनों के दुःखद और असफल दाम्पत्य का बेसुरा राग अलापे जा रहे हैं।

१९६६ मे एक भेटकर्त्ता को इन्दिरा ने बताया .

"मैं किस्से सुनती हू कि मेरी शादी टूट गई थी और मैंने अपने पति को छोड़ दिया था, या हम लोग अलग हो गए थे। मगर यह कुछ भी सच नही है। हमारा वैवाहिक जीवन आदर्श रूप से सुखी नही कहा जा सकता। हम कभी बहुत प्रसन्न रहे और कभी बहुत जोरो से झगडा भी किया। कारण कुछ तो यह कि हम दोनो ही काफी जिद्दी थे और कुछ हद तक परिस्थितिया भी कारण रही। अगर वह मना कर देते तो मैं सार्वजनिक कार्य कभी न करती। लेकिन जो भी करती हूं इतनी तल्लीनता से करती हूं कि तब पूरी तरह उन्ही पर केन्द्रित हो जाने का खतरा था और यह अन्देशा उन्हे भी हुआ। इसलिए जब सार्वजनिक जीवन में उतरी और सफल हुई तो उन्हे अच्छा भी और नही भी लगा। दूसरे लोगो—मित्रो और रिश्तेदारो—का रवैया तो इस मामले मे और भी खराब रहा। वे पूछते, 'क्यो जी, फलां का पति होना कैसा लगता है ?' वे बुरा मान जाते और मुझे मनाने मे हफ्तो लग जाते। शादी में सबसे बडा पाप है—मर्द के अह को चोट पहुंचाना। लेकिन अखीर-अखीर मे हम इन सब बातों से बहुत परे होते और एक-दूसरे के काफी करीब आते जा रहे थे।"

दोनों ही भारत की उन्नति के प्रति समर्पित और उसी एक आदर्श से अनुप्राणित थे और दोनो ने ही अपने जीवन का श्रेष्ठतम अपने देश की सेवा मे लगाया था। संसदीय पद्धति की पूरी जानकारी न होने के कारण फीरोज ने आरम्भ में तो लोकसभा की कार्रवाइयो मे मामूली-सा ही भाग लिया, लेकिन अपने परिश्रम और संकल्प के बल पर उसने जल्दी ही कार्रवाई सम्बन्धी पूरी जानकारी प्राप्त कर ली और कार्यनीतियों तथा

विधि-विधान का विशेषज्ञ बन गया। लोकसभा में अपने पहले भाषण की सामग्री जुटाने मे उसने भगीरथ परिश्रम और बडी सतर्क छानबीन की थी। भाषण का विषय था—डालमिया-जैन उद्योग-समूह के एक प्रतिष्ठान, भारत बीमा कम्पनी द्वारा धन का दुरुपयोग। उसने कम्पनी के निन्दनीय हथकण्डो का ऐसा युक्तियुक्त भण्डाफोड़ किया कि सरकार को जांच-आयोग बैठाना पड़ा, रामकृष्ण डालमिया को सजा हुई और अन्त में जीवन-बीमा व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण हुआ। उसने सारे मामले को जिस खूबी से पेश किया, उससे उसकी निडरता, स्पष्टवादिता, सत्य और न्याय-निष्ठा की धाक जम गई। सभी मान गए कि राष्ट्र के हित में बड़े-से-बडे व्यक्तित्व का भी पर्दाफाश क्यो न करना पडे, फ़ीरोज कभी हिचकिचायेगा नही।

१९५७ के आम चुनाव में फीरोज ने पुन. लोकसभा का चुनाव जीता और एक बार फिर यह सिद्ध कर दिखाया कि वह कितना निडर वक्ता और साहस का धनी संसद-सदस्य है। इस बार उसने वित्त-मंत्रालय पर प्रहार किया और उस सारी कार्रवाई का रहस्योद्‌घाटन किया जो राष्ट्रीयकृत जीवन बीमा निगम द्वारा उद्योगपति हरिदास मूदडा को भारी कर्ज देने के सिलसिले में की गई थी। तत्कालीन वित्तमंत्री टी० टी० कृष्णमाचारी भारत-सरकार के योग्यतम मंत्रियों में से थे और जब उनके मंत्रालय पर आरोप लगाये गए तो जवाहर बहुत दुःखी हुए, परन्तु वे न्यायिक जांच के लिए तैयार हो गए और बम्बई-हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश छागला को इसके लिए नियुक्त किया गया (श्री छागला आगे चलकर अमेरिका मे भारत के राजदूत और

तत्पश्चात् केन्द्र मे क्रमशः विदेश-विभाग और शिक्षा-विभाग के मंत्री भी रहे)। फीरोज ही मुख्य गवाह था और उसने जांच-अदालत के समक्ष पुष्ट प्रमाणो के ढेर लगा दिये। जांच की रिपोर्ट ने जवाहर को खासी उलझन मे डाल दिया, क्योकि उनके एक वरिष्ठ सहयोगी और सरकार के उच्च अधिकारी-गण दोषी पाये गए थे। मगर सारी परेशानी के बावजूद उन्होने सम्बन्धित अधिकारियों के आचरण की निन्दा की और कहा कि उन लोगो को कडी सजा दी जानी चाहिए। वित्तमत्री को इस्तीफा देना पड़ा। स्वय फ़ीरोज़ को इससे कोई खुशी नही हुई, क्योकि कहा जाता है कि उसने यह टिप्पणी की थी, "अरे, कहा मारा, कहां लगा!" इस जांच ने बड़ी खलबली मचाई और सारी दुनिया के अखबारो में इस काण्ड के बारे में लिखा गया।

इस प्रकार फीरोज ने लोकसभा के सदस्य के नाते नाम कमाया और नवोदित राष्ट्र के जीवन मे अपना स्थान बना लिया। वह अच्छा वक्ता, कुशल प्रशासक और सचाई के पक्ष मे निडरता से लड़नेवाला सूरमा था।

अत्यधिक अच्छे गुणो के कारण उसके कई मित्र हो गए थे, जिनसे उसकी छेडछाड़ और हँसी-दिल्लगी चलती रहती थी। मगर वैसे आम तौर पर वह दूसरों की भलाई के लिए काम करता था, जैसे किसी लड़की को उपयुक्त पति न मिल रहा हो तो उसके लिए सही आदमी खोज देना, आदि। वास्तव में उसे शादी-ब्याह तय कराने में मजा आता था। बच्चों की पार्टियो मे वह ख़ूब चहकता था।

प्रधानमन्त्री-निवास के रहन-सहन और तौर-तरीके से

समरस न हो पाने का मुख्य कारण यही था कि उसकी पृष्ठ-भूमि इन्दिरा से भी भिन्न प्रकार की थी। उसका जन्म और लालन-पालन समान हैसियत के मध्यमवर्गीय पारसी परिवार मे हुआ था। इग्लैंड मे उसकी शिक्षा का पूरा खर्च उसकी एक चाची (मौसी या बुआ) ने किया था, जो लखनऊ की मशहूर डाक्टरनी थी और उसे बहुत चाहती थी। शिष्टाचार का आडम्बर और निरी औपचारिकता उसे ज़रा भी न सुहाती थी। कौन कहां बैठे और कौन कहां खड़ा रहे, इस तरह के राजनयिक शिष्टाचार के अग्रताक्रम और ऐसी ही दूसरी महत्त्वहीन बातो से उसे बडी उलझन होती थी। इसीलिए उसने १९५८ मे अकेले रहने का फैसला किया और उस मकान में चला आया जो लोकसभा के सदस्य की हैसियत से उसे मिला था। लेकिन भोजन वह रोज़ प्रधानमन्त्री-भवन में इन्दिरा और बच्चों के साथ ही करता था।

अलग रहना शुरू करने के कुछ ही दिनो बाद उसे दिल का दौरा पड़ा। इन्दिरा उस समय एक राजनैतिक मिशन पर नेपाल गई हुई थी। टेलीफोन से उसे खबर की गई और वह फौरन दिल्ली भागी आई। उसने खूब जी लगाकर अपने पति की सेवा की और जल्दी ही वह अच्छा हो गया। फिर फीरोज, इन्दिरा और बच्चे स्वास्थ्य-लाभ के लिए काश्मीर गये। वहां उन्हे खूब मजा आया और मन भी बहला। इन्दिरा के शब्दो में, "हमने वहां पूरी छुट्टी मनाई।"[२] वहां से लौटते ही फीरोज़ पुनः अपने काम मे जुट गया।

२ सितम्बर १९६० को फीरोज़ ने छाती में दर्द होने की शिकायत की। डाक्टर ने आराम करने की सलाह दी, पर वह

माना नही और लोकसभा की बैठको में जाता रहा। पांच दिन बाद उसने डाक्टर को फोन किया और खुद ही मोटर चलाकर अकेला नर्सिंग होम पहुंचा। वहां जाते ही उसे दिल का दूसरा दौरा पड़ा। इन्दिरा केरल पहुंची ही थी कि खबर पाकर उलटे-पांवो दिल्ली लौटी। रात मे फीरोज की हालत ज्यादा खराब हो गई। इन्दिरा सारी रात उसके सिरहाने बैठी रही। ८ सितम्बर के सवेरे, पौ फटने से भी पहले, इन्दिरा का हाथ थामे हुए फीरोज ने इस दुनिया से नाता तोड लिया।

राजीव और संजय देहरादून के स्कूल से घर आये। राजा और मैं भी दिल्ली भागे गये, परन्तु पहुंचने मे देर हो गई और अन्तिम संस्कारों मे शरीक न हो सके। फ़ीरोज पारसी था (पारसी अपने मृतकों को या तो गाड़ते हैं या शान्ति स्तूप (टावर आफ सायलेन्स) में रख आते हैं), परन्तु अन्तिम इच्छा के अनुसार उसका दाह-संस्कार किया गया। उसके शव को श्मशान ले गए और वहां राजीव ने अपने पिता की चिता को आग दी। हजारो की तादाद मे मज़दूर और गरीब लोग, जिनकी वह मदद करता रहा था, उसकी शवयात्रा में सम्मि-लित हुए।

इन्दिरा का दिल टूट गया। मारे शोक के उसने अपने को कमरे में बन्द कर लिया। यह सोचकर कि वह इस समय अकेली रहना चाहती है, मैं अपने भाई के पास उनके कमरे मे चली गई। वे शून्य मे आंखे गड़ाये चुपचाप बैठे थे। उस वज्र-प्रहार से वह इस कद्र स्तम्भित हो गए थे कि उन्हें पास-पड़ौस का भी कोई ध्यान नही रहा था। जब मैंने उनकी पीठ पर हाथ रखा तो रुंधे हुए गले से कह उठे, "सब कुछ कितना

जल्दी और अचानक हो गया ! अभी तो बिलकुल बच्चा ही था···और यह तो मुझे आज ही मालूम हुआ कि इतना लोकप्रिय भी था। बराबर इन्दु को पूछता रहा।"

१७

स्थिति की जानकारी के लिए दौरे

•

इन्दिरा के जीवन मे एक समय ऐसा भी आया जब सारे भारत के दौरे करते रहना ही उसका खास काम हो गया। १९५५ में वह कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति मे ली गई और महिला-विभाग उसे सौपा गया। महिलाओ के स्थानीय संगठन बनाने और उन्हें कांग्रेस की नीति और सिद्धान्त समझाने के लिए दौरे करना उसके लिए बहुत जरूरी हो गया।

१९५७ मे आम चुनाव में उसने जवाहर के लिए उनके फूलपुर निर्वाचिन-क्षेत्र मे प्रचार-कार्य किया था। उन दिनों इस क्षेत्र के ११०० गांवों में से वह प्रत्येक गांव में गई। उसके भाषण सुनने के लिए बडी संख्या मे लोग आते; और लोगों मे आसानी से घुलने-मिलने की अपनी आदत के कारण वह उस क्षेत्र मे बहुत ही लोकप्रिय और सबकी स्नेह-भाजन हो गई। उसने गुजरात में भी चुनाव-प्रचार किया; वहां मार-पीट की घटनाएं और उग्र विरोधी प्रदर्शन हो रहे थे। उन दिनों महाराष्ट्र और गुजरात एक ही राज्य बम्बई के अन्तर्गत थे और गुजराती अपने अलग राज्य की मांग कर रहे थे।

कांग्रेस के अन्दर नीति-निर्धारण के अधिकार को लेकर मतभेद बहुत तीव्र हो गए थे। कांग्रेस दल के लिए नीति-निर्धारण कौन करे—प्रधान मंत्री या कांग्रेल-सगठन? स्वतत्रता के पहले कांग्रेस के अध्यक्ष को नीति-निर्धारण-सम्बन्धी अधिकार थे और वही नेता होता था, लेकिन स्वतन्त्रता के बाद अध्यक्ष केवल नामधारी रह गया और प्रधान मंत्री वास्तविक नेता बन गया। अधिकार-सम्बन्धी इस झगड़े के कारण कांग्रेस के दो अध्यक्षों ने अपने पद से त्यागपत्र भी दे दिये थे। १९५१ से १९५४ तक जवाहर देश के प्रधान मत्री पद के अतिरिक्त कांग्रेस के अध्यक्ष-पद पर भी रहे। १९५५ से १९५८ तक श्री ढेबर ने इस पद को सुशोभित किया। अब तक एक जन-संगठन के रूप में कांग्रेस का महत्त्व लगभग समाप्त हो चुका था और नीति-निर्धारण का अधिकार विधान-मडलो मे कांग्रेस पार्टी के हाथ में आ गया था।

१९५९ के आरम्भ में कांग्रेस के अन्दर जो वामपक्षी तत्त्व थे उन्होंने एक जिंजर ग्रुप (—प्रेरक गुट, जो कुछ निश्चित नीतियो पर अमल करने के लिए सरकार को बाध्य करता रहे) बनाया और वे जवाहर के समाजवादी कार्यक्रम को लागू करने पर जोर देने लगे; लेकिन दक्षिणपन्थी उसमे बराबर अड़गे लगाते रहे। वह प्रेरक गुट (इन्दिरा और फीरोज दोनो ही उसमें थे) ज्यादा दिन चल नही पाया।

१९५९ के फरवरी महीने में इन्दिरा कांग्रेस की अध्यक्ष चुनी गई। कुछ लोगो का कहना है कि उसमे जवाहर का हाथ था, लेकिन यह सही नही है। उनकी दृढ मान्यता थी कि कोई भी पद योग्यता के आधार पर ही अर्जित किया जाना

चाहिए, नाते-रिश्ते के कारण देना कदापि ठीक नही । इन्दिरा दल की अध्यक्ष बनने वाली चौथी महिला थी, इसलिए किसी को अजीब नही लगा । और उसने केरल के अपने दौरे मे यह प्रमाणित कर दिखाया कि कांग्रेस अध्यक्ष-जैसे उत्तरदायित्वपूर्ण पद के लिए वह सब तरह से योग्य है ।

केरल जाने का उद्देश्य वहां की उलझनपूर्ण राजनैतिक परिस्थिति की जटिलताओ का पता लगाना था । इन्दिरा वास्तविकता की जानकारी स्वयं करना चाहती थी । केरल में १९५७ के चुनाव मे कम्युनिस्ट जीते और उन्होने वहा अपनी सरकार बनाई, इस पर सारे देश मे चिन्ता प्रगट की गई थी । अपने पादरी वर्ग के पूरे प्रभाव मे रोमन कैथोलिक ईसाई सम्प्रदाय वहां का शक्तिशाली अल्पमत था । कम्युनिस्टो ने जनवादी सविधान के अन्तर्गत विजयी होकर सत्ता प्राप्त की थी, लेकिन उसका जनहित मे उपयोग करने के बजाय दलीय हितो मे दुरुपयोग करने लगे--पुलिस और प्रशासकीय सेवाओं में उन्होने अपने दल वालो को घुसेड़ दिया, राजकोष का उपयोग दलगत कामों मे करने लगे; न्यायपालिका के कार्यो में व्यापक रूप से हस्तक्षेप आरम्भ हो गया, कानून और व्यवस्था की ओर दुर्लक्ष्य किया जाने लगा । स्कूली बच्चों को अपने मत की शिक्षा देने के लिए उन्होने नये ढग की पाठ्य पुस्तकें लिखवाई और राज्य मे सम्प्रदायो के जितने भी स्कूल थे उन्हें बन्द करवा दिया । इससे रोमन कैथोलिक ही नही, जितने भी धार्मिक गुट थे, सभी विरोध में उठ खड़े हुए, लेकिन कम्युनिस्ट मन्त्रिमण्डल ने तमाम विरोध और शान्तिपूर्ण प्रदर्शनो को कुचल दिया । फिर भी भारत सरकार मतदाताओ द्वारा निर्वाचित

मंत्रिमडल को हटाने से कतराती रही।

इन्दिरा गांधी के वहां जाने और सारी स्थिति के अध्ययन-विश्लेषण का बडा शुभ परिणाम हुआ और परिवर्तन का चक्र चल पडा। दिल्ली लौटकर उसने केन्द्रीय सरकार पर जोर डाला कि कम्युनिस्ट मत्रिमंडल को बर्खास्त कर केरल में राष्ट्रपति का शासन लागू कर देना चाहिए। हमारे देश के संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति को इस तरह के विशेषाधिकार प्राप्त हैं। इसके बाद केरल में नये चुनाव के आदेश दिये गए। इन्दिरा फिर केरल गई और उसने सारे राज्य का चुनाव-दौरा किया। इस बार प्रदेश कांग्रेस की भारी बहुमत से जीत हुई। इससे इन्दिरा की प्रतिष्ठा बहुत बड गई।

अब बम्बई राज्य की समस्याएं इन्दिरा के सामने मुह-बाये आ खड़ी हुई। १९५६ मे भारतीय गणतंत्र के सभी प्रदेशो का, मुख्यतः भाषा के आधार पर पुनर्गठन किया गया। बम्बई और पंजाब को छोड़कर जितने भी द्विभाषी राज्य थे, उन्हे अधिसख्य जनता को भाषा के आधार पर नये सिरे से संगठित कर दिया गया था। बम्बई मे मराठी भाषा बोलने वाले महाराष्ट्रीय और गुजराती भाषा बोलने वाले गुजराती लोग थे, और उन्होंने माग की कि गुजराती-भाषी और मराठी-भाषी राज्य अलग-अलग बना दिये जायं। इसके लिए गुजरात और महाराष्ट्र में दगे भी हुए।

इन्दिरा सर्वेक्षण के लिए स्वयं महाराष्ट्र गई। लोग क्या चाहते हैं, यह उसने पता लगाया और लौट कर केन्द्र के समक्ष अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। पहले वह महाराष्ट्र-क्षेत्र के लोक-सभा-सदस्यों से मिली और फिर अपने द्वारा

सकलित तथ्यो की जांच-पड़ताल के लिए एक जांच-समिति नियुक्त की। समिति ने यह सिफारिश की कि बम्बई राज्य को दो नये राज्यो मे विभक्त कर देना चाहिए। एक महाराष्ट्र, जिसकी राजधानी बम्बई रहे, और दूसरा गुजरात, जिसकी राजधानी अहमदाबाद हो। कार्यकारिणी ने इस सिफारिश को स्वीकार कर लिया और एक मई, १९६० को बाकायदा दोनों राज्य स्थापित किये गए।

इस कष्टप्रद यात्रा के दौरान इन्दिरा की तबीयत ठीक नही थी और वह दिल्ली लौटी तो इलाज जरूरी हो गया। निदान और चिकित्सा के लिए बम्बई के दो प्रमुख डाक्टर दिल्ली भेजे गए। परीक्षण के बाद उन्होने गुर्दे की बीमारी बताई और फौरन ऑपरेशन करने की सलाह दी।

कांग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से इन्दिरा का कार्यकाल समाप्त होने को आ रहा था। कार्यकारिणी समिति का आग्रह था कि वह फिर से अध्यक्ष-पद के चुनाव में खडी हो। इन्दिरा ने इन्कार कर दिया। तब फरवरी १९६० मे कामराज नादर कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए।

१८

"नेहरू के बाद कौन ?"

•

नवम्बर १९६१ में जवाहर अपनी दूसरी राजकीय यात्रा पर अमेरिका गये तो इन्दिरा फिर उनके साथ गई। इस वार उन्हें राष्ट्रपति जान एफ० केनेडी ने आमंत्रित किया था। केनेडी की बुद्धिमत्ता और राजनैतिक ज्ञान के जवाहर बड़े प्रशंसक। दोनों में कई बातें समान थी : दोनो ही ऊर्जस्वी और सभी को सक्रिय बनाये रखने वाले कर्मवीर थे; दोनो ही मनुष्य की स्वतंत्रता के रक्षक थे; दोनों उत्तरदायित्वो का स्वागत करते थे; दोनों ही उपलब्धियों के प्रति सचेष्ट थे; और दोनो ही लोगों को आकर्षित और प्रभावित करने वाले दैवी गुण से सम्पन्न थे। अमेरिका की प्रथम महिला जैकेलिन और कैरोलीन तथा जान जूनियर (राष्ट्रपति केनेडी की पत्नी और दो बच्चों) से मिलकर इन्दिरा और जवाहर को वड़ी प्रसन्नता हुई। राष्ट्रपति केनेडी ने भारत के सम्बन्ध मे अपनी गहन रुचि का परिचय दिया और जवाहर ने, जिस नवस्वतंत्र देश का संविधान १९४९ मे अमेरिकी संविधान के आदर्शों पर बनाया गया था, उसकी प्रगति स्वयं अपनी आंखों देखने के

लिए केनेडी-दम्पती को भारत आने का निमत्रण दिया। लेकिन १९६२ के प्रारम्भ मे जैकेलीन अकेली ही भारत आई; अत्यावश्यक कार्यों से राष्ट्रपति केनेडी के लिए वाशिंगटन छोड़ना सम्भव न हो सका।

उस अवसर पर जवाहर ने मुझे खास तौर पर दिल्ली में उपस्थित रहने के लिए कहा। वे बोले, "मैं और इन्दु उनके मेहमान रह चुके हैं, मगर तुम उन्हे हमसे ज्यादा जानती हो और इसलिए हमारा खयाल है कि उन्हे (जैक्लीन को) तुम्हारे रहने से बेगानापन नही लगेगा।" राजा और मैं १९५६ में सिनेटर शेरमन कूपर (जो भारत मे अमेरिका के राजदूत रह चुके थे) के घर वाशिंगटन मे उनकी पत्नी लोरैन के साथ केनेडी-दम्पती से मिले थे। कूपर-दम्पती ने हमारे सम्मान में एक भोज दिया था, जिसमें दूसरे मेहमानों के साथ सिनेटर केनेडी और उनकी धर्मपत्नी भी आये थे। दोनो ही सिनेटर (कूपर और केनेडी) अपनी सरकार को इस बात पर राजी करने के लिए प्रयत्नशील थे कि भारत को वार्षिक आवंटन के स्थान पर दीर्घकालिक सहायता दी जानी चाहिए। उस भोज मे सिनेटर केनेडी और राजा के बीच भारत के आर्थिक विकास और अमेरिकी मदद को लेकर लम्बी चर्चा हुई थी।

भारत आने पर जैकेलीन केनेडी और उनके सुरक्षा-अधिकारियो तथा सचिवालय के कर्मचारियों का पूरा अमला मेरे भाई का मेहमान बनकर उन्ही के साथ प्रधानमंत्री-निवास में ठहरा। हमारे देशवासियो ने केनेडी-दम्पती के बारे मे काफी सुन रखा था और यहां वालो के लिए जान केनेडी एक

देखने और उनके प्रति स्नेह और सम्मान प्रदर्शित करने के लिए लोगो की भीड़ लग जाया करती थी। मुझे उनसे और उनकी बहन राजकुमारी ली राजिविल से दुबारा भेंट कर बड़ी प्रसन्नता हुई। वह हमारी अतीव प्रिय अतिथि थी।

श्रीमती केनेडी की यात्रा समाप्त होते ही इन्दिरा अमेरिका की भाषण-यात्रा पर रवाना हो गई। मैंने बम्बई लौटने की योजना बनाई, लेकिन मेहमानों से भरा-पूरा घर एकदम इतना खाली और शान्त हो गया था कि जवाहर को अकेला छोड़ कर जाने को मेरा जी न हुआ। उनकी तबीयत भी अच्छी नही थी, मगर सवेरे से आधी रात तक बराबर अपने काम मे जुटे रहते थे। एक दिन दोपहर के भोजन के बाद वह अपने सोने के कमरे में चले गए। मैं पीछे-पीछे गई तो वह बिस्तर पर लेटने जा रहे थे। मुझे यह बात असामान्य लगी। मैंने बुखार नापा, डाक्टर को बुला भेजा और उनके सचिव से कहकर उस दिन के सारे कार्यक्रम रद्द करवा दिये। शाम को करीब छः बजे वह हड़बड़ाकर जागे और नाराज होने लगे कि जगाया क्यो नही।

उनकी बीमारी बहुत गम्भीर थी, इसलिए मैं काफी चिन्तित हो गई और बराबर उनके सिरहाने बैठी रही। दो डाक्टर बराबर घर पर रहते और बुलाते ही हाज़िर हो जाते, लेकिन उनकी दवाओं और पथ्य से कोई लाभ नही हो रहा था। जवाहर की कमजोरी बराबर बढती ही गई। यह देख मेरा माथा ठनका और मैंने घबराकर इन्दिरा को तार कर दिया कि फौरन घर लौट आये। लेकिन डाक्टर थे कि इस आशय के तार भेज कर उसे आश्वस्त करते रहे कि तुम्हारे

पिताजी के स्वास्थ्य मे बराबर सुधार हो रहा है।

मैं कलकत्ता से अपने पारिवारिक चिकित्सक डाक्टर विधानचन्द्र राय (जो पश्चिमी बंगाल के मुख्य मत्री भी थे) को बुलाना चाहती थी। लेकिन जब भी कलकत्ता फोन लगाना चाहा, लाइन बराबर खराब मिली। अन्त मे मैने सहायता के लिए लालबहादुर शास्त्री को बुला भेजा। वह आये, ध्यान से मेरी शिकायते सुनी और जरूरत से ज्यादा चिन्ता करने के लिए मीठी झिडकी भी दी। मगर चिन्ता उन्हे भी जरूर हुई और उन्होने डाक्टर राय को फोन पर तुरंत दिल्ली आने के लिए कहा।

दूसरे दिन सवेरे मैं डाक्टर राय को लेने हवाई अड्डे पर गई। दूसरे डाक्टरों के साथ उनके परामर्श के पहले ही मैं उनसे मिलना और अपनी आशकाएं बता देना चाहती थी। उन्होने बडे स्नेह से मेरी पीठ थपथपाई, दिलासा दिया और कहा कि ज्यादा चिन्ता करना अच्छा नही।

"कहिए, बुढऊ !" जवाहर के कमरे मे प्रवेश करते हुए उन्होने अपनी बुलन्द आवाज मे कहा।

जवाहर ने बीमारी से कमजोर हो रही आवाज मे जवाब दिया, "बूढा किसे कह रहे हैं जनाब, जब खुद ही मुझसे उम्र में दस बरस बडे है ? क्या आपको बेट्टी ने बुला भेजा है ?"

रोगी की परीक्षा के बाद डाक्टर राय परिचर्या करने-वाले चिकित्सको के कमरे में चले गए। वहां उन्होने बुखार के चार्ट और नुस्खो का अध्ययन किया। फिर डाक्टरो से बोले कि आप लोगो का निदान और उपचार दोनो ही गलत हैं। उन्होने सारी दवाए फिकवा दी और नये सिरे से एकदम

भिन्न दवा-दारू और पथ्य-पानी की व्यवस्था की। अपनी उपचारविधि का परिणाम देखने के लिए वे तीन दिन दिल्ली में ही रहे।

नये इलाज से बहुत फ़ायदा हुआ और जवाहर धीरे-धीरे अच्छे हो गए। इन्दिरा के आ जाने पर मैं बम्बई लौट आई। विदा के समय जवाहर ने "थैंक यू डार्लिंग," (प्यारी बहन, तुम्हारा एहसानमन्द हूं) कहकर गले लगाया तो मेरे आंसुओं का बांध टूट गया।

जवाहर फिर अपने काम पर जुट गए, लेकिन अब पहले से कम ही काम कर पाते थे। वह बहुत दुबले लगते और पहले-जैसी शक्ति और जोश भी नही रह गया था। कांग्रेसी नेताओ ने यहां तक सोचना शुरू कर दिया कि इस हालत मे वह देश के प्रधानमंत्री पद का भार कहां तक सभाल सकते हैं! उनके उत्तराधिकारी के बारे मे तरह-तरह की अटकलें भिड़ाई जाने लगी। नेताओं के लिए सिडीकेट की बात भी उठी और पूछा जाने लगा कि क्या क्ष, त्र और ज्ञ सरकार पर अधिकार कर लेंगे? उधर अंग्रेज़ और अमेरिकी पत्रकार शोर मचाने और इस बात को उछालने लगे कि "नेहरू के बाद कौन?" और "नेहरू के बाद क्या?"

एक भारतीय पत्रकार ने तो रूपक ही बाध दिया, कि "बरगद के तले कुछ भी नही उगता।" उसका अभिप्राय यह था कि जवाहर के उत्तुग व्यक्तित्व के आगे अखिल भारतीय स्तर का दूसरा कोई नेता ठीक उसी तरह नही उभर पाता जिस प्रकार बरगद के विशाल वृक्ष के नीचे कोई पेड़, पौधा या घास तक नही पनप सकती।

कुछ लोगो ने तो यह भी सुझाव दिया कि जवाहर को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर देना चाहिए। जब उनसे पूछा गया कि वह किसको नामजद करना चाहेगे, तो उन्होंने जवाब दिया कि जनता स्वयं जनवादी तरीके से अपने नेता का चुनाव कर लेगी। यह पूछने पर कि क्या वह इन्दिरा को इस पद के लिए तैयार कर रहे हैं, उन्होने साफ शब्दों में इन्कार कर दिया। इस बारे मे एक भेंटकर्ता से उन्होने कहा :

"मैं उसे इस तरह के काम के लिए बिलकुल ही तैयार नही कर रहा हूं। लेकिन इसका यह मतलब भी नही कि उसे मेरे बाद जिम्मेदारी का कोई पद दिया ही नही जाना चाहिए। यह तो सभी जानते है कि कांग्रेस का अध्यक्ष बनने मे न तो मैंने उसको तैयार किया और न उसकी मदद ही की; फिर भी वह अध्यक्ष बनी और उन लोगों का भी, जो मुझे और मेरी नीतियों को पसन्द नही करते, कहना है कि वह बहुत अच्छी अध्यक्ष थी। कभी-कभी वह अपना रास्ता अख्तियार करती और अपने ही ढग से सोचती, जो मेरे सोचने के तरीके के बिलकुल खिलाफ होता, और उसका ऐसा कहना सही भी था, लेकिन जिस मुद्दे पर मैं जोर देना चाहता हूं वह यह कि उस ऊंचे पद के लिए, जो हमारे मुल्क मे शायद सबसे ऊंचा पद है, न तो मैंने उसे चुना और न तैयार ही किया। लोगों ने उसे चुना। काग्रेस ने उसको चुना।...सच तो यह है कि मै कुछ समय तक मन-ही-मन इस विचार का (उसके चुने जाने का) विरोध करता रहा, मगर फिर भी वह चुन ली गई और तब हमने, बाप और बेटी की तरह नही, बल्कि राजनीति के दो सामान्य सह-कार्यकर्ताओ की तरह साथ-साथ काम

किया। कुछ बातो मे हम एकमत थे तो कुछ बातों मे हमारा भिन्न मत भी होता था। इन्दिरा के अपने ही स्वतत्र और दृढ़ विचार हैं जोकि होने भी चाहिए।"

एक और समय उन्होने कहा, "नेतृत्व वशपरम्परागत हो, इस तरह के विचार को बढावा देने की बात मैं तो कभी सोच भी नही सकता। इस तरह का खयाल पूरी तरह गैर-जनवादी और अवांछनीय है।"

और जब जवाहर ने लालबहादुर शास्त्री को अपने मंत्रि-मंडल मे बिना विभाग के केबिनेट-स्तर के मंत्री के रूप में लिया तो सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ। शास्त्रीजी कुल जमा पांच फुट के मुख्तसर आदमी थे—ज़रा भी रौबीला डील-डौल नही था। बहुत से लोगो का यह खयाल था कि प्रधानमंत्री पद के लिए आवश्यक गुण उनमें हैं ही नही, लेकिन उस सीधे-सादे और निरीह आदमी की विशेषताओ को जवाहर खूब जानते थे।

१६५६ मे तिब्बत पर चीनी आक्रमण के बाद भारत के पश्चिमोत्तर सीमान्त के दूरस्थ स्थानों में चीनी घुसपैठ तथा चीनी और भारतीय सैनिको मे मामूली झड़पो की वारदातें बराबर बढती जा रही थीं। फिर भी जवाहर चीनियों के मित्रता के वादे पर लगातार विश्वास करते रहे। अक्तूबर १६६२ में राजा और मैं शिमला में छुट्टियां बिताने के लिए गये हुए थे। हमारा विचार तिब्बत के सीमावर्ती पहाडो तक जाने का था, लेकिन हमारे पुराने मित्र और पश्चिमी सैनिक कमान के कमाण्डर जनरल दौलतसिह ने हमे उधर जाने की अनुमति नही दी। एक दिन अपने यहां बुलाकर उन्होंने हमसे

कहा कि चीन ने लद्दाख पर हमला बोल दिया है और तमाम सड़के सैनिक सामग्री ले जाने वाले फौजी कान्वाय से पटी हुई हैं। हम जवाहर के पास फौरन दिल्ली लौट आये ।

अक्तूबर और नवम्बर मे बीस हजार चीनी सैनिक सेला दर्रे के रास्ते भारतीय सीमा मे घुस आये। दुर्गम हिमालय का यह दर्रा अभेद्य माना जाता था। जो भारतीय सेना जनरल कौल की कमान में इस मोर्चे पर तैनात थी उसके पांव उखड़ गए। स्वयं जनरल कौल जाने कहां गायब हो गए और नेफा (पूर्वोत्तर सीमा-प्रदेश) का पूरा इलाका हमलावरो की ज़द मे आ गया। चीनियो ने भारत के करीब चौदह हजार वर्ग-मील क्षेत्र पर कब्जा कर लिया।

भारत के लिए यह सैनिक पराजय एक घोर विपत्ति थी। सबसे भारी आघात लगा था जवाहर को। चीनियों के इस विश्वासघात ने उनकी आंखे खोल दी। उन्होने बड़ी तीव्रता से इस बात को अनुभव किया कि चीनियो पर विश्वास करके भारतीय जनता को उन्होने गुमराह किया है। ससद् के समक्ष भाषण करते समय उन्होने स्वयं अपने को भी नही बख्शा, लेकिन साथ ही संकट की घड़ी मे समूचे राष्ट्र को एकताबद्ध होकर शत्रु का मुकावला करने के लिए अनुप्राणित करने के अपने कर्त्तव्य को भी न भूले। रक्षा-मंत्री कृष्ण मेनन को हटा दिया गया। जनरल कौल के हाथ मे उस मोर्चे की कमान सौपने के लिए वही जिम्मेदार थे। यशवन्त-राव चव्हाण मेनन की जगह रक्षा-मत्री वनाये गए। चव्हाण ने कार्य-भार सभालते ही भारतीय सेना को शक्तिशाली और अधुनातन बनाने के लिए कई आवश्यक परिवर्तन किये।

जवाहर को उस सकट में अमेरिका और राष्ट्रमंडलीय देशों का समर्थन और सैनिक सहायता प्राप्त हुई।

इन्दिरा की अध्यक्षता मे एक नागरिक सुरक्षा समिति बनी और उसी तरह की स्थानीय सुरक्षा समितियां सारे देश मे बनाई गई। ये समितियां सुरक्षा-कार्य में जनता का सहयोग-समर्थन प्राप्त करने में लग गई। इन्दिरा सकट-ग्रस्त क्षेत्रो मे गई, खासकर तेजपुर, जहा भारतीय सेना के हट जाने से लोग पूरी तरह डरे हुए थे और जहालपुर, जहां दगो ने कहर ढा रखा था। उसके जाने से लोगो का मनोबल बढ़ा और अपनी सरकार के प्रति उनका खोया हुआ विश्वास पुन. लौट आया। वह नेफा और लद्दाख के ऊंचे बर्फीले पहाड़ों में तैनात सेना के जवानों के लिए गरम कपड़े, खाद्य सामग्री, दवाइयां आदि जरूरी चीजे इकठ्ठा करके भेजने के काम में जुट गई।

पता नही क्यों, चीनियों ने अचानक एक पक्षीय युद्ध-विराम की घोषणा कर सारे विजित क्षेत्र से अपनी सेना हटा ली। राजनैतिक और सामरिक विशेषज्ञो का अनुमान है कि चीन ने भारत मे व्यापक पैमाने पर अराजकता फैलने की आशा की होगी, जिससे भारत की कम्युनिस्ट पार्टी सत्तारूढ हो सके, लेकिन अपनी इस आशा को फलीभूत न होते देख चीन ने आगे बढने के बजाय पीछे हटना ही ठीक समझा। भारत के लिए वह शान्ति बहुत लज्जाजनक और भारी पड़ी।

एशियाई देशो की एकता और मैत्री में आस्था खंडित हो जाने और देश के अन्दर नितनूतन समस्याओं के उठते जाने से जवाहर का स्वास्थ्य चौपट हो गया। पुरानी उमंग, उल्लास और उत्साह बिदा हो गए। बुढ़ापा उन पर हावी होने लगा।

१९

भारतीय जनता के प्यारे जवाहर नहीं रहे!

•

आलोचनाओं से उत्तेजित होकर जवाहर ने कांग्रेस के आगामी अधिवेशन में अपनी आर्थिक योजना-सम्बन्धी नीतियों के बचाव का पक्का फैसला कर लिया। अधिवेशन उड़ीसा के भुवनेश्वर मे १९६४ के जनवरी महीने के प्रारम्भ मे होने जा रहा था। वहां देने के लिए उन्होने जो भाषण तैयार किया था उसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। पूरा भाषण पढ़ने के बाद, समाप्ति के पहले, जैसे ही वे सारांश पर आये, कि उन्हे अचानक लकवा हो गया।

बम्बई मे रेडियो पर खबर मिलते ही मैं उड़ीसा जाने के लिए व्यग्र हो उठी, लेकिन इतने में इन्दिरा का फोन आ गया कि उन्हें दिल्ली ले जा रहे हैं, हम वही आये।

महीना बीतते-बीतते जवाहर के स्वास्थ्य में काफी सुधार हो गया। उनमें शक्ति का अखूट भण्डार था और साहस की भी कमी न थी, अच्छा होते देर न लगी। लेकिन जल्दी थक जाते थे- और चलने मे बायां पाव थोडा घिसटने लगा था। अप्रैल का महीना लगते-लगते वे भाषण भी देने लगे। वे और

इन्दिरा बम्बई मे कांग्रेस पार्टी की मई की बैठक में भाग लेने के लिए आये थे। १८ मई को, बैठक खत्म होने पर, मैं उनके साथ विमान तक गई। वहां उन्हें बिदा करने के लिए काफी संख्या मे लोग आ जुटे थे। विमान उड़ान भरने की तैयारियां कर ही रहा था कि मैं अपने भाई से गले मिलने और बिदा करने के लिए सीढ़ियो पर दौड़ी गई। अपने भाई से वही मेरा अन्तिम मिलन था।

२७ मई को सवेरे नान को और मुझे दिल्ली बुलाया गया मैंने इन्दिरा को फोन किया। दु.ख से बोझिल, बुझे हुए मन्द स्वर में उनसे कहा—"पापू का कोई भरोसा नही, आप जल्दी आइये !" हमें ले जाने के लिए एक सरकारी विमान भेजा गया था। रास्ते में, विमान मे ही खबर आई कि वे नही रहे !

तीनमूर्ति-भवन का लोहे का मजबूत फाटक बन्द था और बाहर हजारों की विषण्ण भीड़ अपने प्रिय नेता के अन्तिम दर्शनार्थ भीतर जाने के लिए धक्का-मुक्की कर रही थी। अन्दर सारा मकान केन्द्रीय मंत्रियों, संसद् एवं कांग्रेस दल के सदस्यों, कूटनीतिज्ञों तथा रिश्तेदारों से भरा हुआ था। हम लोग जब उस कमरे में पहुंचे जहां जवाहर को रखा गया था तो इन्दिरा अपने पिता के पास फर्श पर बुत की तरह बैठी थी। शव नीचे ले आया गया और राजकीय सम्मान के साथ रख दिया गया तो वह उसके पास खड़ी हो गई और सारी रात मूरत की तरह खड़ी रही—अन्तिम सम्मान प्रकट करने वाले हजारों लोगों की ओर एक बार भी उसका ध्यान न गया, बिना हिले-डुले, चुपचाप खड़ी ही रही। हम सबसे

अधिक हिम्मत वाली होते हुए भी दूसरे दिन सवेरे उसकी रुलाई फूट पडी, क्योकि दिन के उजाले ने अब उसे उसकी अपूरणीय क्षति का पूरा भान करा दिया था। मैं उसके पीछे-पीछे उसके कमरे मे गई, जहां एकान्त में वह जी भर कर रो रही थी। लेकिन जल्दी ही उसने अपने पर काबू पा लिया और मुझे उन लोगो की देख-भाल के लिए जाने को कहा जो दूर-दूर से उसके प्रिय पिता का अन्तिम दर्शन करने और सम्मान प्रकट करने के लिए आये थे। अपने घोर दुःख में भी वह घर-आये मेहमानों के चाय-नाश्ते के प्रबन्ध की बात न भूली। फिर उसने जल्दी में मुह धोया और पुनः अपने पिता की बगल मे जा खड़ी हुई।

अपने पिता के अन्तिम सस्कारो का प्रबन्ध इन्दिरा ने लालबहादुर शास्त्री की सलाह और सहायता से किया। वैसे स्वय जवाहर अपनी वसीयत मे लिख गये थे कि उनका दाह-संस्कार किया जाय :

"जब मैं मर जाऊं तो मेरे शव को जला देना। ··उसमें से एक मुट्ठी राख गगा में प्रवाहित कर देना

"बची हुई राख के बारे मे मेरी इच्छा है कि उसे हवाई जहाज से ऊपर ले जाकर जिन खेतों मे भारत के किसान अपना पसीना बहाते हैं उनमे छिड़क दिया जाय ताकि वह भारत की धूल-मिट्टी मे घुल-मिलकर भारत से इस तरह एकाकार हो जाय कि उसे अलग से पहचाना न जा सके।"

शवयात्रा तीनमूर्ति-भवन से शान्ति-वन के लिए रवाना हुई। जिस सैनिक गाड़ी पर जवाहर के भौतिक शरीर को रखा गया था, उसे सेना के चुने हुए जवान खीच रहे थे।

सैनिकों, सिपाहियों और शोकमग्न जनता की कतारों के बीच से अन्तिम जुलूस धीरे-धीरे आगे बढ़ा। लोग रो रहे थे, शव-वाहिका पर फूल बरसा रहे थे और अपने प्यारे जवाहर का जय-जयकार करते जा रहे थे। बीच-बीच मे वे इन्दिरा का नाम भी लेते थे, जो एक खुली मोटर मे अपने बेटे सजय के साथ चल रही थी (बड़ा बेटा राजीव कैम्ब्रिज मे था, इस लिए वह दूसरे दिन पहुच पाया)। इस तरह लोग इन्दिरा से सहानुभूति प्रकट कर उसका दुःख बंटा रहे थे। शान्ति-वन की श्मशान भूमि में अर्थी को परिवार के सदस्यो, अधिकारियो कूटनीतिज्ञो और घनिष्ठ मित्रो ने अन्तिम प्रणाम किये, अंतिम बार उस पर फूल बरसाये गए और फिर चिता प्रज्ज्वलित की गई। भस्मी और अस्थियां (फूल) चुनकर तांबे के एक बड़े और कई छोटे कलशों मे भरी गई।

दाह-कार्य के तेरहवे दिन गंगा में विसर्जन करने के लिए भस्मी के बड़े कलश को स्पेशल ट्रेन से इलाहाबाद ले चले। भारत के हृदय-देश से होकर जाने वाले पांचसौ मील लम्बे रेल-मार्ग की यात्रा मे पूरे चौबीस घन्टे लग गए। रास्ते मे जगह-जगह ट्रेन को रुकना या अपनी चाल धीमी करना पडता था। रेलमार्ग के दोनो ओर, चाहे बस्ती हो या मैदान, सर्वत्र लाखो लोग कतारे बनाये अपने प्रिय नेता के भस्मी-पात्र की एक झलक पाने के लिए खडे हुए थे। कलश को अवसर के उप-युक्त सुन्दर ढग से सजाये हुए एक खुले डिब्बे मे प्रतिष्ठित किया गया था और सामने इन्दिरा हाथ जोड़े फर्श पर बैठी थी। लोगों को इन्दिरा का दु ख अपना ही दु.ख लग रहा था, क्योकि जवाहर जितने इन्दिरा के उतने ही उनके अपने भी थे।

लोगो की वे मीलो-लम्बी कतारे जवाहर के प्रति भारतीय जनता की गहन प्रेम की परिचायक थी। अपने जीवन-काल मे स्वय जवाहर लोगो के इस प्रेम को आख की पुतली से भी अधिक मानते और सराहते रहे थे, जैसा कि उनकी वसीयत के आरम्भिक अंश से प्रकट होता है · "मुझे भारत के लोगो से इतना ज्यादा स्नेह और प्यार मिला है कि मैं किसी भी तरह, कुछ भी करके उसके एक छोटे-से अश को भी अदा नहीं कर सकता, और सच मे प्रेम-जैसी कीमती चीज की कोई अदायगी कभी हो भी नही सकती।"[1]

इलाहाबाद के लोगो ने अपने समय के उस महान पुरुष को और भी शानदार लेकिन शान्तिपूर्ण ढग से अन्तिम श्रद्धांजलि समर्पित की। जब हम कलश लेकर गगा की ओर चले तो ठेठ सडक तक के दोनो ओर ठठ्ठ-के-ठठ्ठ लोगो की भीड़ लगी हुई थी। इन्दिरा, उसके दोनो बेटे, नान और मैं एक नाव मे भस्मी-पात्र को गगा-यमुना के सगम तक ले गये। राजीव और संजय ने अस्थियां गगा मे प्रवाहित की।

दिल्ली लौट कर इन्दिरा जवाहर की भस्मी को पहाड़ो और नालो पर बिखेरने के लिए एक छोटा अस्थिकलश लेकर वायुयान से काश्मीर गई। मैंने और नान ने दिल्ली के आस-पास के खेतो मे उनकी भस्मी को बिखेरा। शेप पात्रों को मत्रिमडल के सदस्य भारत के अन्य भागो की धरती पर बिखेरने के लिए ले गए।

जवाहर की मृत्यु के दिन मत्रिमडल की आपत्कालीन बैठक मे गृहमत्री गुलजारीलाल नन्दा को कार्यवाहक प्रधान मत्री नियुक्त किया गया। बाद के दिनो मे कांग्रेस की कार्य-

कारिणी समिति की बैठकें हुईं। कार्यकारिणी ने कांग्रेस के अध्यक्ष कुमारस्वामी कामराज को नेहरू के उत्तराधिकारी के नाम का सुझाव देने का अधिकार प्रदान किया। कामराज ने अपनी पसन्द—लालबहादुर शास्त्री के नाम पर जोर दिया।

संसद को तीन नामो में से प्रधानमंत्री का चुनाव करना था : मुरारजी देसाई, जिन्होंने अपनी उम्मीदवारी की घोषणा कर दी थी; नन्दा, जो कार्यवाहक प्रधानमंत्री थे; और लालबहादुर शास्त्री, जो बिना विभाग के मंत्री की हैसियत से जवाहर के घनिष्ठ सम्पर्क मे रहकर काम कर चुके थे। इन्दिरा, पितृशोक के कारण, प्रधानमंत्री पद के भार को उठाने के लिए राज़ी नही हुई। २ जून को शास्त्रीजी सर्व सम्मति से कांग्रेस दल के नेता चुने गए और उन्हे सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया गया। एक सप्ताह के बाद उन्होने प्रधान मंत्री पद की शपथ ग्रहण की।

शास्त्रीजी इन्दिरा को अपने मन्त्रिमडल मे विदेश-विभाग सौपना चाहते थे। लेकिन उसने मना कर दिया। क्योकि वह पूरा समय अपने पिता के स्मारक की स्थापना के काम मे लगाना चाहती थी। लेकिन शास्त्रीजी हार मानने वाले जीव नही थे। उन्होने दूसरे विभाग देना चाहे। उनका तर्क था कि नेहरू की बेटी के होने से उनके मन्त्रिमडल की प्रतिष्ठा बढेगी और सरकार के आन्तरिक एव वैदेशिक मामलो से इन्दिरा के अच्छी तरह परिचित होने के कारण स्वय उनके लिए काम करना आसान होगा। अन्त मे इन्दिरा को राजी होना ही पड़ा—उसने सूचना और प्रसारण के अपेक्षाकृत छोटे विभाग का मंत्री बनना स्वीकार कर लिया।

२०

मंत्रिमंडल में

•

केन्द्र में मंत्री बनने के बाद इन्दिरा को एक सरकारी मकान दिया गया। अब वह १, सफदरजंग रोड मे रहने लगी, जो तीनमूर्ति-भवन से काफी छोटा था। इस नये मकान में सोने के केवल चार कमरे थे, जिनमे से दो दफ्तर और मुलाकातियों के बैठने के काम के लिए दे देने पडे। मकान के साथ खुली हुई जमीन भी बहुत कम थी—इतनी कम कि जो लोग सवेरे-सवेरे मिलने के लिए आ जाते, वे भी नहीं समा पाते थे। लोगो का सवेरे-सवेरे आना उस प्रथा का ही अविच्छिन्न क्रम था, जो जवाहर के समय शुरू हुई थी और जब लोग, काम हो या न भी हो, सिर्फ उनके दर्शनों के लिए पहुंच जाया करते थे। इस परिपाटी को बनाये रखकर इन्दिरा लोगों से मिलती, उनकी शिकायतें सुनती और अक्सर उनकी कठिनाइयां दूर करने के उपाय करती थी। जवाहर की ही तरह वह लोगो से मिलकर और उनसे बाते करके प्रसन्न होती, प्रेरणा ग्रहण करती और शक्ति प्राप्त करती थी। बदले में लोग भी उसे अपना स्नेह, प्यार और श्रद्धा देते थे।

भारत के संविधान के अनुसार केन्द्रीय मंत्री को संसद् के दोनो मे से किसी भी एक सदन का सदस्य होना चाहिए। लोक सभा के सदस्यो का चुनाव होता है। पिता को मरे थोडे ही दिन हुए थे, इसलिए इन्दिरा चुनाव के हगामे को ओढने की मनःस्थिति मे नही थी। उसने राज्यसभा का सदस्य बनना ज्यादा उपयुक्त समझा और वह नामजद कर दी गई। और इस तरह संसदीय प्रणाली तथा सूचना एवं प्रसारण-मंत्रालय का काम सीखने का अवसर उसे मिला।

भारत-जैसे विशाल देश में, जहां, व्यापक रूप से निरक्षरता है और सचार-साधनों की बेहद कमी, रेडियो और टेलीविजन घर-बैठे ज्ञान प्राप्त कराने के काम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। लेकिन भारतीय कार्यक्रम स्तर और समय, दोनो ही दृष्टियो से उन्नत देशों की तुलना में बहुत पिछडे हुए थे। प्रसारणों को बहुत कम लोग सुन पाते थे, क्योंकि महगा होने के कारण औसत आदमी रेडियो खरीद नही सकता था।

इन्दिरा ने ज्यादा लोगो तक रेडियो-कार्यक्रमों को पहुचाने का उपाय सोचा। "भारत मे बने बहुत महंगे रेडियो ही सैकडों मील दूर तक के स्टेशन पकड़ सकते थे, इसलिए एक से अधिक स्टेशनो को पकड़नेवाले शार्टवेव ग्राही सस्ते ट्रांजिस्टर रेडियो बनाने" के उद्योगों को उसने बढ़ावा दिया। और "जो रेडियो-प्रसारण अभी तक सरकार के एकछत्र अधिकार मे था और शासक दल का ही राग अलापा करता था, उसे उसने विरोधी दलों के सदस्यो और स्वतंत्र विचार के वक्ताओं के लिए भी सुलभ कर दिया।"[1]

नई दिल्ली में एक छोटा-सा टेलीविजन-केन्द्र भी था, लेकिन उसके कार्यक्रम उच्च कोटि के नही होते थे। परिवार-नियोजन-सम्बन्धी सामाजिक महत्त्व के एक ही कार्यक्रम द्वारा इन्दिरा ने उसे लोकरुचि-सम्पन्न बना दिया। उस कार्यक्रम मे निरोध की कृत्रिम पद्धतियों को भी समझाया गया था। वह कार्यक्रम इस बात का सूचक था कि इन्दिरा भारत की बढ़ती हुई जनसख्या के बारे मे सजग और उसे रोकने के लिए भी सचेष्ट थी।

उसके मत्रालय के अन्तर्गत सिनेमा, नाटक और नृत्यकला से सम्बन्धित कुछ विशिष्ट प्रशासकीय कार्य भी थे। इन्दिरा ने इन क्षेत्रो मे आधुनिक विधाओ को प्रोत्साहित किया, अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म-महोत्सव शुरू करवाया और नाट्य एव नृत्य दलों को सरकारी सहायता प्रदान की। प्रगतिशील (अति नैतिकतावादी नही) दृष्टिकोण वाले स्त्री-पुरुषों को फिल्म सेन्सर बोर्ड मे नियुक्त कर उसने उसे एक नया रूप ही दे दिया।

इन्दिरा कई विदेशी नेताओ से मिल चुकी थी और अनेक महत्त्वपूर्ण राजनयिक चर्चाओ मे उपस्थित रह चुकी थी, इसलिए मत्रि-परिषद मे उसका स्थान काफी ऊंचा था। भारत सरकार के प्रतिनिधि की हैसियत से एक मंत्री के रूप में मास्को के निमत्रण पर सोवियत सघ की यात्रा उसका पहला महत्त्वपूर्ण वैदेशिक कार्य था। अब वहा निकिता ख्रुश्चेव के स्थान पर अलेक्सी कोसीजिन और ल्योनिद ब्रेजनेव शासनारूढ थे। सवाल यह था कि क्या भारत के प्रति रूसी नीति में परिवर्तन होगा? इन्दिरा नये सोवियत नेताओ से यह

आश्वासन लेकर दिल्ली लौटी कि रूस भारत-सोवियत मैत्री की कद्र करता है और भारत को दी जानेवाली आर्थिक और सैनिक सहायता जारी रहेगी।

इसके बाद वह नेहरू-स्मारक प्रदर्शनी के उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता के लिए न्यूयार्क गई। अमेरिका के उस समय के उपराष्ट्रपति ह्यूबर्ट हम्फरी ने प्रदर्शनी का उद्घाटन किया था। घटनाओं और जीवनी-सम्बन्धी टिप्पणियों-सहित तिथि-क्रमानुसार लगाये गए चित्रों के द्वारा जवाहर के जीवन और कृतित्व पर उस प्रदर्शनी में प्रकाश डाला गया था।

जैकेलीन कैनेडी भी उद्घाटन-समारोह में आई थीं। पति की हत्या के बाद किसी भी सार्वजनिक समारोह में उपस्थित होने का वह उनका पहला ही अवसर था, जो भारत के प्रति उनके मैत्रीभाव का ही प्रमाण था। उस समय की एक छोटी-सी घटना उनकी शालीनता और महनीयता को उजागर करती है: मंच की सीढ़ियां चढ़ते हुए वहां तैनात एक भारतीय रक्षक का अभिवादन करने के लिए वे उससे हाथ मिलाने के लिए पहुंच गई थीं। वह रक्षक भारत के राष्ट्रपति के कर्मचारीवर्ग में से था। अपने गणवेश और नीली पगडी मे सावधान मुद्रा मे खड़ा वह लम्बा और सुदर्शन युवक गजब का खूबसूरत लग रहा था। सीढ़ियां चढते हुए श्रीमती केनेडी ने उसे पहचान लिया। भारत-यात्रा के दौरान वही उनका द्वार-रक्षक था। वे हाथ मिलाने के लिए उसके पास गई, परन्तु वह नाक की सीध मे देखता हुआ चट्टान की तरह खड़ा रहा। वे समझ गई कि यह इस समय पहरे पर है और मुस्कराकर लौट गई। बाद में उस रक्षक ने स्वय जाकर श्रीमती केनेडी

को प्रणाम किया और अपने विवशताजन्य अविनय के लिए क्षमा मागी।

इन्दिरा का अधिकांश समय अब भी समाज-कल्याण के काम मे जाता था। इस क्षेत्र में सरकार की कमजोरियों और गलतियो को उसने मुक्त मन से स्वीकार किया है। एक लेख में उसने कहा, "सरकारी कार्यक्रम का फैलाव तो जरूर होता जाता है, मगर हमेशा उतनी तरतीब से नही जितना कि होना चाहिए। आम तौर पर काम ऐसे लोगों को सौप दिया जाता है जिनमें न तो सहानुभूति है और न समझ। कानून तो बहुत-से बना दिये गए हैं, लेकिन क्या हम ईमानदारी से कह सकते हैं कि उनका पालन किया जाता है।"[२]

महीनो से पाकिस्तान भारत मे घुसपैठिये भेज रहा था, जिनका काम अपने मालिकों के इशारो पर, पुलों को उड़ाना और सचार-व्यवस्था को ध्वस करना था। पाकिस्तान को उम्मीद थी कि काश्मीर के लोग विद्रोह कर देगे और हमलावरो के साथ हो जायगे। मगर हुआ इसका उल्टा ही। काश्मीर की सरकार ने हजारो की तादाद मे घुसपैठियो को गिरफ्तार किया या मौत के घाट उतार दिया और वहां की जनता भारत के प्रति वफादार बनी रही।

सितम्बर १९६५ मे पाकिस्तानी सेना ने भारत पर आक्रमण कर दिया। पाकिस्तान के आक्रमण का लक्ष्य जम्मू जिला था, क्योंकि उसका इरादा काश्मीर घाटी और भारत के बीच के एकमात्र सड़क-सम्पर्क को काट देना था। उसने टैको और आधुनिक हथियारो से लैस होकर जोरदार हमला किया और अपनी शक्तिशाली वायु-सेना को भी पजाब होकर नई दिल्ली पहुंचने

का रास्ता खोलने के लिए जग में उतार दिया। पाकिस्तान-रेडियो ने घोषणा की कि तीन दिन मे दिल्ली पर हमारा कब्जा हो जायगा, मगर यह हवाई घोषणा ही रही और वे दिल्ली के करीब भी नही फटकने पाये। भारतीय सेना ने बडी बहादुरी से अपनी धरती की रक्षा की और फिर इतने जोर का हमला किया कि पाकिस्तानी सीमा के पार ठेठ लाहौर तक बढते चले गए, जहां घमासान लड़ाई मे दोनो पक्षो को भारी हानि उठानी पड़ी।

पाकिस्तान के पास नई-से-नई सैनिक सामग्री और शस्त्रास्त्र थे। ये हथियार अमेरिका ने पाकिस्तान को सीटो (दक्षिण-पूर्व एशिया सन्धि संगठन) और सेंटों (मध्य सन्धि सगठन) में शरीक होने के फलस्वरूप रूस और चीन के खिलाफ आत्म-रक्षा के लिए दिये थे। राष्ट्रपति आईजनहावर ने भारत को यह आश्वासन दिया था कि पाकिस्तान को दिये गए अमेरिकी शस्त्रास्त्र भारत के खिलाफ इस्तेमाल नही किये जायगे। जब भारत ने अमेरिका को इस आश्वासन की याद दिलाई तो उसने यह किया कि पाकिस्तान और भारत दोनों को ही दी जाने वाली सैनिक सहायता बन्द कर दी। (भारत को १९६२ के चीनी आक्रमण के समय से, बहुत ही सीमित मात्रा मे, अमेरिकी सैनिक सहायता मिल रही थी।)

हमारी वायुसेना सुसज्जित नही थी और लड़ाकू विमान भी ज्यादा तेज गति वाले नही थे, फिर भी हमारे हवाबाजो ने अपने साधारण विमानों से ही कमाल कर दिखाया—कई हवाई मुठभेड़ों में उन्होने पाकिस्तान के श्रेष्ठ अमेरिकी विमानो को अपने देश के आसमान से मार भगाया। पाकिस्तान ने

यह समझ बैठने की भूल की थी कि १९६२ मे सेला दर्रे से चीनियो के मुकाबले सिर पर पांव रखकर भाग खड़ा होने वाला भारतीय सैनिक निरा मिट्टी का पुतला होगा। भारतीय सेना उस पराजय को भूली नही थी, हार के सबक को उसने गाठ बांध लिया; और फुर्ती से सेना का आधुनिकीकरण कर लिया गया। उस युद्ध का जनरल जे० एन० चौधरी ने बडी योग्यता से सचालन किया।

इन्दिरा युद्ध-क्षेत्र मे जानेवाली पहली केन्द्रीय मत्री थी। वह मोर्चो पर जवानों से और घायलों से अस्पताल में जा-जाकर मिली। जवानों की देश-भक्ति, निष्ठा और कारगुजारियो की उसने दिल खोलकर तारीफ की और उन्हे गौरवान्वित भी किया। देश की रक्षा के लिए लड़ने के कर्त्तव्य पर पूरा ज़ोर देते हुए उसमें उनके व्यक्तिगत योगदान के महत्त्व की बात इन्दिरा ने जवानो के दिलों में बिठा दी।

विभिन्न नगरो के दौरे कर उसने सुरक्षा-प्रयत्नो मे पूरी-पूरी सहायता करने के लिए स्थानीय नागरिक सुरक्षा-समितियो को सक्रिय और प्राणपूरित किया। भारत की रक्षा मे मोर्चे पर प्राण निछावर कर रहे बहादुर जवानो की सहायता के लिए देश की जनता कमर कस कर जुट गई। लेकिन भारत मे युद्ध कोई चाहता नही था। गरीब और भूखी जनता पर युद्ध के क्या आर्थिक दुष्परिणाम होगे, इसे हम बहुत अच्छी तरह जानते थे। पश्चिमी पाकिस्तान मे हमारे लिए लाहौर पर कब्जा करना बहुत आसान था, लेकिन हम पाकिस्तान की एक इच भी ज़मीन हड़पना या अपने अधिकार मे करना नही चाहते थे।

भारत की जीत ने पाकिस्तान को समझौते के लिए बाध्य कर दिया। काश्मीर में उनका सारा हिसाब गड़बड़ा गया था और चीन ने पूरब में दूसरा मोर्चा खोलकर उसकी मदद नही की थी। बड़ी ताकतों ने फौरन लड़ाई बन्द करने पर ज़ोर दिया और कई देशो की ओर से मध्यस्थता के प्रस्ताव भी आये। और जब सोवियत संघ के प्रधानमंत्री अलेक्सी कोसीजिन ने लालबहादुर शास्त्री और पाकिस्तान के राष्ट्रपति अय्यूबखान को संभावित समझौता-वार्ता के लिए अपने पास ताशकन्द आने का निमन्त्रण दिया तो दोनों ने उसे स्वीकार कर लिया।

१९६६ के जनवरी महीने के आरम्भ मे ताशकन्द मे बैठक हुई। दोनो देशो द्वारा स्वीकृत और मान्य एक युद्ध-विराम रेखा निर्धारित की गई और दोनों देशों ने अपनी-अपनी सेनाएं मोर्चों पर से हटा ली। तय पाया कि भारत या पाकिस्तान कोई भी युद्ध-विराम रेखा को भंग नहीं करेगा। लेकिन इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण यह समझौता था कि पारस्परिक झगड़ो या मतभेदों को निपटाने के लिए दोनो मे से कोई भी राष्ट्र युद्ध का सहारा नही लेगा। यह वास्तव में एक तरह से परस्पर युद्ध न करने का, शान्ति बनाये रखने का ही समझौता था, जिसका भारत पाकिस्तान के समक्ष लगातार प्रस्ताव करता चला आ रहा था। ताशकन्द समझौते के दूसरे मुद्दे इस प्रकार थे : दूसरे के आन्तरिक मामलो मे हस्तक्षेप न करना; विरोधी प्रचार बन्द कर देना; आर्थिक, सचार और सांस्कृतिक सम्बन्धों को पुनः आरम्भ करना; और जो समझौते पहले किये जा चुके हैं उन्हें कार्यान्वित

करना ।

ताशकन्द समझौता होने की खुशी मे रूसियों ने एक दावत दी । वहां से शास्त्रीजी अपने निवास-स्थान पर लौटे तो उन्होंने टेलीफोन करके अपने पुत्र से यह जानना चाहा कि भारत में समझौते को लेकर क्या प्रतिक्रिया हुई है । उन्हें खास तौर से इस बात की चिन्ता थी कि काश्मीर मे सामरिक महत्त्व के जो दर्रे थे उनसे हमे अपनी सेना हटा लेने की बात माननी पड़ी थी । रात मे शास्त्रीजी को दिल का दौरा पड़ा और उनकी मृत्यु हो गई ।

इस आघात ने भारत को स्तम्भित कर दिया । देश अपने दूसरे प्रधान मंत्री की मृत्यु के शोक मे डूब गया, जो केवल अट्ठारह महीने ही उस पद पर रह पाया था । इतने थोड़े समय मे ही लालबहादुर शास्त्री ने अपने देशवासियों के दिलो को जीतकर उनका सम्मान प्राप्त कर लिया था ।

२१

इन्दिरा गांधी का चुनाव

•

लालबहादुर शास्त्री की प्रतिष्ठा और लोकप्रियता उनके शासन-काल में, जो ९ जून १९६४ से ११जनवरी १९६६ तक रहा, निरन्तर बढ़ती गई । वे पक्के गांधीवादी थे और जनता मे उनके कई निष्ठावान अनुयायी थे, जिन्होने पाकिस्तानी युद्ध के दौरान और ताशकन्द सम्मेलन मे उनके कार्यो और आचरण की भूरि-भूरि प्रशसा की । वे मंत्रि-परिषद् की बैठको मे विचार-विनिमय को प्रोत्साहित करते थे, निर्णयो के मामले मे सभी की राय लेते और नीति-निर्धारण के सम्बन्ध मे उच्च कोटि के तथा खूब ठोक-बजाकर चुने हुए परामर्शदाताओ पर निर्भर करते थे। कच्छ के रन को लेकर पाकिस्तान के साथ जो तनावपूर्ण स्थिति निर्मित हो गई थी, उसका उन्होने शांति-पूर्ण हल खोज निकाला था । वे शान्तिप्रिय व्यक्ति थे और उन्होंने देश का विनम्र दृढता से नेतृत्व किया ।

लेकिन साथ ही शास्त्रीजी का कार्य-काल देश पर विपत्तियों का काल भी रहा। युद्ध के के बढे हुए खर्चो और वर्षा न होने के कारण देश की समूची अर्थ-व्यवस्था ही गड़बड़ा गई । लोग

वर्षा के लिए यज्ञ, पूजा और प्रार्थनाएं करते रहे, लेकिन पानी नही बरसा। अनावृष्टि के कारण १९६५ की गर्मियो मे सूखा पड़ गया, देश के कई हिस्सो में अकाल की स्थिति निर्मित हो गई और अन्न के लिए दंगे होने लगे। तीसरी पंचवर्षीय योजना, जो जवाहर के कार्यकाल में बनी थी, कृषि और औद्योगिक पैदावार के अपने लक्ष्यो को पूरा करने मे असफल रही। औद्योगिक और कृषि-उत्पादन को आगे बढ़ाने के लिए राष्ट्र को पूजीगत साधनों की जरूरत थी, जिनका नितान्त अभाव हो गया था। कुल मिलाकर अर्थव्यवस्था की गति अवरुद्ध हो गई थी।

साथ ही केन्द्रीय मंत्रिमंडल और राज्य विधान-सभाओ मे भी झगडे होने लगे और राजनैतिक संकट अपना सिर फिर उठाने लगा। भाषाई दर्गों का दौर शुरू हो गया। संविधान में १९६५ तक हिन्दी को भारत की राजभाषा बनाने का प्रावधान किया गया था। भारत मे चौदह भाषाएं और उनकी सब मिलाकर कोई आठेक सौ बोलियां हैं। संविधान के भाषा-सम्बन्धी इस प्रावधान का सबसे अधिक विरोध दक्षिण मे हुआ और वहां के लोगो का गुस्सा भड़क उठा। खास करके मद्रास के तमिष-भाषी लोग बहुत उत्तेजित हो गए। उन्होने रेलगाड़ियां जला डाली और सरकारी इमारतो मे आग लगा दी। पुलिस को क्रुद्ध भीड पर गोली चलानी पड़ी, जिसके फलस्वरूप साठ आदमी मारे गए। संसद, जिसमे हिन्दी-भाषियों की बहुलता है, शास्त्रीजी की नरम और समझौतावादी नीति के खिलाफ और नाराज हो गई। बदले की कार्रवाई के रूप मे उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश मे भी भाषा सवाल को

लेकर दंगे हुए।

उस वर्ष के सूखे और अन्न-सकट का सबसे अधिक प्रभाव शास्त्रीजी के अपने प्रान्त उत्तरप्रदेश पर पड़ा और अनाज की दुकाने आदि लूटे जाने की सबसे अधिक वारदाते भी उसी राज्य मे हुईं। देश के अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान-शेप मे उत्तरोत्तर कमी होती जा रही हो, ऐसी स्थिति में देशवासियो के लिए अनाज का प्रबन्ध कैसे और कहां से किया जाय, इस प्रश्न को लेकर संसद् में सदस्यों के बीच प्रायः तीखी झड़पें हो जाया करतीं। फसले कम हुईं; उर्वरकों की कोई परियोजना पूरी नहीं हो पाई, और इस बीच जनसख्या की रफ्तार प्रतिवर्ष एक करोड़ बीस लाख की दर से बढ़ती जा रही थी।

अमेरिका ने अनाज भेजकर मदद की और भारत तथा अमेरिका के आपसी सम्बन्ध भी काफी अच्छे रहे। लेकिन जब शास्त्रीजी ने उत्तरी वियतनाम पर अमेरिकी बमबारी की आलोचना की तो दोनो देशो के पारस्परिक सम्बन्ध बिगड़ गए। राष्ट्रपति जानसन ने शास्त्रीजी को वाशिंगटन आमन्त्रित करने की जो योजना बना रखी थी, उसे रद्द कर दिया। (राष्ट्रपति जानसन ने १९६६ के जनवरी महीने के आरम्भ में शास्त्रीजी को निमंत्रित करने की परियोजना बनाई थी लेकिन ताशकन्द की ११ जनवरी की दुःखद घटना के कारण वह योजना पूरी न हो सकी।)

११ जनवरी को बडे सवेरे जैसे ही शास्त्रीजी की मृत्यु की खबर नई दिल्ली पहुंची, कार्यवाहक प्रधानमत्री का भार गुलजारीलाल नन्दा को सौंपा गया, क्योकि मन्त्रिमडल मे वही सबसे वरिष्ठ सदस्य थे।

देश के संविधान के अनुसार संसद् का बहुमत दल, अर्थात् कांग्रेस पार्टी—अपना नेता चुनता है और उसी को मंत्रिमंडल बनाने के लिए आमंत्रित किया जाता है। निर्वाचित नेता ही अपने मंत्रिमंडल के सदस्यों की नियुक्तियां करता है। लेकिन इस बार नेता के चुनाव का प्रश्न इतने आकस्मिक रूप से सामने आया कि कांग्रेस में खींच-तान होने लगी। कांग्रेस कार्यकारिणी के नेताओं मे जबर्दस्त मतभेद था और राज्य-सरकारे स्वायत्तता के दावे पेश करती हुई अलग ही तनी जा रही थी।

ऐसे मे नये-नये दलों को कांग्रेस को बदनाम करने का बहुत अच्छा मौका मिल गया। अनुदार विचारों की स्वतंत्र पार्टी का झुकाव पश्चिम की ओर था, जबकि जनसंघ घोर दक्षिणपन्थी विचारधारा का लड़ाकू संगठन था।

उस समय प्रधानमंत्री पद के कई दावेदार थे, जिनमें प्रमुख भूतपूर्व केन्द्रीय वित्त-मंत्री (बाद मे उप-प्रधानमंत्री) और कट्टर गांधीवादी तथा परम उत्साही मुरारजी देसाई और पहले भारत-पाक युद्ध मे सेना का पूरी तरह कायाकल्प करने वाले रक्षा-मंत्री यशवन्तराव चव्हाण प्रमुख थे। एक जमाने मे देसाई और चव्हाण ने बम्बई राज्य के मंत्रिमंडल मे साथ-साथ काम किया था। यह उस समय की बात है जब महाराष्ट्र और गुजरात के अलग राज्य नही बने थे। जब देसाई केन्द्र मे आये तो बम्बई राज्य का मुख्यमंत्रित्व अपने विश्वसनीय साथी चव्हाण को इस आशा मे सौंपते आये कि वे मराठी-भाषी और गुजराती-भाषी गुटों को दो अलग राज्य नही बनाने देंगे। लेकिन चव्हाण ने बटवारे को प्रोत्साहन ही

दिया और वह भी इस तरह कि बम्बई की सम्पन्न नगरी महाराष्ट्र की राजधानी हो। मुरारजी ने इसे विश्वासघात माना और दोनों आपस में राजनैतिक विरोधी बन गए।

नेता-पद के अन्य दावेदारों में गुलज़ारीलाल नन्दा, जगजीवन राम और सादोबा पाटिल भी थे। पाटिल बम्बई कांग्रेस समिति के सर्वेसर्वा अध्यक्ष और पश्चिम बंगाल, बम्बई तथा मद्रास के कांग्रेसाधिपतियो की 'सिडीकेट' के मुख्य स्तम्भ थे।

उन दिनों नौ राज्यों की कांग्रेस पार्टी पर सिंडीकेट का पूरा नियंत्रण था। कांग्रेस-अध्यक्ष कामराज से सिडीकेट का इसलिए मनमुटाव हो गया था कि उन्होने दूसरी बार भी अध्यक्ष बने रहने पर जोर दिया और उसमे सफल भी हो गए। सिंडीकेट के सदस्य पुरातनपंथी थे। वे राजा बनाने (किंगमेकर) का काम करते थे। अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिए वे केन्द्र के नेता के रूप में ऐसे कमजोर और आज्ञाकारी व्यक्ति को चाहते थे जो पूरी तरह उनकी मुट्ठी में रहे। वे जानते थे कि मुरारजी को दबाकर रखना उनके बूते का नही, इसलिए उन्होंने इनका विरोध किया। नन्दा उनकी मर्जी के आदमी थे, लेकिन कांग्रेस पार्टी मे उनके समर्थक नही थे।

कांग्रेस की कार्यकारिणी पार्टी के भविष्य को लेकर बहुत चिन्तित थी। एक तो देश में अर्थ-संकट दिनो-दिन गहरा होता जा रहा था और दूसरे कई काग्रेसी मंत्रियों के भ्रष्टाचार के किस्से लोगो की जुबान पर थे। इन दोनों कारणो से आम लोगों का असन्तोष काग्रेस और कांग्रेसी शासन के खिलाफ

बढता जा रहा था। ऐसी विषम परिस्थितियो मे जवाहर जैसा प्रभावशाली और लोकप्रिय व्यक्ति ही, जो चुनाव-अभियान को कारगर ढंग से चला सके और लोगों का विश्वास सम्पादित कर सके, कांग्रेस के अन्दर मतभेदों की खाई को पार कर एकता स्थापित कर सकता था।

कामराज के आगे प्रस्ताव रखा गया कि क्यो न वही पार्टी-नेता का चुनाव लडे, लेकिन उन्होंने अपने-आप को इस पद के उपयुक्त नही माना। वह ठेठ जनता के स्वयं-शिक्षित आदमी हैं और केवल अपनी मातृभाषा तमिल जानते हैं। भारत-जैसे बहुभाषी देश मे, जहा अधिसंख्य लोग हिन्दी बोलते और समझते हैं, प्रधानमंत्री बन जाने पर उन्हे जनता के समक्ष भाषण देने में कठिनाइयो का सामना करना पड़ता। उनकी दृष्टि में इन्दिरा इस सर्वोच्च पद के लिए सभी तरह से उपयुक्त थी, अकेली वही लोगो का विश्वास सम्पादित कर केन्द्र में मजबूत सरकार बना सकती थी और पार्टी की एकता को भी बनाए रख सकती थी। देश और विदेश में सर्वत्र उसकी प्रचुर ख्याति थी, उसका कोई शत्रु नही था और वह अखिल भारतीय नेता के रूप में मान्य हो चुकी थी।

कामराज ने कार्यकारिणी के समक्ष उसका नाम प्रस्तावित करते हुए यह भी कहा कि नेता का चुनाव बिना किसी विरोध के और सर्वसम्मति से करना अति उत्तम और गरिमामय होगा। लेकिन मुरारजी ने खुले चुनाव पर ज़ोर दिया और कहा कि कार्यकारिणी को पार्टी के इस मामले मे हस्तक्षेप नही करना चाहिए। निर्वाचको के समक्ष उन्होने यह तर्क रखा कि नेतृत्व के लिए इन्दिरा की अपेक्षा वे अधिक उपयुक्त

हैं। इन्दिरा ने उनके इस दावे के सम्बन्ध में सिर्फ यही जवाब दिया, "फैसला संसद्-सदस्यों को करना है कि वे किसे प्रधान-मंत्री बनाना चाहते हैं।"[1]

उधर उम्मीदवार अपने पक्ष मे कांग्रेसी सदस्यो के बीच जोड़-तोड भिडा रहे थे, इधर कामराज 'राजा बनानेवाले' की भूमिका निभा रहे थे। उन्होने इन्दिरा के पक्ष मे अपनी पूरी ताकत लगा दी। जिन दस राज्यो मे कांग्रेस पार्टी की सरकार थी वहां के मुख्य मत्रियों को दिल्ली बुलाकर उन्होने कहा कि आपके यहां के ससद्-सदस्यों को मेरे उम्मीदवार का समर्थन कर उसी को अपना मत देना होगा और इसकी पूरी जिम्मेदारी आप लोगो पर है। इन्दिरा से उन्होने संसद् में कांग्रेस पार्टी के नेता के चुनाव मे खड़े होने के लिए कहा। इन्दिरा मन से तो यही चाहती थी कि मामला निर्विरोध तय हो जाय; लेकिन जब चुनाव की चुनौती सामने आई तो उसे उसने सहर्ष स्वीकार कर लिया, ज़रा भी न घबरायी। और न वह कामराज के इस पत्र से ही हतोत्साहित हुई कि उसका चुनाव महज अस्थायी है। उन्होंने लिखा था, "हम बूढे हो गए, और तुम दुबारा चुनाव लड़ी तो मदद के लिए शायद न भी रहें।"[2] लेकिन इन्दिरा जानती थी कि पार्टी के ये पुरातनपंथी कुछ भी क्यो न करे, जनता उसके साथ है। जब पत्रकारो ने उससे चुनाव लड़ने को उसकी रजामन्दी के बारे में पूछा तो उसने जवाब दिया, "मैं वही करूगी जो श्री कामराज कहेगे।" दूसरे शब्दों में इसका मतलब यह हुआ कि अगर कार्यकारिणी के बहुमत ने उसका नाम प्रस्तावित किया तो वह रज़ामन्द हो जायगी।

चुनाव की तारीख १६, जनवरी, १६६६ तय की गई। उस दिन ससद के कांग्रेसी सदस्य अपने पार्टी-नेता का निर्वाचन करने जा रहे थे।

मैं व्यग्र हो उठी। बार-बार यही लगता था कि इन्दिरा बिलकुल अकेली है। उसके दोनो बेटे इंग्लैंड में थे। मैं फौरन उसके पास पहुंच जाना चाहती थी। गिरने से मेरी रीढ की हड्डी टूट गई थी और डाक्टर की सख्त हिदायत थी कि बिस्तर मे लेटी रहूं, परन्तु मन किसी तरह न माना और मै बम्बई से हवाई जहाज के द्वारा नई दिल्ली के लिए चल दी।

१६ जनवरी, को बडे सवेरे जब सारा शहर कुहरे की चादर ओढे सोया पड़ा था, इन्दिरा दो देवस्थानों मे गई। पहले वह राजघाट, जमना के किनारे गांधीजी की समाधि पर पहुंची। बापू की समाधि के समक्ष खड़े होकर उसने प्रार्थना की और आशीर्वाद मांगा। वहां से वह शान्ति-वन गई जहां जवाहर के पार्थिव शरीर का दाह-संस्कार किया गया था। आज मानो उसने उन दोनों महापुरुषों से भेट करने का व्रत लिया था, जिन्होंने उसके जीवन और भविष्य का निर्माण किया था। अपने पिता की समाधि के आगे जब वह खड़ी हुई तो उसे उनके उस पत्र की याद हो आई जो उन्होंने उसके तेरहवें जन्मदिवस पर उसे लिखा था :

"तुम बहादुर बनो और बाकी चीज़ें तुम्हारे पास आप-ही-आप आती जायगी। अगर तुम बहादुर हो तो तुम डरोगी नहीं: और कभी ऐसा काम न करोगी जिसके लिए दूसरों के सामने तुम्हे शर्म मालूम हो। ...हमे सूरज को अपना दोस्त बनाना चाहिए और रोशनी मे काम करना चाहिए। कोई

बात छिपाकर या आंख बचाकर नहीं करनी चाहिए। इसलिए, प्यारी बेटी, अगर तुम इस कसौटी को सामने रखकर काम करती रहोगी तो प्रकाशमान बालिका बनोगी और चाहे जो घटनाएं तुम्हारे सामने आयें तुम निर्भय और शान्त रहोगी और तुम्हारे चेहरे पर शिकन तक न आयेगी।"

इन्दिरा तीनमूर्ति-भवन भी गई। वहां जब अपने पिता के कमरे में गई (उसे बिलकुल उसी रूप में रखा गया था जैसा वह उनके जीवन-काल मे था) तो उसे राबर्ट फ्रास्ट की वह कविता याद आई जिसे उन्होंने अपने बिस्तर के करीब वाली मेज पर रखे 'पैड' पर लिखे रखा था :

गहन वन-कान्तर, तरु सुन्दर, शीतल छाया,
पर मुझको तो प्रण पूरा करना,
और मीलों चलते जाना, सो जाने के पहले !*

प्रण पूरा करने को जब उसकी बारी आई तो आगे आने वाली कठिनाइयों का विचार कर मन आशंकित हुआ होगा, और राबर्ट फ्रास्ट की यह दूसरी कविता भी याद आई होगी :

राजा ने कहा अपने बेटे से, "बहुत हुआ यह !
राज्य है तुम्हारा, जो चाहे करो इसका,
जा रहा हूं आज रात। लो उठाओ मुकुट !"
पर राजकुमार ने खींच लिया हाथ, समय रहते
उस पाने से बचने को, आश्वस्त न था जिनके बारे में।**

---

* The woods are lovely, dark and deep,
But I have promises to keep,
And miles to go before I sleep

** The king said to his son : "Enough of this !
The Kingdom is yours to finish as you please,

मुझे संसद्-भवन को ले जाने के लिए इन्दिरा की मोटर हवाई अड्डे पर मेरा इन्तजार कर रही थी। मतदान संसद् के सेंट्रल हाल में हो रहा था और वहां बड़ी भीड़ थी। लोगों के बीच से रास्ता बनाती हुई मैं आगे बढ़ी, लेकिन अन्दर न गई, बाहर ही एक संगमरमर के खम्भे से टिक कर खड़ी हो गई जिससे मेरी दुखती पीठ को सहारा मिल सके। इन्दिरा ने मुझे देखा और बाहर आकर लिपट गई। उसने कहा, "फूफी, मैंने आने से मना किया था, फिर भी आप चली आईं। ऐसी चोट में तो आपको आराम करना चाहिए।" उसने मुझे कुर्सी दी और फिर सेंट्रल हाल में दौड़ी गई।

थोड़ी देर के बाद एक आदमी बाहर आया और उसने वहा खडे संवाददाताओं और फोटोग्राफरो को अन्दर जाने के लिए कहा। फिर वह मुझे सहारा देकर अन्दर ले गया और वहां एक कुर्सी पर बिठा दिया।

अपराह्न तीन बजे के लगभग चुनाव अधिकारी ने मतगणना का नतीजा कामराज के हाथ में थमा दिया। कहां तो लोग जोर-जोर से बातें कर रहे थे और इधर-उधर मडरा रहे थे और कहां एकदम इतनी शान्ति हो गई कि सुई गिरने की आवाज भी सुनाई दे जाती। कामराज की प्रसन्न मुस्कराहट ही कहे दे रही थी कि परिणाम उनकी इच्छा के अनुकूल हुआ है। उन्होने तमिष में परिणाम की घोषणा की, जिसे वहा उपस्थित बहुत थोडे लोग समझ पाए। फिर उसका अंग्रेजी-अनुवाद किया गया। इन्दिरा को ३५५ और उसके विरोधी

I am getting out tonight. Here, take the crown."
But the prince drew away his hand in time
To avoid what he was not sure he wanted.

मोरारजी देसाई को सिर्फ १६९ मत मिले थे। इन्दिरा संसद् के कांग्रेसी दल की नेता चुन ली गई और अब वह सरकार बनाने के लिए सक्षम थी।

कामराज का स्वर लोगों के हर्षोल्लास में डूबकर रह गया। वह सदस्यो को चुप हो जाने के लिए कह रहे थे, जिससे इन्दिरा उनके और नन्दाजी के पास मंच पर आ सके। इन्दिरा संसद्-सदस्यों के साथ बहुत पीछे विनम्रतापूर्वक बैठी हुई थी। मोरारजी भाई अगली कतार मे मच के बिलकुल पास गुरु-गम्भीर और थोड़े विक्षुब्ध-से बैठे हुए थे।

इन्दिरा जैसे ही मंच की ओर बढी, सदस्यगण अपने स्थानो से उठ-उठकर उसे बधाइयां देने के लिए दौड़ पडे, यहां तक की उसका आगे बढना मुश्किल हो गया। बीसियो टेलीविजन कैमरो की तेज रोशनी उस पर केन्द्रित हो गई। वह सफेद खद्दर की सादा साड़ी पहने हुए थी। जो भूरा काश्मीरी शाल उसने अपने कन्धों पर ले रखा था उसके एक कोने पर लाल गुलाब का फूल कढा हुआ था। मोरारजी के पास पहुंची तो उसने दोनो हाथ जोड़कर उन्हे प्रणाम किया और बोली, "आशीर्वाद दीजिये, मोरारजी भाई, कि आगे आने वाली जिम्मेदारियो का भार उठा सकू।"

बिना मुस्कराये वह बोले, "मैं तुम्हे अपने आशीर्वाद देता हूं।"

मंच पर पहुंचकर इन्दिरा ने इन शब्दो में सभासदो को सम्बोधित किया, "आपके सामने खडे होने पर मुझे अपने महान नेताओ का खयाल आ रहा है: महात्मा गांधी, जिनके चरणो मे मैं बड़ी हुई, पंडितजी, जो मेरे पिता थे, और

लालवहादुर शास्त्री। इन नेताओ ने हमें जो रास्ता दिखाया, मैं उसी पर आगे चलना चाहती हूं।"

ससद्-भवन के बाहर कोई दस हजार की भीड़ जमा हो गई थी। यह भीड़ वहां चुनाव होने के पहले से ही थी और जब इन्दिरा संसद्-भवन आई थी तो उन लोगो ने बडे हर्षोल्लास से उसका स्वागत किया था। उसके शाल के लाल गुलाव को देखकर उन्होने उमग-उमग कर नारे लगाये थे : "लाल गुलाब जिन्दाबाद !" अब लोग संसद्-भवन के बाहर आने लगे तो किसी ने भीड़ मे से चिल्ला कर पूछा, "लडका है या लडकी ?"

"लडकी !" जवाब पाकर भीड़ खुशी से झूम उठी और लोग उछल-उछल कर नारे लगाने और इन्दिरा का अभिवादन करने लगे, "जवाहरलाल नेहरू की जय !"

धक्कामुक्की करती हुई उस भीड़ मे इन्दिरा के पास जाना मेरे बूते का नही था, इसलिए नान के साथ उन्ही की मोटर मे मैं उनके घर चली गई। वहां एक प्याला चाय और एक आमलेट जल्दी-जल्दी किसी तरह गले के नीचे उतार कर मैं इन्दिरा के मकान की ओर भागी। उसे गले लगाकर खूब स्नेह किया और तब हम दोनो वाहर लान मे चली आई, जहां अखवार वाले उसका इन्तजार कर रहे थे।

प्रधानमत्री चुने जाने के कोई सात महीने पहले इन्दिरा ने दिल्ली के एक समाचार-पत्र मे लेख लिखकर अपने पिता की नीतियो मे विश्वास प्रगट किया था। उस समय उसे सपने मे भी यह खयाल नही था कि वह अपने देश की प्रधान मन्त्री बनने वाली है। उसके दिमाग मे तो सभी भारतवासियो

के लिए एक विचार था, जिसे उसने लेख के माध्यम से व्यक्त किया था। विचार था कि एक प्रौढ़ राष्ट्र के निर्माण में देशवासियों का अपना उत्तरदायित्व क्या है ! लेकिन उसके वे शब्द देश के प्रधानमत्री के रूप में उसी के अपने उद्देश्यों की भविष्यवाणी बन गए। १९६५ में, शास्त्रीजी के शासन-काल में, अपने देशवासियो को उसने इन शब्दों में उद्बोधित किया था :

"साल-भर पहले वह (जवाहर) हमें छोड़ कर चले गए, लेकिन उनकी आत्मा आज भी हमारे साथ है और हमें प्रेरणा देने, हमारे लड़खड़ाते कदमों को सहारा देने और देश की जनता तथा अपने-आप में हमारे विश्वास को दृढ़ करने के लिए सदा हमारे साथ रहेगी। तो आइये, हम अपने-आपको उनकी महान स्मृति के उपयुक्त बनाने मे जान की बाज़ी लगा दे ! और भारत को प्रगतिशील और प्रौढ राष्ट्र बनाने के उनके सपने को मूर्तरूप देने के भगीरथ कार्य मे तन-मन से जुट जायं।"

२२ जनवरी, १९६६ को इन्दिरा गांधी ने भारत के प्रधानमंत्री पद की शपथ ग्रहण की।

२२

राजनैतिक सत्ता एक महिला के सिपुर्द

विश्व के सबसे बडे गणतंत्र ने एक महिला को अपनी सरकार का प्रमुख चुना था। इससे पहले किसी भी बडे देश ने किसी महिला को अपने राष्ट्र के इतने महत्त्वपूर्ण पद के लिए निर्वाचित नही किया था। एशिया के एक छोटे-से देश श्रीलका ने अवश्य सिरीमावो भण्डारनायक को १९६० मे अपने देश का प्रधानमत्री चुना था। इनके पति, जो श्रीलका के प्रधानमत्री थे, की हत्या कर दी गई थी और इसलिए प्रधानमत्री पद पर उनका चुना जाना भूतपूर्व मृत प्रधानमंत्री के प्रति उस देश की जनता के स्नेह और सम्मान का प्रतीक मात्र ही था। श्रीमती भण्डारनायक का अपना कोई राज-नैतिक-दर्जा नही था। लेकिन इन्दिरा का भारत मे प्रधान मत्री चुना जाना सम-सामयिक इतिहास की अपने ढंग की पहली घटना थी। और वह चुनी गई थी अपने प्रगतिशील आधुनिक दृष्टिकोण के कारण, अपनी जन-सेवाओ के कारण और राजनीति तथा राजकाज के अपने मूल्यवान अनुभवों के कारण।

के लिए एक विचार था, जिसे उसने लेख के माध्यम से व्यक्त किया था। विचार था कि एक प्रौढ राष्ट्र के निर्माण में देश-वासियों का अपना उत्तरदायित्व क्या है ! लेकिन उसके वे शब्द देश के प्रधानमंत्री के रूप मे उसी के अपने उद्देश्यों की भविष्यवाणी बन गए। १९६५ में, शास्त्रीजी के शासन-काल मे, अपने देशवासियो को उसने इन शब्दो मे उद्‌बोधित किया था :

"साल-भर पहले वह (जवाहर) हमें छोड़ कर चले गए, लेकिन उनकी आत्मा आज भी हमारे साथ है और हमे प्रेरणा देने, हमारे लडखड़ाते कदमों को सहारा देने और देश की जनता तथा अपने-आप मे हमारे विश्वास को दृढ़ करने के लिए सदा हमारे साथ रहेगी। तो आइये, हम अपने-आपको उनकी महान स्मृति के उपयुक्त बनाने मे जान की बाजी लगा दे ! और भारत को प्रगतिशील और प्रौढ राष्ट्र बनाने के उनके सपने को मूर्तरूप देने के भगीरथ कार्य मे तन-मन से जुट जायं।"

२२ जनवरी, १९६६ को इन्दिरा गांधी ने भारत के प्रधानमत्री पद की शपथ ग्रहण की।

२२

राजनैतिक सत्ता एक महिला के सिपुर्द

०

विश्व के सबसे बडे गणतंत्र ने एक महिला को अपनी सरकार का प्रमुख चुना था। इससे पहले किसी भी बड़े देश ने किसी महिला को अपने राष्ट्र के इतने महत्त्वपूर्ण पद के लिए निर्वाचित नही किया था। एशिया के एक छोटे-से देश श्रीलका ने अवश्य सिरीमावो भण्डारनायक को १९६० में अपने देश का प्रधानमत्री चुना था। इनके पति, जो श्रीलंका के प्रधानमत्री थे, की हत्या कर दी गई थी और इसलिए प्रधानमत्री पद पर उनका चुना जाना भूतपूर्व मृत प्रधानमंत्री के प्रति उस देश की जनता के स्नेह और सम्मान का प्रतीक मात्र ही था। श्रीमती भण्डारनायक का अपना कोई राजनैतिक-दर्जा नही था। लेकिन इन्दिरा का भारत मे प्रधान मंत्री चुना जाना सम-सामयिक इतिहास की अपने ढंग की पहली घटना थी। और वह चुनी गई थी अपने प्रगतिशील आधुनिक दृष्टिकोण के कारण, अपनी जन-सेवाओं के कारण और राजनीति तथा राजकाज के अपने मूल्यवान अनुभवों के कारण

के लिए एक विचार था, जिसे उसने लेख के माध्यम से व्यक्त किया था। विचार था कि एक प्रौढ़ राष्ट्र के निर्माण में देश-वासियो का अपना उत्तरदायित्व क्या है ! लेकिन उसके वे शब्द देश के प्रधानमंत्री के रूप में उसी के अपने उद्देश्यों की भविष्यवाणी बन गए। १९६५ में, शास्त्रीजी के शासन-काल में, अपने देशवासियों को उसने इन शब्दों में उद्‌बोधित किया था :

"साल-भर पहले वह (जवाहर) हमें छोड़ कर चले गए, लेकिन उनकी आत्मा आज भी हमारे साथ है और हमें प्रेरणा देने, हमारे लडखड़ाते कदमों को सहारा देने और देश की जनता तथा अपने-आप में हमारे विश्वास को दृढ करने के लिए सदा हमारे साथ रहेगी। तो आइये, हम अपने-आपको उनकी महान स्मृति के उपयुक्त बनाने मे जान की बाजी लगा दे ! और भारत को प्रगतिशील और प्रौढ राष्ट्र बनाने के उनके सपने को मूर्तरूप देने के भगीरथ कार्य मे तन-मन से जुट जायं।"

२२ जनवरी, १९६६ को इन्दिरा गांधी ने भारत के प्रधानमंत्री पद की शपथ ग्रहण की।

२२

राजनैतिक सत्ता एक महिला के सिपुर्द

विश्व के सबसे बडे गणतंत्र ने एक महिला को अपनी सरकार का प्रमुख चुना था। इससे पहले किसी भी बड़े देश ने किसी महिला को अपने राष्ट्र के इतने महत्त्वपूर्ण पद के लिए निर्वाचित नही किया था। एशिया के एक छोटे-से देश श्रीलका ने अवश्य सिरीमावो भण्डारनायक को १९६० मे अपने देश का प्रधानमत्री चुना था। इनके पति, जो श्रीलंका के प्रधानमत्री थे, की हत्या कर दी गई थी और इसलिए प्रधानमत्री पद पर उनका चुना जाना भूतपूर्व मृत प्रधानमंत्री के प्रति उस देश की जनता के स्नेह और सम्मान का प्रतीक मात्र ही था। श्रीमती भण्डारनायक का अपना कोई राजनैतिक-दर्जा नही था। लेकिन इन्दिरा का भारत मे प्रधान मंत्री चुना जाना सम-सामयिक इतिहास की अपने ढंग की पहली घटना थी। और वह चुनी गई थी अपने प्रगतिशील आधुनिक दृष्टिकोण के कारण, अपनी जन-सेवाओं के कारण और राजनीति तथा राजकाज के अपने मूल्यवान अनुभवो के कारण।

बाहरी दुनिया के लोग तो यह सुनकर चकित ही रह गए कि पचास करोड़ की आबादी वाले राष्ट्र की शासन-सत्ता एक महिला को सौंपी गई है। सबसे अधिक आश्चर्य हुआ अमेरिका वालों को, क्योंकि वहां आज भी राष्ट्रपति पद के लिए किसी महिला के चुने जाने की कल्पना तक नही की जा सकती।

राष्ट्रपति जानसन के निमत्रण पर इन्दिरा ने २७ मार्च, १९६६ को वाशिगटन पहुंच कर अमरीका की राजकीय यात्रा प्रारम्भ की। राजकीय यात्रा पर आने वाले भारत के प्रधानमंत्री का महिला होना अमरीकी अखबारो के लिए अच्छा-खासा शिगूफा बन गया। कुछ समाचार-पत्र तो सरकारी दफ्तरों मे पेटीकोट-गवर्नमेंट की भोडी बातो तक उतर आये और उनके कुछ दूसरे भाई-बन्दो ने दून की हांकी कि इन्दिरा तो महज एक अलंकृति है, शोभा की सुन्दर वस्तु! और कुछ ने कहा, अरे, यह पार्टी की गुटबन्दी को छिपाने की एक बढिया-सी ओट है, ओट! संवाददाताओ ने तरह-तरह के सवालों की झडी लगा दी। क्या वह आदमी के करने का काम कर सकती है? क्या वह नारीवाद (स्त्रियों के समता आदि अधिकार) की समर्थक है? क्या वह मानती है कि महिलाओ के लिए राजनीति मे ज्यादा बड़ी भूमिकाएं निभाने का मार्ग खुल गया? उसने जवाब मे कहा, "मैं अपने को औरत नही, व्यक्ति समझती हूं, जिसे काम करना है।"

"मेरे प्रधानमंत्री बनने से भारत मे किसी को आश्चर्य नही हुआ। वहा बरसों से महिलाएं स्वतत्रता-सग्राम में, राजनीति में और सार्वजनिक जीवन मे प्रमुख रूप से भाग

लेती आ रही हैं। हमारे यहा महिला इजीनियर, महिला राज्यपाल, महिला राजदूत, महिला न्यायाधीश और राजनयिक एव प्रशासकीय सेवाओ मे भी कई महिलाएं ऊचे पदों पर हैं। हमारे यहां की बहुत-सी ग्राम पंचायतो मे महिला सदस्य हे और कुछ मे तो तमाम सदस्य महिलाए ही हैं। महिलाओ को मानवीय उद्यम के हर क्षेत्र मे काफी महत्त्वपूर्ण भूमिकाए अदा करनी हैं। मेरी स्थिति से इस बुनियादी सचाई में न तो कोई वृद्धि होती है और न कोई कमी।"[3]

एक महिला किसी देश की प्रधानमत्री बने, यह बात अमरीका वालों की समझ मे चाहे न आ सके, भारतीयों के लिए सहज-साधारण-सी बात है। भारत की महिलाओं ने समान अधिकारो का आन्दोलन कभी नही छेड़ा, क्योकि यहां नारी की पुरुष से समता अथवा श्रेष्ठता का कोई प्रश्न नहीं खड़ा होता। भारतीय धर्म, संस्कृति और परम्परा में नारी और पुरुष को हमेशा एक-दूसरे का पूरक माना गया है। इसलिए भारतीय नारी को पश्चिम का नारी-मुक्ति आन्दोलन बड़ा विचित्र लगता है और नारी की समता और स्वतन्त्रता के लिए सघर्ष करने वाली युयुत्सु महिला आन्दोलनकर्त्री, पुरुष मात्र से घृणा करने वाली प्रतीत होती है।

पिछले पृष्ठो मे, इस प्रसग के सिलसिले मे, भारतीय पुराणों मे वर्णित अर्धनारीश्वर, विभिन्न देवियो और वीरांगनाओ आदि का उल्लेख किया जा चुका है। हमारे यहा तो शक्ति को शिव से भी बड़ा माना गया है। धन-सम्पन्नता तथा ज्ञान-विज्ञान की अधिष्ठात्री देवियां लक्ष्मी और सरस्वती ही है, और इनका दर्जा किसी भी देवता से नीचा

नहीं ऊंचा ही है।

भारत में नारी पूजी जाती रही है। अजन्ता के कला-मण्डपों में (ईसा की तीसरी से पांचवी शताब्दी) नारी के प्रति पुरुष का पूज्य भाव इतने शालीन ढग से अंकित किया गया है कि उससे अभिभूत एक पाश्चात्य कला-समीक्षक ने कहीं लिखा है : "अजन्ता में अकित निष्कपट और उदात्त नारी-पूजा की समता मुझे तो कही खोजे नहीं मिलती। नारी को न तो इस तरह कहीं पूर्ण रूप से समझा और न यहां के जैसा पूरा सम्मान ही दिया गया है।"

प्राचीन भारत में महिलाओ के लिए कोई भी कार्यक्षेत्र वर्जित नही था, यद्यपि उनकी कानूनी स्थिति कुछ कमजोर और गिरी हुई जरूर थी, मगर ऐसा तो पश्चिम में भी था : "प्राचीन भारत में औरतों का कानूनी दर्जा गिरा हुआ जरूर था, लेकिन आज की कसौटी से जांचा जाए तो पुरातन यूनान, रोम, आरम्भिक ईसाई मत वाले देश, और मध्ययुग के बल्कि और हाल के यानी उन्नीसवी सदी के शुरू के यूरोप मे उनका जैसा दर्जा था उससे हमारे यहा कहीं अच्छा था।"[1]

मध्य युग मे अफगानो की भारत-विजय का प्रभाव पुराने और नये तौर-तरीको के सश्लेषण के रूप मे हुआ। जवाहर ने अहमदनगर किले की जेल मे लिखी अपनी पुस्तक 'हिन्दुस्तान की कहानी' मे उन सामाजिक परिवर्तनों का और खास तौर पर महिलाओ की स्थिति पर उनका जो प्रभाव पडा, उसके बारे में विस्तार से चर्चा की है :

"भारत में जो बुरी बात पैदा हुई, वह परदे के रिवाज का बढ़ना या औरतो का अलग एकान्त मे रहना था। . .

भारत मे इससे पहले अमीर लोगो मे स्त्री और पुरुष कुछ हद तक अलग-अलग जरूर रहते थे, जैसा कि और देशो मे भी, और खास तौर पर यूनान मे था। भारत में परदे का रिवाज मुगलो के जमाने में बढा जबकि इसे हिन्दुओ और मुसलमानो दोनो ही मे पद और इज्जत की निशानी समझा जाने लगा। परदे की यह प्रथा विशेष रूप मे ऊचे वर्ग के लोगो मे उन सभी जगहो मे तेजी से फैली जहां मुसलमानो का असर था—यानी बीच और पूरब के उस बडे हिस्से मे, जो दिल्ली, सयुक्त प्रान्त, राजपूताना, बिहार और बगाल से मिलकर बना है।

"इसमे मुझे जरा भी शक नही कि हाल की सदियो मे भारत के ह्रास का एक खास और बड़ा कारण औरतो को परदे मे रखने का रिवाज है। मुझे पूरा विश्वास है कि इस जगली रिवाज का पूरी तरह खत्म होना हमारे मुल्क की सामाजिक जिन्दगी की तरक्की के लिए बहुत जरूरी है। यह तो उजागर ही है कि औरत को इससे नुकसान पहुचता है, लेकिन जो नुकसान मर्द को पहुंचता है और उस बढते हुए बच्चे को, जिसे अपना ज्यादातर वक्त औरतो के साथ परदे मे बिताना पडता है, वह उससे भी ज्यादा है। खुशी की बात है कि यह रिवाज हिन्दुओ में तेजी से और मुसलमानो मे कुछ धीमी रफ्तार से उठता जा रहा है। परदे को हटाने मे सबसे ज्यादा हाथ कांग्रेस के राजनैतिक और सामाजिक आन्दोलन का रहा है, जिनकी बदौलत मध्यम वर्ग की दसियों हजार औरते किसी-न-किसी तरह की सार्वजनिक गतिविधियो की ओर झुकी हैं। गांधीजी परदा-प्रथा के कट्टर विरोधी रहे और

आज भी हैं और वे इसे 'दुष्ट और वर्बर रिवाज' कहते हैं, जिसने औरतो को पिछड़ा हुआ रखा और उन्नति नही करने दी। गांधीजी ने इस बात पर बराबर जोर दिया है कि औरतो को वही आजादी और अपनी उन्नति के वही मौके मिलने चाहिए जो मर्दो को हासिल हैं। 'मर्दो और औरतो के आपसी सम्बन्धो मे समझदारी होनी चाहिए। दोनो के बीच किसी तरह की दीवारे नही खड़ी की जानी चाहिए। उनके आपसी व्यवहार में स्वाभाविकता और सहजता होनी चाहिए।' गांधीजी ने औरतो की बराबरी और आज़ादी की लिख और बोलकर जोरदार वकालत की और उनकी घरेलू गुलामी की कड़ी-से-कड़ी निन्दा की।"[२]

हमारी पुरानी सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत सयुक्त परिवार-प्रणाली भारतीय महिलाओं पर, पर्दे के अलावा, एक दूसरा बोझ था। संयुक्त परिवार मे एक व्यक्ति की अपनी कोई अलग हैसियत नही होती। वह पूरे परिवार के अधीन और गौण होता है। पारिवारिक सम्पत्ति में सभी सदस्यों का हिस्सा और सामूहिक अधिकार होता है, लेकिन शादी के बाद लड़की नये परिवार (अपने ससुराल) की सदस्य हो जाती है और पिता के परिवार की सम्पत्ति मे उसका कोई हिस्सा नही रह जाता—उत्तराधिकार का हिन्दू कानून इसी प्रकार का था, और उसे अपने पति अथवा पुत्र पर निर्भर रहना पड़ता था।

वाल-विवाह भी (यह प्रथा मुसलमान आक्रमणकारियों की देन है, वे विवाह-योग्य लड़कियों को उठा ले जाते थे) भारतीय महिलाओ की प्रगति मे बाधक और उन पर बोझ

था। इस विवाह की रस्म गौने के बगैर पूरी नही होती, और गौना लडकी के वयस्क होने पर ही किया जाता है। अगर इस बीच लड़का मर जाय तो बेचारी लडकी को उम्र-भर के लिए रंडापा भोगना पडता था। सतीत्व नारी का श्रेष्ठ और सबसे आवश्यक गुण समझा जाता था और उससे स्खलन घोर अक्षम्य अपराव। लेकिन इस तरह का दृष्टिकोण न तो शास्त्र-सम्मत कहा जा सकता है और न धर्मानुकूल ही।

लेकिन पर्दा और बाल-विवाह की दूषित प्रथाओ के बावजूद भारतीय नारी का समाज मे आदर था और उसे सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक गतिविधियो मे भाग लेने की पूरी स्वतन्त्रता थी। गाधीजी के आह्वान पर हजारो की सख्या मे भारतीय महिलाए देश के स्वतन्त्रता-संग्राम मे भाग लेने के लिए अपने घरो से निकल आई। कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने १९३१ के अपने एक प्रस्ताव में महिलाओ के योगदान को स्वीकार करते हुए उनकी सराहना की है·

"भारत की महिलाओं ने मातृभूमि के सकट की घडी में चहारदीवारियो में से बाहर आकर, राष्ट्र के स्वतन्त्रता-संग्राम के अग्रिम मोर्चे पर पुरुषवर्ग के कन्धे-से-कन्धा भिड़ाकर अपार साहस और अद्भुत सहनशीलता के साथ जिस तरह बलिदान किये और सफलताए अर्जित करने मे जिस तरह हाथ बटाया, हम उसकी प्रशसा करते हुए उनके प्रति सम्मान प्रकट करते है।"

भारत की अनेक इतिहास-प्रसिद्ध महिला विचारको, दार्शनिको, शासको और योद्धा वीरागनाओ के नाम गिनाये जा सकते हैं। रजिया सुलताना ने बड़ी सूझ-बूझ और

कुशलता से दिल्ली की सल्तनत पर शासन किया; नूरजहां ने मुगल साम्राज्य की बागडोर संभाली; झासी की रानी लक्ष्मीबाई ने १८५७ की स्वाधीनता की लड़ाई मे अग्रेजो से लोहा लिया और विश्वासघात के ही कारण वे पराजित हुई। अग्रेज इतिहासकार जेम्स मिल ने अपनी पुस्तक 'भारत का इतिहास' (हिस्ट्री आफ इडिया) मे इस तथ्य का उल्लेख किया है कि उस समय के भारत के सुशासित राज्यो में से कुछ की शासक महिलाए थी।

स्वतंत्रता ने उस विदेशी शासन को हटा दिया जो भारतीय समाज की प्रगति को अवरुद्ध किये हुए था। भारतीय सविधान स्त्री और पुरुष को समान अधिकार देता है और बालिग मताधिकार के द्वारा वे उस उचित स्थान को ग्रहण कर रही हैं, जिसे राष्ट्रीय संघर्ष मे अपने बलिदानों से उन्होने अर्जित किया है। सड़ा-पुराना हिन्दू कानून बदल दिया गया और स्त्रियो को भी पुरुषो के ही समान उत्तराधिकार का हक प्रदान किया गया। हमारा संविधान लिग के आधार पर नागरिको मे कोई भेदभाव नही करता।

हाल के इतिहास में भी भारत मे कई ख्यातनामा महिलाएं हुई। कवयित्री सरोजिनी नायडू १९२५ मे कांग्रेसाध्यक्ष बनी, स्वतंत्रता के बाद वे उत्तरप्रदेश की राज्यपाल भी रही। मेरी बहन विजयालक्ष्मी पडित (नान) विश्व की पहली महिला राजदूत थीं। वे मास्को और वाशिगटन में भारत की राजदूत तथा इग्लिस्तान में उच्चायुक्त रही, और १९५५ मे सयुक्त राष्ट्र-सघ की महासभा के अध्यक्ष पद पर चुनी गई। राजकुमारी अमृतकौर भारत सरकार की स्वास्थ्य-मत्री थी;

एक दूसरी महिला डा० मुशीला नैयर उनकी उत्तराधिकारिणी बनी ।

१९६६ में उनसठ महिलाए संसद् की सदस्य थी (अमेरिका काग्रेस में सिर्फ १२ महिला-सदस्य थी), और सत्रह राज्यों की विधान-सभाओ मे तो कई महिला विधायक थी । सुचेता कृपालानी भारत के सबसे बडे राज्य (उत्तरप्रदेश) की मुख्य मत्री थी ।

इसलिए यदि एक महिला भारत की प्रधानमंत्री बनी तो वह कोई आश्चर्य की बात नही थी और न होनी चाहिए । ठेठ बचपन से राजनीति के साथ घनिष्ठ सम्पर्क होने के कारण इन्दिरा सार्वजनिक नेता के रूप मे प्रतिष्ठित हो चुकी थी और इसीलिए देश ने उसे अपनी-समस्याओ के निराकरण का भार सौंपा था ।

प्रधानमंत्री के रूप मे अपने कार्यकाल के दूसरे वर्ष की समाप्ति पर इन्दिरा से पूछा गया था कि महिला होना राजनीति मे बाधक है या सहायक ? उसका जवाब था .

"मै तो नही सोचती कि मेरे स्त्री होने से कोई फर्क पडता है । यह सवाल लोगो को खानों मे रखने की कोशिश के सिवाय और कुछ नही है । अगर आप कहे कि यह काम सिर्फ पुरुप के करने का है और यह भी कि पुरुष मे कुछ ऐसे गुण और योग्यताए होती हैं जो स्त्री मे नही होती तो सवाल उठता है कि आखिर वे गुण क्या हैं ? शारीरिक शक्ति ? नही, अगर आप कमज़ोरियां देखने लगेगे नो वे आपको सभी मे मिलेगी । एक व्यक्ति का, जो राज्य का प्रमुख है, इस तरह सोचना कि वह पुरुप है या स्त्री है या धर्म, जाति अथवा

लिग के किसी एक समूह मे से है, तो मेरी राय मे सही नहीं है। अगर जनता ने आपको राष्ट्र का नेता चुना है तो उतना काफी होना चाहिए, क्योंकि असल बात वही है।"[3]

२३

देश मे संकट की स्थिति

•

सयुक्त राज्य अमेरिका के लोग इन्दिरा के सौन्दर्य पर मोहित हो गए थे। वाशिगटन पहुचने के समय वह जिस नारगी रंग की साडी को पहने हुए थी, वह अमेरिकनो को खूब पसन्द आई और उसकी बहुत तारीफ की गई। सार्वजनिक समारोहो का विवरण देते समय सवाददाता उसकी पोशाक का विस्तार से वर्णन करना कभी न भूलते। जितने भी दिन वह अमेरिका मे रही, वहा के अखबारो ने उसकी गतिविधियो को प्रथम पृष्ठ पर महत्त्वपूर्ण समाचारो के रूप मे प्रकाशित किया। उसकी रेडियो-वार्ताए और टेलीविजन-मुलाकाते बड़ी उमग से सुनी और देखी गई।

मार्च महीने की चमकीली धूप परन्तु साथ ही ठण्डे और तेज हवाओ वाले एक सवेरे राष्ट्रपति जानसन एव उनकी पत्नी ने इन्दिरा का, जो वरजीनिया प्रदेश के विलियम्सबर्ग देहात मे रात बिताकर हेलीकोप्टर से सीधे वही चली आ रही थी, व्हाइट हाउस के लान पर स्वागत किया। श्रीमती जानसन ने उसे अमेरिकी ब्यूटी गुलाबो का गुलदस्ता भेंट

किया । बैण्डबाजे पर भारतीय राष्ट्र-गान की और अमेरिकी राष्ट्रगीत की धुनें बजाई गई ।

विशिष्ट अतिथियो के सम्बन्ध मे, जैसा कि रिवाज है, स्वयं राष्ट्रपति जानसन और सेना के एक जनरल इन्दिरा को सम्मान-गारद के निरीक्षण के लिए ले गए। अपने दोनों लम्बे अनुरक्षको के बीच वह बहुत ही छोटी और नाजुक लग रही थी। राष्ट्रपति ने अमरीका मे उसका स्वागत करते हुए जो भाषण दिया, इन्दिरा ने उसका वाग्मितापूर्ण प्रत्युत्तर दिया ।

उसके बाद शेष औपचारिक काम सम्पन्न होते रहे। अतिम समारोह था हमारे चचेरे भाई बी० के० नेहरू (जिन्हें हम लोग बिज्जू कहते हैं) और उनकी पत्नी फोरी द्वारा दिया गया भोज । उन दिनो वह अमरीका मे भारत के राजदूत थे। उपराष्ट्रपति हम्फ्री और उनकी पत्नी उस भोज मे सम्मानित अतिथियो के रूप में आमत्रित थे ।

भोज के कुछ ही पहले राष्ट्रपति जानसन बिलकुल अप्रत्याशित रूप से वहा आ गए, इसलिए सारा इन्तजाम ही गड़बड़ा गया । यात्रा पर आये हुए किसी भी देश के राज्य-प्रमुख का प्रत्यामत्रण स्वीकार करने का उनका नियम न था; लेकिन इन्दिरा से वे इतने प्रभावित हुए कि उससे पुन मिलने और वार्तालाप करने का मोह सवरण न कर सके ।

मैं वहां थोड़ा जल्दी ही पहुंच गई थी । जाकर देखा तो पूरा मकान गुप्तचर विभाग के लोगो से भरा हुआ था । बिज्जू और फोरी ने मुझे राष्ट्रपति से मिलाया। इन्दिरा सिन्दूरी रंग की साडी पहने उनके पास बैठी थी । इधर भोज का समय

हो गया, मगर उनकी बाते थी कि खत्म ही नही हो पा रही थी। मेजबान आकुल-व्याकुल और ऊपर से यह चिन्ता सवार कि मेहमान लोग मकान के अन्दर आयंगे कैसे, क्योकि सारा रास्ता तो राष्ट्रपति और उनके सुरक्षा-अधिकारियो की मोटरों ने छेक रखा था। अन्त में फोरी ने राष्ट्रपति से भोजन के लिए रुक जाने का अनुरोध किया। उन्होने पहले तो यह कहकर आपत्ति की कि दावत की पोशाक नही पहने हैं, काम-काज के इन कपड़ो से शरीक होना अवसर के उपयुक्त न होगा, मगर फिर राजी हो गए। उन्होने अपनी पुत्री लूसी को घर जाने और साथ मे इन्दिरा के दोनों पुत्रो को भी ले जाने के लिए कह दिया। लूसी जानसन को उस शाम कहीं जाना था। वह दोनो बच्चो को ब्लेयर हाउस छोडती गई। इस बीच फोरी की खूब कसरत हो गई। मेज पर बैठने के तमाम कार्डो का सिलसिला उसे नये सिरे से जमाना पडा।

राष्ट्रपति के आदेश से जब रास्ते पर से उनकी और सीक्रेट सर्विस वालो की तमाम मोटरे हटा ली गई तो मेहमान लोग अन्दर आने लगे—आभूपणो से सज्जित भडकीले पेरिशियन गाउन धारण किये महिलाए और काली टाइया बांधे भद्र लोग। उन्होंने राष्ट्रपति को कामकाजी लिवास मे देखा तो एकदम भौचक ही रह गए। खाने की मेज पर भी उन्होने इन्दिरा को किसी और से बात करने का मौका नही दिया। उसके सम्मान का जाम पीते समय उन्होने बहुत बढिया भाषण दिया। बोले, "मैं भी क्या आदमी हूं! आया था बाते करने, बैठ गया खाना खाने!" इन्दिरा ने भी उतना ही सुन्दर जवाब दिया।

दूसरे दिन राष्ट्रपति के विमान द्वारा इन्दिरा और मैं न्यूयार्क गई। वहां न्यूयार्क के इकानामिक क्लब की ओर से आठ सौ अतिथियो का विशाल भोज था, जहां इन्दिरा-अपने भाषण मे, बिना पूर्व तैयारी के जो समय पर सूझ गया, बोली। कुछ तो उसके आकर्षक व्यक्तित्व और बहुत कुछ भारत की नीति और आदर्शों को बडे ही स्पष्ट ढग से प्रस्तुत करने की उसकी प्रतिभा के कारण श्रोताओ को भाषण बहुत पसन्द आया और उन्होंने बार-बार हर्षध्वनि की।

राष्ट्रपति जानसन से इन्दिरा की बातचीत के फलस्वरूप भारत-अमेरिकी सम्बन्धो में काफी सुधार हुआ। उसने गरीबी के कारण भारतीय जनता के कष्ट, अनावृष्टि के कारण फसलों का मारा जाना और कृषि-उत्पादन को बढ़ाने के लिए किये जा रहे प्रयत्नो और प्राथमिकताओ के बारे में उन्हे विस्तार से बताया। खाद्यान्नों की कमी का मुकाबला करने के लिए उसने सहायता मे वृद्धि करने की इच्छा व्यक्त की। राष्ट्रपति ने १९६६ के लिए ५० करोड डालर की अतिरिक्त सहायता का वचन दिया। (सितम्बर १९६४ से सितम्बर १९६६ तक के दो वर्षो मे अमेरिका ने १ १ अरब डालर मूल्य से भी अधिक का खाद्यान्न भारत को भेजा था।)

इन्दिरा का अमेरिकी-यात्रा पर 'वाशिगटन पोस्ट' के स्तम्भ-लेखक विलियम व्हाइट ने, जिसे भारत का मित्र तो कदापि नही कहा जा सकता, लिखा था :

"जानसन-प्रशासन मे राज्य-प्रमुखों के अभी तक के किसी भी सम्मेलन मे इतने अधिक लोगो के लिए इतनी ज्यादा बात सम्पादित न हो सकी जो श्रीमती इन्दिरा गाधी के साथ

राष्ट्रपति की वार्ता से हुई। सक्षेप मे यह कि वह भारत की आधुनिक विचारो की मताग्रह-विहीन नेता है और बने रहना चाहती है—बेशक हमारी जेब मे नही, परन्तु हमारे गलो पर भी नही।"[१] और 'टाइम' पत्र ने यह टिप्पणी की थी

"श्रीमती गांधी की यात्रा का परिणाम मुख्य रूप से अमेरिका और भारत के बीच पारस्परिक समझ और सद्भाव बढाने वाली नई मन·स्थिति के रूप मे हुआ है। सप्ताह-भर की अपनी वार्ताओ के मध्य दोनो इस निर्णय पर पहुँचे कि दोनो का लक्ष्य लगभग एक ही है और एक-दूसरे से अधिक अपेक्षाएं किये बिना काफी काम किया जा सकता है। श्रीमती इन्दिरा गाधी ने, जैसाकि राष्ट्रपति ने उनके बारे मे कहा कि उन्होंने अपने-आपको 'बहुत स्वाभिमानी, बहुत शालीन और बहुत योग्य महिला' ही नही सिद्ध किया बल्कि "वे बिलकुल अपने ही ढग की दृढ निश्चय वाली, घोर स्वाधीनचेत्ता शासक भी हैं।"

वाशिगटन से इन्दिरा वायुमार्ग से लन्दन और पेरिस और तब मास्को गई और वहां उसने कोसीजिन और ब्रेजनेव से भेंट और चर्चा की। इस यात्रा से लौटकर भारत आई तो यहां की मुसीबतें उसका रास्ता ही देख रही थी। खाद्यान्न की समस्या सर्वोपरि हो गई थी। उत्तरप्रदेश और बिहार के काफी बडे हिस्सो मे अकाल और भूखमरी फैली हुई थी। १९६५ मे खाद्यानों की देशव्यापी उपज १ करोड ५० लाख टन कम हुई थी। सग्रह और वितरण का उचित प्रबन्ध न होने से समस्या और भी उग्र हो गई थी। सुदूर दक्षिण के केरल प्रदेश में अन्न के अभाव मे दगे हो गए और दूसरी तरफ आन्ध्रप्रदेश जैसे राज्य थे, जो अपना अतिरिक्त चावल कमी

वाले राज्यो को देने के लिए कतई तैयार नही थे ।

इन्दिरा स्वयं कृषि-उद्योग का कायाकल्प करने के काम मे जुट गई । उसने सघन खेती, उर्वरकों के व्यापक उपयोग और अनाज के व्यापार की विधियों को उन्नत करने के तरीकों का पता लगाने के लिए अध्ययन-दल नियुक्त किये । भारत के कृषि-विशेषज्ञों को कृषि-उत्पादन वढाने एवं अनाज की किस्मो को सुधारने की योजनाए बनाने के लिए कहा गया । अमेरिका ने अपने यहां से विशेषज्ञो को सलाह देने के लिए भेजा । उद्योग-धन्धों के विकास की मुख्य समस्या थी प्रबन्ध-कौशल की कमी; इसके लिए देश के प्रमुख युवा व्यवसायियों को नई दिल्ली वुलाकर भारतीय तकनीक को उन्नत करने के लिए आवश्यक नीतियां निर्धारित करने का काम सौपा गया ।

भाषाओ की विविधता और भाषावार प्रान्त बनाने की मांग को लेकर भी काफी वडे पैमाने पर दंगे हो रहे थे । संसदीय समिति ने, जिसके सदस्यो में इन्दिरा भी थी, अलग से पजाबी-भाषा राज्य बनाने की मांग को मजूरी दी । हिन्दुओं ने इसके खिलाफ प्रदर्शन किया और उपद्रव की आग दिल्ली मे भी फैल गई । हिन्दुओ की एक भीड ने चादनी चौक के गुरुद्वारे को घेर लिया और उसे लूटने तथा तोड-फोड करने पर आमादा हो गए । गुरुद्वारे के सिख पहरेदारो ने कृपाणे खीच ली और निहत्थी भीड़ पर पिल पडे । आखिर सरकार को हस्तक्षेप करना पड़ा; उपद्रवों को दबाने के लिए पुलिस भेजी गई । इन्दिरा स्वय गुरुद्वारे के क्षेत्र मे गई । वहां एक भाषण मे उसने उपद्रवियो को खूब फटकारा । उसने कहा :

"मेरी आंखो मे आसू नही, मेरे दिल मे गुस्सा है । स्वत-

त्रता की लडाई लड़ने वाले सैकडो-हजारो वीरो ने क्या इसी फूट और अराजकता के लिए इतनी सारी कुर्बानियां दी है ?"

भारत के धुर उत्तरी कोने मे एक नई तरह का ही वखेडा उठ खडा हुआ था। भारत, पाकिस्तान और वर्मा के सीमान्त-प्रदेश मे रहने वाले नागा और मिजो लोग अपने स्वायत्त राज्य की माग करने लगे। जिस क्षेत्र मे वे रहते थे वह दुर्गम पहाडी क्षेत्र था। पाकिस्तान ने उन्हे हथियार दिये और छापा-मार लडाई मे प्रशिक्षित कर दिया। विद्रोही आतकवादी कार्रवाइयो मे जुट गए—ट्रेनो को उडाना, पुलो को तोड़ना और इस तरह असम का शेष भारत से सम्बन्ध-विच्छेद करना उनका मुख्य लक्ष्य था।

इन्दिरा ने वायुसेना को विद्रोही बस्तियो पर बम बरसाकर विद्रोह को कुचलने के आदेश दिये। राज्यपाल से चर्चा कर समझौते का हल खोजने के लिए वह स्वय असम गई और परिणामस्वरूप विद्रोहियो के प्रतिनिधियो को चर्चा के लिए आमन्त्रित किया गया। परन्तु पाकिस्तान और चीन द्वारा उकसाते रहने के कारण समझौता न हो सका।

काग्रेस की कार्यकारणी समिति और सिडीकेट के कुछ सदस्यो ने जनवरी मे इन्दिरा की उम्मीदवारी का इस खयाल से समर्थन किया था कि वह उनकी राजनैतिक महत्त्वा-कांक्षाओ के अनुकूल रहेगी, लेकिन शीघ्र ही उन्हे पता चल गया कि यह तो अपने ही मन की करती है, न किसी की सुनती हैं और न किसी से सलाह लेती है। असल मे इन्दिरा ने अपने-आपको अखिल भारतीय स्तर के राष्ट्रीय नेता के रूप मे स्थापित करने का फैसला कर लिया था। पार्टी पर

उसकी पकड मजबूत नही थी, इसलिए जनता मे अपनी साख बढाकर लोकप्रिय होते जाना ही उसके आगे एकमात्र रास्ता था। लेकिन जवाहर की तरह निर्विरोध नेतृत्व की मजिल अभी उससे बहुत दूर थी।

इधर पार्टी बराबर उसके रास्ते मे अडगे डालती रही, उधर सभी नये-पुराने दल कांग्रेस पार्टी को बदनाम करने की कोशिश मे जुट गए।

मई १९६६ मे काग्रेस पार्टी-मीटिग मे सदस्यो ने उसकी खाद्यनीति की कड़ी आलोचना की। उनका कहना था कि वह सकट के हल के लिए अनाज के आयात पर बहुत ज्यादा निर्भर करती है। कुछ ने यह राय जाहिर की कि विदेशी सहायता राष्ट्र के स्वावलम्बी होने की इच्छा का दमन करती है। सबने मिलकर उसपर यह आरोप लगाया कि वह पूरी तरह अमेरिका की अनुगामिनी हो गई है। यह नारा दिया गया कि बहुत बडे पैमाने पर विदेशी सहायता लेने के बजाय हमे आत्मनिर्भर होना चाहिए।

इन्दिरा पर इसलिए भी प्रहार किया गया कि उसने शिक्षा के लिए भारत-अमरीकी प्रतिष्ठान (इण्डो-अमेरिकन फाउण्डेशन) का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया था। सदस्यो का यह आरोप था कि इस तरह का प्रतिष्ठान छद्मरूप से अमरीकी गुप्तचरी (सेंट्रल इटेलिजेन्स एजेन्सी) का अड्डा बन जायगा। लेकिन जब उसपर अपने पिता की गुटो मे शरीक न होने की नीति छोडने का आरोप लगाया गया तो वह जब्त न कर सकी और लगी अपने आलोचको को आडे हाथो लेने। उसने कहा कि लोगो को मालूम होना चाहिए कि मेरे पिता

की विदेश-नीति परिस्थितियो के अनुसार लचकीली हुआ करती थी और अन्त मे उसने सभी आलोचको को लताड दिया :

"अगर आप लोगो को मेरा तरीका पसन्द नही है तो अपना नया नेता चुन लीजिए। मुझे हटा दीजिये।"

एकदम सन्नाटा छा गया। इस चुनोती को स्वीकार करने की आलोचको की हिम्मत न हुई। अखबारो ने उसके इस आचरण की खूब सराहना की। उन्होने इसे 'नेहरू-चरित्र के प्रत्यावर्तन' की संज्ञा दी।

जून मे जब भारतीय रुपए के ३६ प्रतिशत अवमूल्यन की घोषणा हुई तो इन्दिरा की नीतियो की चतुर्दिक् आलोचना होने लगी। राजा और मैं उस समय अमेरिका मे थे और हमने वही रेडियो पर यह खबर सुनी। हमे यह बात मालूम थी कि विश्व बैंक बरसो से भारतीय मुद्रा के अवमूल्यन पर जोर देता आ रहा था और भारत के सभी वित्त-मत्री बराबर इस दबाव का विरोध करते रहे थे। राजा विक्षुब्ध हो गए और उन्होने बिज्जू नेहरू को वाशिगटन फोन मिलाया। ब्रिज्जू ने बताया कि उन्होने अभी-अभी इन्दिराजी को इस साहसपूर्ण निर्णय के लिए बधाई का तार भेजा है। उन्होने कहा कि समस्या तो यह है कि "अवमूल्यन नही तो सहायता भी नही।" राजा का तर्क था कि जिस भारत के कुल निर्यात का ८० प्रतिशत कच्चा माल होता है वह ज्यादा विदेशी मुद्रा कमाने और अपने व्यापार सन्तुलन को सुधारने के लिए निर्यात की मात्रा को बढा नही सकता।

हिन्दुस्तान मे इस घोषणा से तहलका ही मच गया।

कांग्रेस-अध्यक्ष और अन्य नेताओं ने इन्दिरा की सार्वजनिक रूप से और खुलकर आलोचना की। लेकिन इन्दिरा ने जो भी किया था, खूब सोच-समझकर और उपयुक्त परामर्श के बाद ही किया था।

अगले साल निन्दको को उस पर प्रहार करने के और भी कारण मिल गए। इस बार भी वर्षा कम हुई, जिससे अन्न का उत्पादन और घटा और परिणामस्वरूप चारो ओर उपद्रव शुरू हो गए। अनियन्त्रित मुद्रास्फीति और उसके कारण निर्वाह-खर्च मे लगातार वृद्धि होते जाने के खिलाफ हड़ताले और उग्र प्रदर्शन होने लगे। आर्थिक विकास के सारे कार्य-क्रम ठप्प हो गए। छात्रो के आन्दोलन रोजमर्रा की बात हो गए। विरोधी दल इधर तो जनता को कानून तोडने के लिए उकसाते और उधर पुलिस-ज्यादतियो के खिलाफ अदालती जांच की मांग करने लगते। कम्युनिस्टो से लेकर घोर दक्षिणपन्थी प्रतिक्रियावादियो तक सभी का एक ही उद्देश्य था—जैसे भी हो कांग्रेस को इतना बदनाम कर दो कि १९६७ के आम चुनावो मे वह जीत ही न सके। और इस सबके मुकाबले कांग्रेस पार्टी की बैटकों में तू-तू मैं-मैं और आपसी उठा-पटक के सिवाय और कुछ नही होता था। प्रशासन पर से लोगो का विश्वास उठ चला था। लेकिन इन्दिरा ने फिर भी हिम्मत न हारी और जनता मे अपने विश्वास को बनाये रखा। देश के हित को ही वह सर्वोपरि स्थान देती रही।

अनाज की कमी, निम्न वेतन और असन्तोपजनक जीवन-स्तर आदि के खिलाफ कल-कारखाने के मजदूरो तथा सर-कारी कर्मचारियो की हड़ताले बराबर जोर पकड़ती गई।

जो उद्योग-संचालक या कारखाना-मालिक 'बन्द' को मानने से इन्कार करते, उनके खिलाफ हिंसक प्रदर्शन होने लगते।

भारत मे शिक्षा का स्तर बरसो से गिरता चला आ रहा था। अशान्ति के उस युग मे विद्यार्थी शुल्क घटाने, परीक्षाओ के स्तर को गिराने और औसत से कम अक प्राप्त करने वालों को भी डिग्रियां देने की मांग करने लगे। विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयो मे ऐसे छात्रो की भीड़ बढने लगी जिनका लक्ष्य शिक्षा प्राप्त करना नही, नौकरियो के लिए सिर्फ प्रमाण-पत्र हासिल करना था। शिक्षक-विद्यार्थी-सम्पर्क तो जैसे नाम को भी नही रह गया था।

भारत की जन-सख्या मे निरन्तर वृद्धि के कारण अनाज के आयात को बढ़ाते जाना और जारी रखना आवश्यक था। अवमूल्यन के कारण आयातित विदेशी अनाज के लागत-दाम बढ़ जाने से उसका बिक्री-मूल्य भी बढाना पड़ा, जिससे लोगो के असन्तोष मे और भी वृद्धि हुई। भारत मे आबादी बढने का कारण (ईसाई समाज की तरह भारतीय जनता में निरोध के कृत्रिम उपायो के प्रति धार्मिक आपत्ति अथवा पूर्वाग्रह नही है) परिवार-नियोजन के उपायो की विफलता नही, चिकित्सा-सुविधाओ का विस्तार और उन्नति ही थी। सरकार की स्वास्थ्य-सेवा परियोजनाओं और उन्नत चिकित्सा-सुविधाओं के परिणामस्वरूप वयस्क और बालमृत्यु-दरो मे बहुत कमी हो गई। भारतीयो की सामान्य आयु-मर्यादा सत्ताईस वर्ष से बढ कर पैतालीस वर्ष हो गई।

भारत की सबसे विकट समस्या २३ करोड बेकार गायों को रखना और खिलाना था। आर्यो के आदिम समाज में

दूध देने वाली गाय पूजनीय और उसका गोठ मन्दिर होता था। शायद इसीलिए कालान्तर मे पुरातन हिन्दू समाज मे गाय पवित्र और रक्षित मानी जाने लगी। किसी भी कृषि-प्रधान देश की अर्थव्यवस्था मे दुधारू पशुओ का स्थान आवश्यक और महत्त्वपूर्ण होता है। लेकिन बेकार 'पूज्य और पवित्र' गायों को खिलाना लाखों भूखें परिवारो के मुह का कौर छीनना ही है।

जनसंघ ने हिन्दू भावनाओं को उभारने के लिए गौ-वध पर प्रतिबन्ध लगाने का आन्दोलन छेड़ दिया। आन्दोलनकारियों का उद्देश्य केन्द्रीय सरकार को मुसीबत मे डालना और बदनाम करना था। इसलिए उन्होने जान-बूझकर गौवध पर प्रतिबंध लगाने की मांग राज्य-सरकारों के सामने नही रखी, क्योंकि कृषि-सम्बन्धी कानून बनाने का अधिकार केवल उन्ही को था। जनसंघ ने यह मांग केन्द्रीय सरकार से की और इसके लिए दिल्ली में प्रदर्शन करने की योजना बनाई।

संसद्-भवन के सामने, जहां कि लोकसभा का अधिवेशन हो रहा था, प्रदर्शन करने के लिए जनसंघ हजारो की सख्या मे साधुओं को दिल्ली लाया। दुर्भाग्य से उस समय के गृह-मंत्री गुलजारीलाल नन्दा की साधुओं मे परम भक्ति और श्रद्धा थी। उन्होंने साधुओं के अखिल भारतीय संगठन साधु समाज का अध्यक्ष बनना भी स्वीकार कर लिया था। उनका दृढ़ विश्वास था कि चराचर की खैर मनाने वाले साधु कोई ऐसा काम नही कर सकते जिससे शान्ति भग हो, और इसलिए उन्होंने उन लोगो के उग्र प्रदर्शन की रोक-थाम के लिए कोई भी कदम उठाना आवश्यक नहीं समझा।

७ नवम्बर को चीखते-चिल्लाते और नारे लगाते हुए कुछ अधनगे साधुओ की भीड़ ने, जो त्रिशूल, फरसे और छुरे लिये हुए थी, मोटरो को जलाना, सरकारी इमारतों मे आग लगाना और राह-चलते लोगों पर घातक हमले करना शुरू कर दिया। कुछ उन्मत्त उपद्रवी कांग्रेस-अध्यक्ष कामराज के मकान पर चढ दौडे और वे बडी मुश्किल से अपनी जान बचा पाये। एक मत्री के बंगले मे आग लगा दी। अब कही जाकर नन्दाजी चेते और पुलिस को बुलाया; लेकिन इतनी देर हो चुकी थी कि मूल्यवान सरकारी सम्पत्ति और अभिलेखो के विनाश को वह भी न रोक सकी।

इन्दिरा ने, जो बिहार के सूखाग्रस्त इलाको का दौरा करके लौटी ई थी, लोकसभा में कहा, "यह हमला सरकार पर नही, हमारी जिन्दगी के तरीके पर सीधी चोट है।" उसने सदन को आश्वासन दिया कि भविष्य में इस तरह की हिसा का सख्ती से दमन किया जायगा। कांग्रेस पार्टी ने गृह-मंत्री को हटाने की मांग की। पार्टी के पुरातनपथी इन्दिरा पर हावी होने का मौका एक अर्से से देख ही रहे थे। उन्हे अच्छा अवसर मिल गया। फौरन मंत्रिमंडल मे परिवर्तन करने की माग पेश कर दी। इन्दिरा स्वयं भी कुछ मन्त्रियो को हटाना चाहती थी, जिन्हे प्रधानमत्री बनते समय उसपर थोप दिया गया था, लेकिन उसे इसमें आंशिक सफलता ही मिली। नन्दाजी की जगह चव्हाण को दे दी गई, लेकिन जिन दो और मंत्रियो को वह हटाना चाहती थी, उन्हे हटा न स ी।

इस समय कांग्रेस के अन्दर इन्दिरा के प्रति सदस्यों के विश्वास की मात्रा निरन्तर कम होती जा रही थी। यहां तक

कहा जाने लगा था कि पार्टी उससे अपना समर्थन वापस ले लेगी। "वह अच्छी जरूर है, मगर उससे काम चलेगा नही," एक संसद्-सदस्य का कहना था। और बताया जाता है कि कामराज ने कहा था, "बड़े बाप की बेटी, छोटे आदमी की बड़ी भूल हो गई।" छोटे आदमी से उनका अभिप्राय अपने-आप से था, क्योकि उन्होने इन्दिरा का पूरी तरह समर्थन किया था। समाचारपत्रो ने भी प्रतिकूल टिप्पणियां लिखी। साधुओ की हिसक कार्रवाइयो से क्षुब्ध होकर 'इण्डियन ऐक्सप्रेस' के सम्पादक फ्रैंक मोरेस ने लिखा था, "इतनी देर हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहने का नतीजा आखिर अनर्थकारी ही होना था।"

कम्युनिस्टो से प्रेरित और प्रभावित होकर सारे देश के विद्यार्थियों ने १८ नवम्बर को संसद् पर मोर्चा ले जाने की योजना बनाई। इस बार जरूर कोई उपद्रव नही हुआ और सारा काम शान्ति से निपट गया, क्योकि नये गृहमत्री चव्हाण ने किसी भी संभावित खतरे का मुकाबला करने के लिए पुलिस और सेना का पहले से ही उचित प्रबन्ध कर दिया था।

जब साधुओ वाली चाल सफल न हुई तो जनसंघ ने दूसरे तरीके अपनाये। गौवध पर प्रतिबंध लगाने का कानून बनाने के लिए सरकार पर दबाव डालने के इरादे से उसने पुरी के जगद्गुरु शकराचार्य को आमरण अनशन करने के लिए दिल्ली बुलाया। हिन्दुओं के चार प्रसिद्ध, पवित्र और मान्य पीठो मे से एक के अधिष्ठाता का अनशन शुरू होते ही दर्शनार्थियों का ताता लग गया। इस आशका से कि कही उपद्रव न हो जाय, सरकार को उन्हे गिरफ्तार कर पांडीचेरी भेज देना पडा, जहां उन्हें सरकारी अतिथि के रूप में रखा गया। अन्त में

अपने अनुयायियों के आग्रह पर उन्होने अनशन तोड़ दिया। इन हथकण्डो से जनसंघ को लाभ के बजाय हानि ही हुई; भले लोगो में उनके मतदाताओं की सख्या कम हो गई।

सूखे के कारण अकाल की समस्या सर्वोपरि थी। अमेरिका से आवश्यक मात्रा मे अनाज नही आ रहा था, कारण शायद यह था कि इन्दिरा उत्तरी वियतनाम पर अमेरिकी बमबारी रोकने की बात निरन्तर कहे जा रही थी। उसने आस्ट्रेलिया, कनाडा और फ्रान्स से गेहू खरीदने की बात चलाई। देश मे उसने सभी दलों से अनुरोध किया कि लोगों को भुखमरी से बचाने के काम में वे सरकार से सहयोग करें।

१९६६ का साल भारत के आर्थिक और राजनैतिक विकास की दृष्टि से निश्चय ही बडे संकट का साल था। इन्दिरा बराबर भारतीय अर्थ-व्यवस्था की उन्नति के उपाय खोजती और उन्हें वेग देती रही। उसके आलोचकों की कमी नही थी; लेकिन कोई लाख आलोचना और विरोध करे, आखिर तो वह नेहरू थी और सामान्य जन पर उसकी बात का असर पडता ही था। सारी कांग्रेस पार्टी मे मतदाताओ को उसकी तरह प्रभावित करके मत प्राप्त कराने वाला दूसरा कोई नेता नही था।

२४

१९६७ के आम चुनाव

•

अपने पिता की ही तरह इन्दिरा का विश्वास आर्थिक और सामाजिक सुधारों के लिए समाजवाद के क्रमागत रूप पर ही नही, मुक्त उद्यम पर भी है। उसकी नीतियां अखिल भारतीय कांग्रेस के उद्देश्य 'संसदीय लोकतंत्र पर आधारित समाजवादी राज्य' से पूरी तरह मेल खाती हैं। यह स्थिति आज ही नहीं, १९६६ मे भी थी। लेकिन फिर भी अप्रैल १९६६ मे कृष्ण मेनन ने "अपने पिता की नीतियो से खतरे की सीमा तक दूर चले जाने" का आरोप लगाकर उसकी कड़ी आलोचना की थी।

देश मे गरीबी मिटाने के लिए इन्दिरा गांधीजी के बताये हुए रास्ते पर चलना पसन्द करती थी, विदेशी मामलो में जवाहर की स्वतंत्रता और किसी गुट मे शरीक न होने की नीति को बनाये रखने की वह कोशिश करती रहती थी। १९६६ के अक्तूबर महीने में नई दिल्ली में यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति टीटो और सयुक्त अरब गणराज्य के राष्ट्रपति नासिर से इन्दिरा ने चर्चा की और तीनों ने एक संयुक्त

वक्तव्य के द्वारा उत्तरी वियतनाम पर अमेरिकी बमबारी को बिना शर्त और तत्काल बन्द कर देने की बात कही। इस वक्तव्य से और इन्दिरा बमबारी की पहले जो निन्दा कर चुकी थी उससे, भारत-अमेरिकी सम्बन्धो मे काफी तनाव आ गया। अमेरिका ने भारत को अन्न की सहायता देना तो जरूर बन्द नही किया, परन्तु उसमे देर और अडगेबाजी होने लगी।

कुल मिलाकर १९६६ का पूरा साल भारत के लिए दुर्भाग्यपूर्ण ही रहा। हमारे राष्ट्र को बडी-बडी कठिनाइयों का सामना करना पडा। एक वार फिर सूखा पड गया; अनाज की कमी के कारण उपद्रव हुए, खास तौर पर केरल और पश्चिमी वंगाल मे, और साल का अन्त होते-होते बिहार, उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश में भी, विद्यार्थियो के उग्र प्रदर्शन और उनके द्वारा सार्वजनिक सम्पत्ति का विनाश; ससद्-भवन के प्रवेश-द्वार पर साधुओ के हिंसक दंगे का घृणित काण्ड, मद्रास, पंजाब और नई दिल्ली मे भाषा के प्रश्न पर हिंसक उपद्रव, कृषि-उत्पादन मे कमी, औद्योगिक मन्दी और आर्थिक विकास का गत्यावरोध, विदेशी मुद्रा की सचित निधि का चिन्तनीय रूप से कम होते जाना, एक ऐसी नई और अव्यावहारिक पचवर्षीय योजना का बनाया जाना, जो अपने निर्धारित लक्ष्यो को कभी पूरा कर ही नही सकती, रुपये के अवमूल्यन का (२१ सेंट से १३ ३ सेंट) प्रवल विरोध; मुद्रा-स्फीति और उपभोक्ता वस्तुओ के मूल्यो मे भारी वृद्धि और इस सबके ऊपर असम के नागा और मिजो पर्वतीय क्षेत्रो के कवाइलियों का विद्रोह।

कुछ मामलो मे भारत की स्थिति दूसरे देशों से मिलती-

जुलती थी। इन्दिरा ने समानताओं का उल्लेख करते हुए कहा था, "आज दुनिया का ऐसा कौन-सा देश है जहां अशान्ति और अन्दरूनी झगड़े नही हैं? क्या अमेरिका में जातीय (काले लोगों के वर्णभेद सम्बन्धी) दंगे, विद्यार्थियों के प्रदर्शन और हिंसात्मक कार्रवाइयां नही होती? क्या जापान मे छात्रों के दगे नहीं हो रहे? क्या ब्रिटेन बीटनिको एव मजदूरों की हड़तालों से त्रस्त नहीं है? हम अपने विकास की ऐसी संक्रमणावस्था में पहुंच गये हैं जहां अवसाद और कुढन से निकलने के लिए जोरदार प्रयत्न करना ही होगा।"

लेकिन भारत के राजनैतिक नेताओं का इस तरह के प्रयत्न की ओर कोई ध्यान नहीं था। कांग्रेस पार्टी के जिन असन्तुष्ट सदस्यों ने आशा लगा रखी थी कि इन्दिरा स्वयं कोई निर्णय नही कर पायेगी और हमेशा उनकी मांग के आगे झुकती चली जायगी, उन्हे देश की विपत्तियो और कठिनाइयो के रूप मे अच्छा-खासा हथियार मिल गया। लेकिन इन्दिरा किसी की भी परवाह किये बिना देश का आधुनिकीकरण करने की अपनी राह पर दृढतापूर्वक बढती चली जा रही थी। कांग्रेस पार्टी मे उसके अपने अनुयायियो की संख्या नगण्य होने से पार्टी नेताओं के साथ सम्बन्ध बनाये रखने में उसे जरूर कठिनाई होती थी। फिर उसके कट्टर समालोचकों की भी कमी नही थी, जो सलाहकारो के चुनने के उसके अधिकार को भी बराबर चुनौती देते रहते थे। व्यापक भ्रष्टाचार और भाई-भतीजावाद की दलदल मे फसकर देश की अर्थव्यवस्था की गति एकदम अवरुद्ध हो गई थी, लेकिन पार्टी के सदस्यों को सिर्फ निजी लाभ, अपनी व्यक्तिगत

सत्ता और अकेले अपनी तरक्की की पड़ी थी, देश की तरक्की से उन्हें कोई मतलब नही था। मार्च १९६७ मे होने वाले आम चुनावो के लिए उम्मीदवारो के चयन के सवाल पर वे आपस मे झगडते और सौदेबाजी करते रहे। असन्तुष्ट और नाराज गुटो की कमी न केन्द्र मे थी और न राज्यों मे। ये लोग पुराने खुर्राट और घोर अनुदार विचारों के थे; और सिर्फ ऐसे ही उम्मीदवारों को पार्टी का टिकट देना चाहते थे जो उनकी मुट्ठी मे रहे और जी-हजूरी करे।

कांग्रेस पार्टी बीस बरस तक देश पर शासन कर चुकी थी। हाल के बरसों मे उसके अखण्ड राज्य और सत्ता की उसकी अन्धी दौड के खिलाफ असतोप फैलने लगा था। प्रशासन पूरी तरह भ्रष्ट हो चुका था। मंत्रिगण एवं उच्च पदाधिकारियों, व्यापारियो और उद्योगपतियो के सरकारी काम करने के एवज मे उनके प्रतिष्ठानो मे अपने बेटो या रिश्तेदारों के लिए ऊंची नौकरियों की माग करने लगे थे। सारे भारत मे गहरा असन्तोष फैला हुआ था। इस असन्तोप के कारण नई-नई राजनैतिक पार्टियो की लहर ही आ गई।

विरोधी दलो को मनचाहा अवसर मिल गया। कांग्रेस को पछाडने और सत्ता हथियाने के अपने मनसूबो को वे धूमघड़ाके के साथ जाहिर करने लगे। इन दलों मे उग्रतम वामपक्षी कम्युनिस्टो से लेकर घोर प्रतिक्रियावादी दक्षिणपन्थी तक सभी सम्मिलित थे। कम्युनिस्टो का एक फिरका मास्कोपरस्त और दूसरा चीन-परस्त था। सोशलिस्ट भी अलग-अलग दो गुटो मे बटे हुए थे।

दक्षिणपन्थी दल भी दो थे, लेकिन दोनो के उद्देश्यो में

बड़ा अन्तर था। जनसघ हिन्दू प्रतिक्रियावादियो की दकियानूसी पार्टी थी; ७ नवम्बर को नई दिल्ली मे साधुओ का उपद्रव इसी ने कराया था। स्वतत्र दल मुख्यत बडे-बडे व्यवसायियों और उद्योगपतियो के हितो का प्रतिनिधित्व करता था; पश्चिमी शक्तियो के साथ मैत्री का समर्थक होने के कारण इसे अमेरिका मे थोडी मान्यता मिली हुई थी।

स्वतत्र दल की स्थापना १६५६ में च० राजगोपालाचारी (राजाजी) ने की थी, जो कभी कांग्रेस के नेता थे और बाद में मद्रास राज्य के मुख्य मत्री भी रहे। वे अपने पुराने साथियो के कटु आलोचक हो गए थे। (अब वे सौ बरस के आस-पास हैं। भारत मे, दुर्भाग्य की बात है कि बहुत बूढा हो जाने पर भी कोई राजनीति से निवृत्त होना नही चाहता।) स्वतंत्र दल के सदस्यो मे पुराने जमाने के उच्चपदस्थ सरकारी कर्मचारी भी हैं जो देश की स्वतंत्रता के पहले अंग्रेजो से सहयोग करते रहे और अपने कथित 'अनुभव' के कारण सिर्फ इसलिए बहाल रहे कि प्रशासकीय स्थिरता को बनाये रखे। सेवा-निवृत्ति के बाद वे विदेशी व्यवसायो के 'बिचौलिये' बन गए। जिस कांग्रेस ने उनपर इतनी कृपा की थी उसी की जड़ खोदने के लिये वे दल बांधकर राजनीति मे घुस आये। ये लोग 'नये देशभक्त' थे।

पुरानी रियासतो के राजे-रजवाडे भी स्वतंत्र दल में शरीक हो गए। वे कांग्रेस से इसलिए नाराज थे कि स्वतत्रता के बाद उन्हे अपनी रियासतो की कुल आय का केवल कुछ ही प्रतिशत दिया जाता था, जब कि पहले पूरी आय वसूल कर वे स्वय रख लिया करते थे। अपने-अपने क्षेत्र के मतदाताओ

पर उनका बड़ा प्रभाव था, क्योंकि भारत मे अब भी राजाओं को 'पृथ्वीपति', 'प्रजा का पिता और पालनहार' और 'अन्न-दाता' समझा जाता था, जिसकी हर आज्ञा का पालन करना प्रजाजन का परम कर्त्तव्य था।

इक्की-दुक्की पार्टियां और भी थी। द्रविड मुन्नेत्र कड़गम (द्रमुक या डी०एम०के०) का कार्य और प्रभाव-क्षेत्र दक्षिण मे सिर्फ मद्रास राज्य तक सीमित था। यह द्रविडों के लिए एक अलग स्वायत्तशासी राज्य चाहता था। इसकी एक मांग यह भी थी कि हिन्दुस्तानी को भारत की राष्ट्रभाषा न बनाया जाय। राजाजी ने इस मांग का समर्थन किया, यद्यपि मद्रास के स्कूलों मे हिन्दी पढ़ाने की व्यवस्था स्वय उन्होने करवाई थी। द्रमुक की दूसरी मांग यह थी कि अंग्रेजी को राज्यो के बीच सम्पर्क की भाषा के रूप मे रहने दिया जाय; उनकी यह मांग स्पष्ट ही संविधान के विपरीत थी।

फरवरी १९६७ में लोकसभा एवं राज्य-विधानसभाओं के आम चुनाव ने दिखा दिया कि अब देश की जनता को किसी पार्टी के बारे मे कोई भ्रान्ति नही रही और उसका मोह भंग हो गया है। विरोधी दलों के पास न तो सगठनात्मक शक्ति थी और न मतदाताओं को आकर्षित करनेवाली नीतियां ही। इसलिए वे गुण्डागिरी पर उतर आए और कांग्रेस की सभाओं को तोडने और मार पीटकर आतंक जमाने लगे। जगह-जगह कांग्रेसी मन्त्रियो को पीटा या घायल किया गया और उनके वाहनों को या तो जलाया, तोडा गया या उलट दिया गया।

इन्दिरा के ओजस्वी चुनाव-अभियान ने लोगो के इस भ्रम का कि वह इतनी मुकोमल है, कि देश के प्रधानमत्री पद

का भार उठा नही सकती, पूरी तरह निवारण कर दिया। अपने देशव्यापी तूफानी चुनाव-दौरे में जनता से सीधा सम्पर्क करने के लिए वह गांवो, नगरो, कस्बों या दूर-दराज जन-बस्तियों में जहां भी गई, लाखो की संख्या मे लोग उसका भाषण सुनने के लिए इकट्ठा हुए और अपने प्रेम एवं श्रद्धा से उसे आश्वस्त किया।

उड़ीसा की राजधानी भुवनेश्वर में, जहा स्वतंत्र दल वालो को बहुमत से जीतने की पूरी आशा थी, इन्दिरा एक ऐसी सभा मे भाषण करने पहुंची जिसे नियंत्रण मे रखना सयोजको के बस के बाहर हो गया था। वह अभी बोल ही रही थी कि उद्दण्ड लोगो ने पथराव शुरू कर दिया। ईंट का एक गुम्मा इन्दिरा की नाक पर आकर लगा और खून बहने लगा। सुरक्षा-अधिकारी उसे मंच से हटा ले जाना चाहते थे। स्थानीय कांग्रेसी कार्यकर्ता अनुरोध करने लगे कि वह मच के पिछले हिस्से मे जाकर बैठ जायं। मगर इन्दिरा ने किसीकी न सुनी। वह रक्तरंजित नाक को रूमाल से दबाये निडरता-पूर्वक क्रुद्ध भीड़ के सामने खडी रही। उपद्रवकारियो को फटकारते हुए उसने कहा : "यह मेरा अपमान नहीं है, देश का अपमान है, क्योकि प्रधानमंत्री के नाते मैं इस देश का प्रतिनिधित्व करती हूं।" इस घटना से सारे देश को गहरा आघात लगा। सब दलों को, सार्वजनिक रूप से ही सही, इस काण्ड की निन्दा करनी पडी। विरोधी दल घाटे मे ही रहे, उन्हे अपने बहुत मतो से हाथ धोना पड़ा।

वहा से इन्दिरा कम्युनिस्टो के गढ कलकत्ता आई और अपने श्रोताओं को कम्युनिस्टो का असली परिचय देते हुए

कांग्रेस को वोट देने के लिए कहा। उसने मतदाताओं को याद दिलाया कि ये वही कम्युनिस्ट है जिन्होंने १९४२ के 'भारत छोडो' आन्दोलन का विरोध किया था और १९६२ मे जब चीन ने हमारे देश पर आक्रमण किया तो शत्रु के गीत गा रहे थे।

दिल्ली लौटने पर पता चला कि उसकी नाक की शल्य-चिकित्सा करनी होगी। सदा की तरह मुझे बड़ी चिन्ता हुई। जब वह अस्पताल से घर लौट आई तो मैंने बम्बई से ट्रंक पर कुशल-समाचार पूछे। उसने मजाकिया अन्दाज़ में गम्भीरता से कहा : "मैं खुद भी बहुत परेशान हू। होश मे आते ही मैंने डाक्टर से पूछा कि प्लास्टिक सर्जरी करके मेरी नाक को सुन्दर तो बना दिया है न? आप तो जानती ही हैं कि मेरी नाक कितनी लम्बी है; उसे खूबसूरत बनाने का एक मौका अनायास ही हाथ लग गया था, लेकिन कम्बख्त डाक्टरों ने कुछ न किया और मैं वैसी-की-वैसी ही रह गई !"

उड़ीसा वाले काण्ड के कुछ पहले इन्दिरा जयपुर की एक विशाल सभा मे भाषण कर रही थी। सहसा एक कोने में जनसघ के समर्थकों का छोटा-सा दल शोर मचाने और गौ-वध को बन्द करने के नारे लगाने लगा। सभा में विघ्न डालने की उनकी कार्रवाहियां बढती गईं। आखिर इन्दिरा को गुस्सा आ गया। गौवध-बन्दी का कानून बनाने से उसकी सरकार पहले ही इन्कार कर चुकी थी। ऊधमबाजो के शोरगुल को अपनी बुलन्द आवाज से दबाते हुए उसने लताड़ सुनाई :

"मैं इस तरह की हरकतों से दबने और डरने वाली नही हूं। मुझे मालूम है कि इन बेहूदगियों के पीछे किन लोगो का

हाथ है, और लोगों को अपनी बात किस तरह सुनानी चाहिए यह भी मै खूब जानती हूं। आज मुझे असलियत बतानी ही होगी। इन नारो से आप लोग अपने पिछले इतिहास को बदल नहीं सकते। जब देश पर विदेशियों की हुकूमत थी उस समय जनसघ के समर्थक क्या कर रहे थे ? कहां थे वे लोग ? जाकर पूछिये अपने महाराजा और महारानी से कि जब जनता की गाढ़ी कमाई पर ऐश कर रहे थे तो उन्होंने अपनी प्रजा के लिए कितने कुए खुदवाये और कितनी सड़कें बनवाई ? जब वे आपके राजा थे उस समय के उनके प्रजाहित के कामो को देखे तो सिर्फ एक बड़ा सिफर ही देखने को मिलेगा।"

वह एक घण्टे तक धाराप्रवाह बोलती रही। ऊधमियों का गुल-गपाड़ा फिर न सुनाई दिया। सभी ने अन्त तक उसकी बात शान्ति से सुनी।

इन्दिरा ने विधान-सभा के कांग्रेसी उम्मीदवारो के लिए भी देशव्यापी दौरा किया। पहली बार अपने ही चुनाव में अपने निर्वाचन-क्षेत्र की जनता के पास वोट के लिए उसे जाना पड़ा। फूलपुर (जवाहर के निर्वाचन-क्षेत्र) के मतदाता तो यही चाहते थे कि वह उनके क्षेत्र से खड़ी हो, लेकिन उसने फ़ीरोज के चुनाव-क्षेत्र राय बरेली से लडने का फैसला किया।

फरवरी के चुनाव परिणामो ने यह स्पष्ट कर दिया कि कांग्रेसी नेताओं को अपने आपसी झगड़ो और हीन कोटि की राजनैतिक तिकडमों का भारी मूल्य चुकाना पड़ा है। देश की जनता में कांग्रेस पार्टी के प्रति सम्मान की भावना तो अब भी थी, लेकिन प्राप्त मतों ने सिद्ध कर दिया कि विश्वास निरन्तर कम होता जा रहा है। लोकसभा मे अब भी कांग्रेस

सबसे बड़ी और बहुमत वाली पार्टी थी, लेकिन उसके बहुमत का अनुपात ७० प्रतिशत से गिरकर सिर्फ ५५ प्रतिशत रह गया था। सिडीकेट के जिन नेताओ ने काग्रेस दल और इन्दिरा पर हावी होना चाहा था वे सब-के-सब हार गए थे। सबसे करारी और उल्लेखनीय हार हुई थी काग्रेस के अध्यक्ष कामराज की, उन्हे उन्ही के घर मे एक अज्ञात विद्यार्थी ने मात दी थी।

लोकसभा मे विरोधी दलो की सदस्य-सख्या मे वृद्धि हुई। जिन सत्रह राज्यो मे चुनाव हुए, उनमे से नौ मे काग्रेस को बहुमत प्राप्त न हो सका; शेप आठ राज्यो मे काग्रेस ने बहुमत तो बनाये रखा, लेकिन बहुत थोड़े अनुपात मे। फिर भी मद्रास और केरल को छोडकर शेप सभी राज्यो मे अब भी कांग्रेस ही सबसे बड़ी पार्टी के रूप मे विधान-सभाओ मे पहुंची थी। इन दो राज्यो, मद्रास और केरल, के सिवा कही भी किसी अकेले विरोधी दल को इतने ज्यादा स्थान नही मिले थे कि वह अपनी सरकार बना पाता। परिणाम यह हुआ कि कई राज्यो मे विभिन्न प्रकार के गठबन्धन वाली (जैसे कि कम्युनिस्ट और जनसघ) सयुक्त सरकारे बनी। केरल और पश्चिम बंगाल की सरकारो मे कम्युनिस्टो की प्रधानता थी। मद्रास मे द्रमुक मुख्य पार्टी थी, उडीसा मे स्वतत्र दल वालों की प्रमुखता रही। बिहार और पजाब मे भी मिली-जुली सरकारे बनी।

इन्दिरा प्रबल बहुमत से विजयी होकर अब अखिल भारतीय नेता के रूप मे प्रतिष्ठित हो गई थी। मोरारजी देसाई भी काफी बड़े बहुमत से जीते थे। जब राज्यो और केन्द्रीय सरकार के भावी सम्बन्धों पर मैंने चिन्ता प्रकट की तो इन्दिरा

ने बड़ा ही सारगर्भित उत्तर दिया .

"मुझे अपने लोकतंत्र पर गर्व है। यदि जनता कांग्रेसी उम्मीदवार के बदले किसी और को चुनना चाहती है तो बेशक ऐसा ही करे। जिस प्रकार प्रधानमंत्री को चुनने का अधिकार उसे है, ठीक उसी प्रकार अपनी पसन्द के उम्मीदवारों को चुनने का अधिकार भी उसी जनता को है।"

२५

विकराल समस्याओं से सामना

•

जैसे ही चुनाव-परिणाम घोषित हुए, कामराज, पाटिल और दूसरे सभी नेता कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति और ससदीय बोर्ड की बैठक के लिए दिल्ली दौड़े आये। जहां तक ससदीय दल का प्रश्न था, इन्दिरा का प्रधानमत्री चुना जाना निश्चित था, लेकिन मोरारजी देसाई १९६६ मे उसके खिलाफ खडे हो चुके थे और इस वार फिर नेतापद का चुनाव लड़ने की तैयारियों मे लगे थे। चुनाव मे जो क्षति उठानी पड़ी थी, उसे देखते हुए तथा कांग्रेस की एकता और देश में पहले वाली स्थिति और सम्मान अर्जित करने के लिए भी, यह बहुत आवश्यक था कि पार्टी-नेता का चुनाव सर्वसम्मति से हो। ससद मे बहुमत के बावजूद शक्ति क्षीण हो जाने के कारण आन्तरिक सघर्ष को टालना वहुत जरूरी हो गया था; वर्ना सरकार कमजोर हो जाती और कांग्रेसी राज्य के अस्तित्व के लिए खतरा पैदा हो जाता। इन्दिरा हृदय से चाहती थी कि नेता का चुनाव सर्वसम्मति से हो, लेकिन चुनाव लड़ना ही पड़ जाय तो वह उसके लिए भी तैयार थी। वैसे

मोरारजी देसाई अनुशासन को मानने वाले बड़े ही निष्ठावान पार्टी-सदस्य थे, परन्तु नये मत्रिमंडल में महत्त्वपूर्ण पद पाये बिना पार्टी-नेतृत्व का अपना दावा छोड़ने को भी तैयार न थे। उधर इन्दिरा भी अपने मंत्रिमडल के सदस्यों को चुनने का अपना अधिकार अबाधित रखना चाहती थी। इस काम में उसे किसी तरह का हस्तक्षेप किसी भी रूप में स्वीकार नहीं था। और इस तरह दोनों मे नेता पद के लिए संघर्ष आवश्यम्भावी होता दिखाई देने लगा।

लेकिन ऐन वक्त पर समझौते की सूरत निकल ही आई। १२ मार्च को इन्दिरा को सर्वसम्मति से प्रधानमंत्री चुना गया और मोरारजी देसाई उप-प्रधानमत्री बने।

नेता के निर्विरोध चुने जाने का कारण भी साफ था—इन्दिरा के जैसा राज-काज का अनुभव, जनता पर प्रभाव और प्रखर व्यक्तित्व दूसरे किसी उम्मीदवार में नही था। बहुत पहले, १९६४ में ही, नान ने (जो बहुत बार बहुत से देशों में भारत की राजदूत रह चुकी थी) कहा था: "इन्दिरा का अभ्युदय केवल उसकी योग्यता और उसके द्वारा किये हुए कामों का परिणाम है।...आज वह जिस पद पर पहुंची है उसके वह सर्वथा उपयुक्त ही है।"[1] इन्दिरा के सम्बन्ध में नान का यह वक्तव्य १९६७ मे भी उतना ही सही और सार्थक था।

इन्दिरा ने अपना मंत्रिमंडल बनाया। कुछ पुराने मत्रियों को उसने रहने दिया और कुछ नवयुवकों को भी लिया। ९ मई को उसी के प्रभाव से डा० ज़ाकिर हुसैन भारत के राष्ट्रपति चुने गए।

१९६६ की कुछ समस्याए अभी तक देश के सामने बनी हुई थी। काश्मीर के सवाल पर पाकिस्तान से झगड़ा अपनी जगह कायम था; कांग्रेसी नेताओं के प्रति जनता का रोष और असन्तोष पहले से कुछ बढ़ा ही था; अनाज की कमी, भाषा का सवाल और मजहबी मामलो को लेकर हिंसक उपद्रव और दंगे होते ही जा रहे थे; विदेश-नीति की आलोचना मे कोई कमी नही हुई थी; विदेशी सहायता के स्थान पर स्वावलम्बन का नारा जोर पकड़ता जा रहा था; अप्रैल १९६६ की पंचवर्षीय योजना लागू नही की जा सकी थी; मुद्रा-स्फीति के साथ निर्वाह-खर्च मे लगातार वृद्धि हो रही थी, और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की बाढ़ पहले की ही तरह अवरुद्ध थी। इसके साथ राज्यो की नवनिर्मित सयुक्त सरकारों का अड़ियलपन की सीमा तक कड़ा रुख और केन्द्रीय तथा प्रादेशिक नेताओ की विरोधी कार्रवाइयां अलग ही सिरदर्द बनती जा रही थी।

ऊपर से कुछ नये संकट और पैदा हो गए थे। सूखाग्रस्त बिहार मे पीने के पानी और पशुओं के घास-चारे का अभाव हो गया, भुखमरी तो थी ही, प्यासे मरने की नौबत आ गई। एक प्रत्यक्षदर्शी के अनुसार, "प्यास भूख से कही ज्यादा अधः-पतित करने वाली होती है।" इन्दिरा ने लोगों से अपील की कि उन्हें स्वावलम्बन की दिशा मे अधिकाधिक प्रयत्न करने चाहिए; सरकारी सहायता का रास्ता देखते रहने के बजाय अपनी मदद आप करने में लग जाना चाहिए। उसने विदेशी सरकारों से भी सहायता की मांग की; और इस तरह लाखों लोगों के प्राण बचा लिये गए।

सितम्बर में चीन से तिब्बती सीमान्त को लेकर अनबन हो गई। सीमावर्ती प्रदेश मे चीनी और भारतीय सैनिको की मुठभेड़ो की खबरो ने देश मे तहलका मचा दिया। प्रदर्शन-कारियो के नई दिल्ली में चीनी दूतावास और पेकिंग में भारतीय दूतावास पर दगे हुए।

जून मे मध्यपूर्व में लड़ाई छिड़ गई और इन्दिरा की अरब-समर्थक नीति की देश और विदेश सर्वत्र खूब आलोचना हुई। मुझे ऐसा लगता है कि आलोचको ने भारत के राष्ट्रीय हितों पर कोई ध्यान नही दिया। इन्दिरा का दृष्टिकोण धर्म, जाति अथवा राष्ट्रीयता पर आधारित नही था। यहूदियो पर किये गए अमानुषिक अत्याचारों से वह बहुत अच्छी तरह परिचित थी और दूसरे महायुद्ध के समय यूरोप मे स्वयं अपनी आंखों उनकी दुरवस्था को देख चुकी थी। अरब लोगो को उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के हाथो जो भोगना पडा, उसकी जानकारी भी उसे थी। साथ ही वह इस तथ्य से भी अभिज्ञ थी कि यहूदी और अरब ऐतिहासिक दृष्टि से एक ही है और सदियो से दोनों पड़ौसियो की तरह रहते आये हैं। इन्दिरा ने जवाहर की नीति का ही अनुसरण किया—किसी गुट में शरीक न होने की नीति, परन्तु तटस्थता नही। भारत हमेशा हर मामले का गुण-दोष के आधार पर, अपने राष्ट्रीय हित को दृष्टि मे रखते हुए, समर्थन अथवा विरोध का फैसला करता है, और हमारे हित हमारे उदार नैतिक मूल्यो द्वारा परिचालित हैं।

हमारे यहूदी-विरोधी होने का तो प्रश्न ही नही उठता। हमारे देश में कई धर्मो को मानने वाले अल्पसंख्यक रहते है,

इसलिए एक स्थायी लोकतत्र के रूप मे हमारा अस्तित्व तो धर्म-निरपेक्षता—हमारी अपनी और आस-पास के हमारे पड़ौसियो की भी—पर ही अवलम्बित है। हमारे पश्चिमी और पूर्वी (बंगलादेश बनने के बाद नही) सीमान्तों पर धार्मिक असहिष्णुता की शक्तियां मुस्लिम राष्ट्रों को हमारे विरुद्ध एकताबद्ध कर देने का अवसर खोजती ही रहती है। इसलिए धर्मनिरपेक्षता के हामियों का समर्थन करना हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

जुलाई मे बादल पानी लाये, अच्छी वर्षा हुई और उनके साथ बढिया फसल की आशा बधी। हमारी सूखी-प्यासी धरती हरे खेतो का परिधान ओढकर मुस्कराने लगी।

इस बीच सत्तालोलुप नेता और कार्यकर्ता कई राज्यों की विधान-सभाओ मे आये-दिन दल-बदल करने लगे, जिससे मत्री बनने के उनके सपने पूरे हो सके। परिणामस्वरूप नये-नये मत्रिमडल बनने, बिगड़ने और फिर बनने लगे। प्रशासकीय अस्थिरता से आर्थिक पुनुरुत्थान के सारे काम ठप्प हो गए, और सत्ताशाली दलो के ही द्वारा हड़ताले और 'बन्द' कराने से सारे देश मे घोर निराशा फैल गई।

इधर केन्द्र मे राष्ट्रीय विकास के कार्यक्रमो को चालू किया गया। इन्दिरा के मार्गदर्शन मे, देश को अन्न के मामले मे आत्मनिर्भर बनाने की योजनाओ पर तेजी से काम शुरू हुआ। कृषि के विकास के लिए बजट मे अधिक धन की व्यवस्था की गई। काफी मात्रा में उर्वरक वितरित किये गए और किसानो को उनका सही उपयोग करने की विधियां समझाई गई। अमेरिका ने 'शान्ति के लिए अन्न' नामक

योजना के अन्तर्गत अनाज भेजा और भारतीयो को कृषि एव हाट-व्यवस्था विपणन की उन्नत तकनीक सिखाने के लिए तकनीकी सहायता दल भी वहां से आये। कृषि की तकनीकी उन्नति को प्राथमिकता दी गई। अधिक फसल देने वाली किस्में विकसित की गई और इन नई किस्मो की पैदावार ने उत्पादन के पिछले सभी रिकार्ड मात कर दिये। अन्न की कमी दूर होने के साथ-साथ आर्थिक विकास की आशाएं भी बधने लगी।

इन्दिरा के सामने और भी कई काम थे—नेताओ के आपसी झगड़ों और सरकार के काम मे अनावश्यक हस्तक्षेप अथवा प्रशासकीय कर्त्तव्यो की नितान्त उपेक्षा के कारण कांग्रेस की खोयी हुई साख को फिर से कायम करना; केन्द्रीय और राज्य-सरकारों के पारस्परिक सम्बन्धो को सुधार कर मधुर बनाना, जनता मे आत्मविश्वास की भावना पैदा करना। और ऐसे कामो मे समय तो लगता ही है।

इन्दिरा-प्रशासन के शुरू के चौदह महीनों को कार्यवाहक या अभिरक्षक (केयर-टेकर) सरकार की संज्ञा दी जाती है, क्योंकि वह आम चुनाव के द्वारा पदारूढ नहीं हुई थी। १९६७ के आम चुनाव के द्वारा जनता ने पार्टी के पुराने नेताओं को रद्द कर अपना समर्थन इन्दिरा को दिया था। उसकी स्थिति दृढ और अधिकार पक्के हो गए। अपनी नीतियो को निर्धारित तथा कार्यान्वित करने के लिए अब उसके पास पूरे पांच साल का समय था।

इन्दिरा का खयाल है कि भारत और भारतीय जनता को विश्व के राष्ट्रो में अपना उपयुक्त स्थान बनाने में अभी कई वरस लगेंगे। स्वयं उसी के शब्दो मे : "अगले दस या

बारह बरस तो केवल मंजिल की शुरुआत के रूप मे होंगे। परन्तु उसके बाद के दस-बीस बरसों की अवधि में हम आशा और प्रार्थना करते हैं कि भारत पूरी तरह आत्म-निर्भर राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित हो जायगा।"[२]

२६

'भारत को उसी स्वर्ग में करो जागरित'

•

इन्दिरा व्यक्ति के रूप मे कैसी है ? वह माता कैसी है ? क्या वह भारत को जिस तरह का प्रधानमन्त्री चाहिए, बन सकेगी ? उसके बारे में बहुत लिखा जा चुका है, फिर भी ये सवाल मुझसे आज भी पूछे जाते हैं। मेरे लिए इन सवालों का जवाब देना मुश्किल ही है, क्योंकि छुटपन से उसे देखती और उसकी देखभाल करती रही हूं, और एक लडकी के रूप मे उसके बारे मे जो सोचा और आशाएं की थी, मुझे तो वह ठीक वैसी ही लगती है। वास्तव में मैं उसे इतना अधिक प्यार करती हूं कि उसमें कोई खामी दिखाई नही देती। सिवा इसके और क्या कह सकती हू कि वह हमारे (नेहरू) परिवार की सच्ची बेटी है ! भारत की जनता ने हमारे परिवार को प्यार किया और वह इन्दिरा को भी खूब प्यार करती है।

इन्दिरा सुन्दरी है और उसका सब-कुछ—घरेलू वातावरण भी—सुन्दर होता है। काम से लदी रहने के बावजूद गृहिणी के कर्त्तव्य निभाने का वक्त वह निकाल ही लेती है—भोजन में क्या बनेगा, घर करीने से सजा हुआ है या नहीं, आदि बातें

तो देखती ही है, अपने नौकर-चाकरों के कुशल-क्षेम और प्रशिक्षण का ध्यान भी रखती है। फूलों को आकर्षक ढग से सजाने का तो उसे वरदान ही मिला है। कपड़ो के मामले मे उसकी रुचि बड़ी परिष्कृत है। अपनी सुन्दर साडियों और सुरुचिपूर्ण काश्मीरी शालो के परिधान मे वह महीयसी महिला लगती है। वाशिंगटन के एक संवाददाता को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ था कि एक राज्य की प्रमुख राजकीय भोज मे सम्मिलित होने के पहले (१९६६ की बात है, इस भोज मे राष्ट्रपति जानसन ने उपस्थित होकर इन्दिरा को गौरवान्वित किया था) केशविन्यास के लिए हेअर-ड्रेसर के यहां गई थी। वह कह उठा, "आखिर स्त्री है!" उसके खयाल से वह और क्या होती?

इन्दिरा स्त्री है और उसे अपने स्त्री होने पर गर्व है। हम भारतीय नारियां न तो सभा-सोसाइटियो और क्लबो पर जान देने वाली हैं और न पुरुषो के बराबरी के अधिकारो के लिए गला फाडने और गुत्थमगुत्था करने वाली ही हैं। हमारे लिए तो अपना घर, परिवार और बच्चे ही प्रमुख हैं और जो भी काम करना पड़ जाय, खुशी-खुशी करती हैं। इन्दिरा का हमेशा पहला कर्त्तव्य रहा है अपने दोनो बेटो की देख-भाल। जब वे इग्लैंड मे पढते थे तो हमेशा नियम से उन्हे पत्र लिखती और लन्दन जाती तो ज्यादा-से-ज्यादा समय उन्ही के साथ बिताती थी। राजीव कैम्ब्रिज मे भर्ती हुआ, उसी कालेज में जहां उसके नाना जवाहर पढे थे; लेकिन सजय ने कालेज की शिक्षा से व्यावहारिक शिक्षा को ज्यादा अच्छा समझा। उसने इग्लैंड के मोटर बनाने के एक कारखाने मे कुछ साल रहकर

इस उद्योग का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया। अब दोनों बेटे भारत लौट आए हैं। अब उन्हे घर में पाकर मां बहुत प्रसन्न है। दोनों हो प्रियदर्शन, जिन्दादिल, मिलनसार और योग्य नौजवान है। घर एक बार फिर उनकी आवाज़ों और प्रसन्न ठहाकों से गूजने लगा है।

न तो इन्दिरा ने अपने बेटो को राजनीति में आने के लिए प्रोत्साहित किया और न वे स्वयं आना चाहते हैं। एक भेंट में उसने कहा था कि वह तो यही चाहती है कि वे उद्योग में अपना योगदान करे—"प्रौद्योगिकी हमारे विकास के लिए बहुत आवश्यक है।"

मुझे आशा थी कि मेरा बड़ा बेटा हर्ष राजनीति में भाग लेगा और हमारे परिवार की परम्परा को जीवित रखेगा, लेकिन इस ओर उसका जरा भी ध्यान नहीं है। कभी मैं सोच मे पड़ जाती हूं कि क्या नेहरू नाम हमारे देश के इतिहास के पन्नो में ही लिखा रह जायगा या भविष्य मे इस वंश का कोई बालक-बालिका नये भारत के निर्माण में अपना योगदान देने वाला भी होगा ?

कुछ लोग हैं जो इन्दिरा को रूखे स्वभाव की, अकड़ वाली, घमण्डी और नकचढी बताते हैं। वास्तव में वह सहृदय, स्नेहमयी और सहानुभूतिप्रवण है। बचपन में अकेले रहने से संकोच-भीरुता उसके स्वभाव का अग बन गई और वह आज भी अपरिचितो में जल्दी से घुल-मिल नही पाती; इसीलिए लोग उसे अकड़ वाली समझने की भूल कर बैठते हैं। कुछ विदेशी लेखकों की दृष्टि मे नेहरुओ के कथित अहंकारी स्वभाव का कारण हमारा ब्राह्मण होना है।

ब्राह्मण होता है गुरु, शिक्षक, ज्ञानी और पडित । वह द्विज है, दो बार जन्मा हुआ; नौ या दस बरस की उम्र मे आचार्य से उपवीत होकर वह ज्ञानार्जन का उद्यम शुरू करता है । और ज्ञानी अथवा विद्वान सदैव विनयसम्पन्न होता है और होता है मानवता से ओत-प्रोत; उसमें केवल बौद्धिक आभिजात्य होता है, जन्म अथवा पद का नहीं । यदि पाश्चात्य लेखकों का यही अभिप्राय है तो हमे अपने इस आभिजात्य पर गर्व है ।

एक बार द्वितीय महायुद्ध के समय मैं हाफकिन इन्स्टीच्यूट के रक्तकोष मे रक्तदान के लिए गई थी । उस संस्था के अध्यक्ष चिकित्सा-क्षेत्र के जाने-माने अन्वेषक और चिकित्सक जनरल सोखे हमारे परिवार के मित्र थे । उन्होने मजाक किया : "बड़े दु:ख की बात है कृष्णा, तुम्हारा खून नीला नही, सबकी तरह लाल है ।" मैने जवाब दिया, "वाह, भला नीला क्यों होता ? मैं ब्राह्मण जो हूं !"

इन्दिरा के बचपन और उसकी किशोरावस्था मे जवाहर, जेल से बराबर पत्र लिख-लिख कर, मानवीय आदर्शो और सदगुणों (मूल्यो) के प्रति उसमे आदर के भाव भरते रहे । पिता की वे शिक्षाए उसके मन मे सदा के लिए अकित हो गई हैं । प्रधानमत्री बनने के बाद एक भेटकर्ता ने उससे पूछा था कि आज भारतीय जनता को अनुप्राणित करने वाले मानवीय मूल्य और आदर्श क्या हैं ? जवाब मे इन्दिरा ने कहा था :

"ये मूल्य और आदर्श हमारे इतिहास और जीवन मे नूतन और पुरातन के सश्लेषण से उद्भूत हुए हैं । उदाहरण

के लिए, सहिष्णुता की पुरातन भावना और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को लीजिए। सम्भवतः इसीमे से शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व का नया विचार प्रादुर्भूत हुआ है। फिर उन्नत जीवन—भौतिक ही नही, सांस्कृतिक और बौद्धिक भी (आध्यात्मिक)—के अधिकार के प्रति नई चेतना भी है, जो 'समाजवादी और समाज-व्यवस्था' के रूप में मूर्त होती है और जिसे लाने के लिए हम वचनबद्ध हैं। यही चेतना हमारी विदेश-नीति में भी परिव्याप्त है और इस अति सरल और स्पष्ट विचार पर आधारित कि हम दूसरों के लिए भी शान्ति, स्वतन्त्रता और प्रगति के वही अवसर चाहते हैं, जिनकी हमें स्वय अपने लिए अपेक्षा है।"

इन्दिरा जब पहली बार प्रधानमंत्री बनी तो उसके सामने उसके पिता अथवा लालबहादुर शास्त्री की अपेक्षा ज्यादा कठिनाइयां थी। देश अकाल, मुद्रा-स्फीति और महगाई के चंगुल मे फंसा था और जनता अपनी नासमझी और जल्द-बाजी मे इसके लिए सरकार को ही दोषी समझती थी। गैर-जिम्मेदार विरोधी दलो को इससे सत्ता हथियाने और लोगों को कानून तोड़कर अराजकता फैलाने के लिए उकसाने का अच्छा बहाना मिल गया। अठारह वर्ष की सुस्थिरता और व्यवस्थित प्रगति के बाद देश अव्यवस्था और विघटन के गर्त में जा गिरा। इन्दिरा को राजनीति और राजकाज का प्रशि-क्षण तो ज़रूर मिला था, लेकिन जब देश की बागडोर उसके हाथ मे सौपी गई तो अनुभव की प्रौढ़ता से वह कोरी थी। संसदीय कार्य-व्यापार का समुचित ज्ञान भी उसे नही था। लेकिन अब वह अभ्यस्त हो गई है, और अपनी मन्त्रिपरिषद

एवं ससद् का प्रौढ राजनीतिज्ञ की तरह कुशलता से सचालन करती है। एक केन्द्रीय मत्री के, जो पहले वाले दोनो प्रधान मंत्रियो के साथ काम कर चुके हैं, शब्दो में :

"प्रांजलता, भावाभिव्यक्ति की सारगर्भित शैली, अपनी मान्यता के अनुसार निर्णय करने का साहस, और स्पष्ट-वादिता आदि गुणो मे वह अपने दोनो ही यशस्वी पूर्ववर्तियों से कही आगे है।"[3]

हम खामियो और खूबियो वाले साधारण मिट्टी के बने लोग हैं। इन्दिरा में, जैसाकि आलोचको का कहना है, कुछ कमजोरिया हो सकती है, लेकिन उसमें साहस और निश्चय-बल की कमी नही है। उसकी धमनियो में अपने पिता और दादा का रक्त प्रवाहित है—उन महापुरुषों का जो अपने देश और उसके महान आदर्शो को समर्पित थे। इन्दिरा का जन्म इलाहाबाद—त्रिवेणी-सगम के प्राचीन पवित्र प्रयाग नगर मे, उस गगा नदी के किनारे हुआ जिसके साथ "भारतीय आर्य जाति की अनन्त प्राचीन स्मृतिया, उसकी आशाए और आशंकाए, उसके विजय-गान, उसके उत्थान और पतन की स्मृतियां गुथी हुई हैं।" और यही है इन्दिरा का उत्तरा-धिकार ! गगा की ही तरह वह भी भारत की है और भारत—हमारा भारत, हमारी जनता उसके प्राणों का प्राण, उसके हृदय की धडकन है। जब तक वह जीवित रहेगी, जवाहर के इस प्रण को पूरा करने में मन-प्राण से लगी रहेगी :

"मैं अपने को विनम्रतापूर्वक भारत और यहां की जनता की सेवा में समर्पित करता हूं और अन्तिम क्षण तक इस महान

कार्य में लगा रहूंगा, जिससे यह पुरातन देश विश्व में अपना उपयुक्त स्थान ग्रहण करे और विश्व-शान्ति एव मानव-कल्याण के कार्यों को आगे बढाने में स्वेच्छा से अपना पूरा सहयोग प्रदान करे।"

यह है भारत का वह दर्शन जो जवाहर का प्रेरणा-स्रोत रहा है—

"चित्त जहां भयशून्य, उच्च जहां शिर,*
ज्ञान जहां मुक्त, गृह-प्राचीर जहां निज
प्रांगण में वसुधा को रखती नहीं—
दिवस-रात खण्ड क्षुद्र कर,
वाक्य जहां हृदय के उत्समुख से उच्छ्वसित,
कर्मधारा जहां दौड़ती निर्बाध-गति,
देश-देश दिशा-दिशा अजस्र
करने को चरितार्थ सहस्रविध, मरुबालुराशि
जहां तुच्छ आचार की करती नही
ग्रास विचार का स्रोत:पथ—

---

* रविबाबू का मूल बगला गीत इस प्रकार है—
चित्त येथा भयशून्य, उच्च येथा शिर,
ज्ञान येथा मुक्त, येथा गृहेर प्राचीर
आपन प्रांगण तले दिवसशर्वरी
वसुधारे राखे नाइ खण्ड क्षुद्र करि,
येथा वाक्य हृदयेर उत्समुख हते
उच्छ्वसिया उठे, येथा निर्बारित स्रोते
देश-देशे दिशे-दिशे कर्मधारा धाय
अजस्र सहस्रविध चरितार्थताय,

पौरुष का किया नही शतधा
नित्य जहां तुम सर्व कर्म चिन्ता आनन्द के प्रणेता,
कर अपने हाथो दारुण आघात पितः,
भारत को उसी स्वर्ग में करो जागरित !"

(रवीन्द्रनाथ ठाकुर)

येथा तुच्छ आचारेर मरुबालुराशि
विचारेर स्रोतःपथ फेले नाइग्रासि—
पौरुषेरे करे नि शतधा, नित्य येथा
तुमि सर्व कर्मचिन्ता आनन्देर नेता,
निज हस्ते निर्दय आघात करि पितः,
भारतेरे सेइ स्वर्गे करो जागरित !!

ताज़ा कलम

फरवरी १९६७ मे आम चुनाव हुए। चुनाव-परिणामो मे कांग्रेस की लोकप्रियता और प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लगा। संगठनात्मक कमजोरिया और नीति-सम्बन्धी संघर्ष उभर कर ऊपर आगए। आठ राज्यो मे गैर कांग्रेसी सरकारे बनी, जिससे केन्द्र और राज्य-सरकारो के पारस्परिक सम्बन्ध बहुत जटिल हो गए। इन्दिरा ने गैर-कांग्रेसी सरकारो से भेद-भाव न बरतने की नीति अपनाई और केन्द्र तथा राज्य के मतभेदो और विवादो को जनतंत्र और गतिशील समाज मे स्वाभाविक माना और विचार-विनिमय से उन्हे हल करने पर जोर दिया।

बंगाल इन्दिरा की चिन्ता का मुख्य विषय रहा। वहा का घेराव सारे देश मे फैला और पहले बंगाल के मंत्रियो ने तथा बाद मे केरल के संसद्-सदस्यो ने दिल्ली मे क्रमशः खाद्य-मंत्री और प्रधानमन्त्री का घेराव किया। बंगाल मे कानून और व्यवस्था की स्थिति बहुत शोचनीय हो गई। नक्सलबाडी मे आदिवासी जोतदारो द्वारा मार्क्सवादी लेनिनवादी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व मे हिंसक उपद्रव शुरू हुए जो नक्सलवाद के नाम से प्रख्यात हुए।

जुलाई मे जोर की वर्षा के कारण कई राज्यो मे बाढ आई; इन्दिरा ने बाढग्रस्त इलाको का दौरा करके संकटग्रस्तो को राहत पहुंचाने की तात्कालिक व्यवस्था कराई।

दलबदल के कारण कांग्रेसी और गैरकांग्रेसी सरकारो की स्थिति डावाडोल बनी रही। मध्यप्रदेश की कांग्रेसी सरकार ३४ विधायको द्वारा दलबदल करने के कारण खतरे मे पड गई और इन्दिरा के प्रबल समर्थक द्वारकाप्रसाद मिश्र को इस्तीफा देना पडा। वहा संविद के नाम से जनसंघ, संसोपा तथा असन्तुष्ट कांग्रेसियो की मिली-जुली सरकार बनी।

तीन भाषा-फार्मूला के कारण विदेश-मंत्री छागला ने इस्तीफा दे दिया। देश मे भाषाई दंगे हुए, परन्तु इन्दिरा ने नेहरूजी से भी

अधिक 'साहस का परिचय' देकर यह कानून बना दिया कि "अहिन्दी-भाषी राज्य जब तक हिन्दी को स्वीकार नही कर लेते, अग्रेजी सम्पर्क-भाषा के रूप मे चलती रहेगी।"

अपनी नई आर्थिक नीतियो को क्रियान्वित करने के लिए इन्दिरा ने धनजय रामचन्द्र गाडगिल को उपाध्यक्ष नियुक्त कर आयोजना आयोग का इस तरह पुनः सगठन किया कि मत्रिगण उसके काम मे दखलन्दाजी न कर सके और आयोग परामर्शदाता के रूप मे काम करे।

काग्रेस-अध्यक्ष के चयन के मामले मे इन्दिरा ने तत्कालीन अध्यक्ष कामराज की जगह निजलिंगप्पा को अपना उम्मीदवार घोषित कर दिया। इस मामले मे उसने कामराज से कोई सलाह लेना उचित न समझा।

इस वर्ष इन्दिरा ने श्रीलका और पूर्वी यूरोप के देशो की सद्-भावना-यात्राए की, जिनका उद्देश्य विएतनाम-युद्ध को बन्द करने का उपाय खोजना, पाकिस्तान से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखना, नये व्यापा-रिक सम्बन्ध स्थापित करना और विश्व-शान्ति को दृढतर बनाना था।

१६६८ का आरम्भ रूस और अमेरिका द्वारा प्रस्तावित पर-माणु अस्त्रप्रसार-निरोधक सन्धि पर इन्दिरा द्वारा हस्ताक्षर करने से इन्कार करने से हुआ। उसने इस विषय मे अपना मत व्यक्त किया कि इस सन्धि मे परमाणु अस्त्र-सम्पन्न कुछ अन्य देश शरीक नही थे और परमाणुशक्ति-विहीन देशो की आशकाओ को दूर किये बिना ही उनसे उसपर हस्ताक्षर करने के लिए कहा गया था।

इस वर्ष भी दल-बदल का दौर रहा। काग्रेस की कार्यकारिणी के निर्वाचित स्थानो मे इन्दिरा का, लेकिन नियुक्तियो के भरे जाने वाले स्थानो मे सिंडीकेट का, बहुमत रहा। राज्य-सभा के द्विवार्षिक चुनावो मे अवकाश ग्रहण करने वाले काग्रेसी सदस्यो की जगह काग्रेस सिर्फ ३४ स्थान प्राप्त कर सकी।

भाषाई दगे बराबर होते रहे—मद्रास मे हिन्दी-विरोधी दगो ने भीषण रूप धारण कर लिया।

राजस्थान मे अनावृष्टि के कारण मारवाड़ के बाड़मेर क्षेत्र में भयकर अकाल पड़ा। हिंसक उपद्रव और तोड़फोड़ की घटनाए बराबर

होती रही। समाचार-पत्रो के कर्मचारियो की ६० दिन की हड़ताल हुई और केन्द्रीय कर्मचारियो ने भी वेतन-वृद्धि के लिए हड़ताले और प्रदर्शन किये।

बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश और पजाब—इन चार गैर-काग्रेसी सरकारो का पतन हुआ और वहा राष्ट्रपति का शासन लागू हो गया। हरियाणा के मध्यावधि चुनाव मे कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत मिला। इन्दिरा ने विरोधी दलो के 'गैर-काग्रेसवाद' को सिद्धान्तहीन समझौता-परस्ती' और 'जनतत्र के लिए हानिप्रद' बताया।

मेरठ, इलाहाबाद और नागपुर मे भीषण साप्रदायिक दगे हुए। इनकी रोकथाम के उपाय खोजने और साप्रदायिकता को राष्ट्रीय जीवन से मिटाने के लिए श्रीनगर मे राष्ट्रीय एकता परिषद् का, जो १९६३ मे गठित होकर मृतप्राय हो गई थी, अधिवेशन बुलाया गया। इन्दिरा ने महसूस किया कि इसके लिए आदमी के मन को ही बदलना जरूरी है।

पाकिस्तान के साथ सम्बन्धो मे तनाव बढता ही रहा। चीन और पाकिस्तान मिलकर पूर्वी सीमान्त के मिजो विद्रोहियो को हथियारबन्द करने और सैनिक शिक्षा देने लगे। इधर इन्दिरा ने उत्तरपूर्वी क्षेत्रो की समस्या के हल के लिए मेघालय का अलग राज्य बनाने, मिजोरम को असम से पृथक करने और पूर्वी सीमान्त को अरुणांचल नाम देने पर विचार किया। मिजो विद्रोहियो का सख्ती से दमन शुरू हुआ।

विश्व न्यायाधिकरण ने 'राजनैतिक कारणो' से कच्छ के रन के विवाद के फैसले मे कजरकोट और छाडबेट सहित ३३० वर्गमील भूमि पाकिस्तान को दे दी। विवाद को विश्व न्यायाधिकरण को सौपने की शर्तों के अनुसार भारत को यह फैसला अपने प्रतिकूल होते हुए भी स्वीकार करना पड़ा। इस समय इन्दिरा ने अद्भुत धैर्य और सयम का परिचय दिया।

इस वर्ष इन्दिरा ने दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशो और बाद मे लातीनी अमेरिकी देशो सहित कैरोनियन द्वीप-समूह, अमेरिका, इग्लैंड और पश्चिमी जर्मनी की सद्भावना-यात्राए की।

१९६९ की जनवरी में इन्दिरा ने राष्ट्रमण्डल के २८ देशो के राष्ट्र-

पतियो एव प्रधान मत्रियो के सम्मेलन मे विचार-विनिमय और मुला-कात के अवसर पाने के लिए लन्दन की यात्रा की।

फरवरी के मध्यावधि चुनावो मे इन्दिरा ने देशव्यापी चुनाव-दौरा किया। बगाल मे काग्रेस की शक्ति और कम हुई। पजाब, बगाल और बिहार मे सबसे बडी पार्टी होते हुए भी अपने बूते सरकार बनाने की स्थिति मे काग्रेस नही रही।

सिंडीकेट से इन्दिरा के सैद्धान्तिक मतभेद और गहरे हो गए। सरकारी उद्योगो के प्रबन्ध को लेकर निजलिंगप्पा से इन्दिरा की फरीदाबाद मे टक्कर हो गई।

मई १९६९ मे राष्ट्रपति जाकिरहुसैन का हृदयगति रुक जाने से स्वर्गवास हो गया। अत. राष्ट्रपति पद के लिए काग्रेसी उम्मीदवार के चयन को लेकर सिंडीकेट से विवाद उग्र हो उठा। यहा तक कि अगले वर्ष काग्रेस दो भागो मे बट गई। इन्दिरा की राय थी कि परम्परा से उपराष्ट्रपति का ही राष्ट्रपति-पद के लिए चयन किया जाता रहा है, इसलिए उपराष्ट्रपति और कार्यवाहक राष्ट्रपति व्य० वा० गिरि को काग्रेस अपना उम्मीदवार घोषित करे। इसके स्थान पर सिंडीकेट नीलम सजीव रेड्डी को, जो उस समय ससद के स्पीकर थे, उम्मीदवार बनाना चाहता था। सिंडीकेट-विरोधियो ने इसे इन्दिरा को अपदस्थ करने की चाल समझा।

इन्दिरा ने इस सघर्ष को व्यक्तियो का सघर्ष बनाने के बजाय नीतियो का सघर्ष बनाया और अपने आर्थिक प्रस्ताव को काग्रेस की कार्यकारिणी से स्वीकृत कराकर सिंडीकेट को असमजस मे डाल दिया। सिंडीकेट ने प्रधानमंत्री इन्दिरा की इच्छा की परवाह किये बिना श्री गिरि के बजाय नीलम सजीव रेड्डी को काग्रेस का उम्मीदवार घोषित किया।

इन्दिरा ने अपनी नई अर्थनीति को कार्यान्वित करने के लिए वित्त-विभाग मुरारजी देसाई से ले लिया। मुरारजी ने नाराज होकर इस्तीफा दे दिया, जिसे मजूर करने के साथ-ही-साथ वित्तमत्रालय उसने अपने पास ही रखा और १४ प्रमुख बैंको का राष्ट्रीयकरण भी कर दिया।

मुरारजी बैंको के राष्ट्रीयकरण के बजाय समाजीकरण के पक्षधर थे और इस व्यवस्था को चलने देना चाहते थे। पर देश की जनता राष्ट्रीयकरण चाहती थी। राष्ट्रीयकरण का अच्छा प्रभाव पडा और इन्दिरा के इस कदम का सारे देश मे उत्साहपूर्वक समर्थन किया गया।

राष्ट्रपति-पद के चुनाव मे भी इन्दिरा की ही जीत हुई। इस चुनाव मे निजलिंगप्पा ने जनसघ और स्वतत्र पार्टी से गठबन्धन किया, फिर भी इन्दिरा के समर्थको और प्रगतिशील दलो ने गिरि को मत देकर विजयी बनाया। यह सिंडीकेट के खिलाफ इन्दिरा की दूसरी बडी विजय थी।

सिंडीकेट के नेताओ ने बौखला कर पहले इन्दिरा के दो समर्थक जगजीवनराम और फखरुद्दीनअली अहमद पर और बाद में इन्दिरा पर भी अनुशासन की कार्रवाई कर डाली और तीनो को काग्रेस से निकाल दिया। इसके बाद स्वर्णसिह पर भी अनुशासन की कार्रवाई की गई। बदले मे इन्दिरा गुट ने सुब्रह्मण्यम को काग्रेस का अन्तरिम अध्यक्ष नियुक्त किया। इस तरह सारा साल सगठन के स्तर पर नीतियो का युद्ध व्यक्तियो के इर्द-गिर्द चलता रहा।

पृथक् तैलगाना की माग को लेकर आन्ध्र प्रदेश मे काफी लम्बा उग्र और हिंसक आन्दोलन चला। इन्दिरा का रुख तैलगाना के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रहा, लेकिन पृथक् तैलगाना प्रदेश की माग को उसने स्वीकार नही किया।

'सिद्धान्तहीन समझौता', जो सिर्फ कुर्सियो के लिए था, फिर रग लाया और मध्यप्रदेश की सविद-सरकार का पतन हो गया। वहा पुनः काग्रेस का मत्रिमण्डल बना।

इन्दिरा को व्यथित करने वाली घटना अहमदाबाद का भीषण साप्रदायिक दगा था। उसने वहां का दौरा किया और साप्रदायिकता के अभिशाप को देखकर विह्वल हो गई। उसने देशवासियो को सांप्रदायिक दंगो के प्रति चौकस रहने का आह्वान किया। दिल्ली मे राष्ट्रीय एकता परिषद की बैठक करके दगो के दमन के उपाय भी खोजे गए।

तमिलनाडु मे सूखा पड़ा, आध्रमे तूफान और बाढ़ आई और उत्तर-

प्रदेश तथा पश्चिम बगाल में भी बाढ से बहुत हानि हुई। इन्दिरा ने सभी स्थानो का दौरा करके स्थिति का अध्ययन किया और राहत-कार्य तत्परता से आरम्भ करवाया।

बगाल मे पहले 'बगाल बन्द' और उसके बाद चाय-बागान के दो लाख मज़दूरो, कपडा मिलो के ५० हजार मजदूरो की हडतालो और पटसन मिलो के बन्द हो जाने से स्थिति बराबर बिगडती गई।

सर्वोच्च न्यायालय ने बैंक राष्ट्रीयकरण अध्यादेश की कई धाराओ को अनुचित करार देकर स्थगन-आदेश दे दिया तो इसके लिए ससद् में विधेयक पेश करने के साथ ही इन्दिरा सविधान मे आवश्यक सशोधनो की बात भी सोचने लगी।

उधर पडोसी पाकिस्तान की स्थिति बराबर बिगडती गई। अय्यूब के सैनिक शासन के खिलाफ हडताले और प्रदर्शन होने लगे। अन्त मे अय्यूब को हटना पडा और जनरल याह्याखा वहा के सैनिक शासक बने। याह्या के शासनकाल मे पूर्वी बगाल मे राजनैतिक हलचल उग्र हुई और वहां स्वायत्तता की माग जोर पकडने लगी।

इसी वर्ष अमेरिकी राष्ट्रपति निक्सन, ईरान के शाह, रूमानिया के राष्ट्रपति, बुलगारिया एव न्यूज़ीलैंड के प्रधानमन्त्री तथा फिलीपीन और इण्डोनेशिया के विदेशमंत्री भारत आये। इन्दिरा ने अफगानिस्तान, जापान, इण्डोनेशिया और बर्मा की सद्भावना-यात्राए की। इन देशो के साथ भारत के व्यापारिक और सास्कृतिक सम्बन्ध दृढ हुए।

सन् १९७० मे काग्रेस का पूरी तरह विभाजन हो गया था। इन्दिरा-समर्थक गुट 'नई काग्रेस' या 'सत्ता काग्रेस' कहलाने लगा और सिडीकेट वाली काग्रेस 'सगठन काग्रेस' के नाम से बोली जाने लगी। १९६९ के दिसम्बर महीने मे दोनो काग्रेसो के अलग-अलग अधिवेशन हुए —संगठन कांग्रेस का गुजरात की नई राजधानी गाधीनगर मे और सत्ता काग्रेस का बम्बई मे। दोनो के प्रस्तावो से साफ मालूम हो गया कि नीति-सम्बन्धी मतभेदो के कारण दोनो का साथ रहकर काम करना किसी भी तरह सम्भव नहीं था। सत्ता काग्रेस ने सुब्रह्मण्यम के स्थान पर जगजीवनराम को अपना स्थायी अध्यक्ष नियुक्त किया और वह केन्द्र में

खाद्य-मंत्री के साथ-साथ इस पद को भी संभाले रहे।

८ जनवरी को ससद मे राजाओ के विशेषाधिकारो और प्रिवीपर्स की समाप्ति की घोषणा की गई। बैंको के राष्ट्रीयकरण के अध्यादेश की तरह बाद मे इसकी वैधता को भी चुनौती दी गई। लोकसभा मे यह विधेयक पारित हो गया, लेकिन राज्य सभा मे सिर्फ १ मत कम होने से यह पारित न हो सका, तब ७ सितम्बर को राष्ट्रपति ने अध्यादेश के द्वारा नरेशो की मान्यता को रद्द किया। इन्दिरा ने इस तथ्य को तीव्रता से अनुभव किया कि ससद के सभी सदनो मे बहुमत हुए बिना नये आर्थिक सुधारो को कार्यान्वित कर पाना मुश्किल ही होगा।

वित्त-मत्री की हैसियत से इन्दिरा ने १९७०-७१ का जो बजट ससद में पेश किया वह अपने सभी पूर्ववर्ती बजटो से भिन्न, प्रगतिशील और सामान्य जन की आकाक्षा को बहुत हद तक पुरा करने वाला था। इन्दिरा ने अपने उस बजट को "सामाजिक न्याय और आर्थिक विकास का समन्वय करने वाला बजट" कहा। उसमे अकाल-पीड़ित रहने वाले क्षेत्रो मे निर्माण कार्य, सूखे से राहत, शहरी आवास सुधारने के लिए नगर निवास निगम, दैवी विपत्तियो से बचाव, बच्चो को पोषक आहार, आदिम जातीय विकास, खेती पर शोधकार्य मे वृद्धि आदि कई लोकोपकारी मदो का समावेश कर उनके लिए व्यय का प्रावधान किया गया था।

नई अर्थनीति के अन्तर्गत इन्दिरा ने हास्पेट, सेलम और विशाखापत्तन-जैसे पिछड़े हुए क्षेत्रो मे नये इस्पात-कारखाने खोलने की घोषणा की। देश के ३३ लाख से अधिक शिक्षित बेरोजगारो की समस्या के समाधान के लिए केन्द्र द्वारा एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त की गई। नई कांग्रेस की महासमिति ने इन्दिरा के नेतृत्व मे ग्रामीण क्षेत्रो की बेरोजगारी खत्म करने के लिए परती जमीन बाटने सम्बन्धी प्रस्ताव पारित कर इस काम के लिए १९७१ तक की अवधि निर्धारित कर दी।

पाकिस्तान की घटनाओ से चिन्तित होकर इन्दिरा ने ताशकन्द-घोषणा के सन्दर्भ मे सोवियत सघ को और पाकिस्तान को पत्र लिखे। इस वर्ष पानी के सवाल को लेकर पाकिस्तान से विवाद इतना तीव्र हो गया कि भारत ने उसे पानी देना ही बन्द कर दिया। लेकिन जब नव-

म्बर के महीने मे पूर्वी पाकिस्तान मे तूफान आया तो इन्दिरा द्वारा तूफानग्रस्तो की मदद के लिए एक करोड रुपये देने की घोषणा की गई। भारत तो हेलिकोप्टरो द्वारा तूफानपीडितो को बचाने मे सहायता करना चाहता था, परन्तु याह्याखा को यह स्वीकार न हुआ। ८ दिसम्बर को पाकिस्तान मे आम चुनाव हुए और उसमे शेख मुजीबुर्रहमान की अवामी लीग को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ।

उत्तर प्रदेश और आध्र मे भारी वर्षा से नुकसान हुआ। इन्दिरा ने बाढग्रस्त क्षेत्रो का दौरा किया।

मई मे बम्बई के निकट भिवडी और चन्द्रनगर मे लोमहर्षक साम्प्रदायिक दगे हुए। इन्दिरा ने फौरन दगा-पीडित क्षेत्रो का दौरा कर सकटग्रस्तो को आश्वासन दिया और जनसघ पर दगे उकसाने का खुला आरोप लगाया। दगो का सबलता से सामना करने के लिए उसने राष्ट्रीय एकता परिषद की बैठक बुलाई और बैठक मे दोनो काग्रेस और सभी गैर सम्प्रदायवादी दलो, केन्द्रीय मन्त्रियो और कुछ राज्य के मुख्यमन्त्रियो को आमन्त्रित कर कहा कि "हम यहा सामाजिक हिसा का सामना करने को एकत्र हुए है।" राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की तीव्र भर्त्सना की गई और उस पर तथा जमैयत इस्लामी पर प्रतिबन्ध लगाने की माग सभासदो ने की। बाद मे काग्रेस महासमिति मे भी इन्दिरा द्वारा प्रतिक्रियावादी व उग्रवादी सगठनो के विरुद्ध उग्र सघर्ष का आह्वान किया गया।

इसी वर्ष औद्योगिक शक्ति-सन्तुलन के लिए एकाधिकारिक व्यापारिक आचरण अधिनियम बनाया गया, जिससे उद्योगो का सन्तुलित विकास हो सके।

चण्डीगढ के बटवारे के प्रश्न पर हरियाणा मे जबर्दस्त आन्दोलन छिडा। इन्दिरा ने बडी सूझबूझ से इस समस्या को निपटाया—फाजिल्का सहित ११८ गाव हरियाणा को और चण्डीगढ पजाब को दिया गया। बाद मे इस फैसले के खिलाफ दोनो राज्यो में उपद्रव हुए तो इन्दिरा ने दृढता और सख्ती से उनका सामना करने के आदेश दिये।

इस वर्ष बगाल, केरल और उत्तर प्रदेश मे राष्ट्पति-शासन लागू

हुआ; और केरल के मध्यावधि चुनाव मे वहा के लघुमोर्चे और सत्ता काग्रेस को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ। मेघालय को एक पूरे राज्य का दर्जा देने की घोषणा भी इन्दिरा ने इसी वर्ष लोकसभा मे की।

राज्य-सभा के द्विवार्षिक चुनावो मे नई काग्रेस की स्थिति मे काफी गिरावट आ गई। इस कारण भी इन्दिरा मध्यावधि चुनाव की बात सोचने लगी।

१७ मार्च को 'बगाल-बन्द' के सिलसिले मे कई लोग मारे गए और १६ अप्रैल को कलकत्ता-विश्वविद्यालय मे नक्सलवादियो ने जमकर उत्पात किया। इन घटनाओ ने इन्दिरा को बगाल की अस्थिर और आतकवादी राजनीति का स्थायी हल खोजने के लिए प्रेरित किया।

२९ दिसम्बर को अन्ततः इन्दिरा ने मध्यावधि चुनाव कराने की घोषणा कर दी। सभी दल चुनावी-समझौतो मे लग गए। सगठन कांग्रेस स्वतन्त्र-दल और जनसघ ने नई काग्रेस को पराजित करने के लिए 'महा-सहयोग' स्थापित किया। आखिर मुरारजी भाई, पाटिल, निजलिंगप्पा आदि सत्ता प्राप्त करने के बारे मे साम्प्रदायिक और प्रतिक्रियावादी तत्त्वो की गोद मे जाकर बैठ गए। इन लोगो के बारे मे इन्दिरा का राज-नैतिक विश्लेषण सही साबित हुआ।

इस वर्ष इन्दिरा मारीशस और लुसाका गई। मारीशस को छोटा भारत कहा जाता है। इन्दिरा के वहां जाने से दोनो देशो के बीच आर्थिक और राजनैतिक-सास्कृतिक सहयोग का श्रीगणेश हुआ। लुसाका मे गुट-निरपेक्ष देशो के सम्मेलन मे इन्दिरा ने अमेरिका से अपील की कि वह हिन्दचीन से अपनी सेनाए फौरन हटा ले। इसी वर्ष न्यूयार्क मे सयुक्त राष्ट्रसंघ की रजतजयन्ती मे भाग लेते हुए इन्दिरा ने भारत की गुट-निरपेक्षता को वर्तमान के सदर्भ में व्याख्येयित किया।

इस वर्ष के विदेशी अतिथियो मे वेल्जियम के सम्राट, पश्चिम जर्मनी के विदेशमन्त्री, पोलैंड के राष्ट्रपति और जापान के विदेशमन्त्री आदि प्रमुख हैं।

काग्रेस मे बैठी हुई गन्दगी और देश के दूषित राजनैतिक वातावरण को स्वच्छ बनाने के जिस भगीरथ कार्य में इन्दिरा जुटी हुई थी, उसके

शुभ परिणाम यो तो १९६९ से ही सामने आने लगे थे, लेकिन १९७१ के मध्यावधि चुनाव-परिणामो ने गन्दगी को काफी हद तक साफ कर दिया। जब राज्यसभा मे प्रिवीपर्स समाप्त करने का विधेयक पराजित हो गया और राष्ट्रपति ने अध्यादेश के द्वारा उसे लागू किया तो राजाओ ने सर्वोच्च न्यायालय के दरवाजे खटखटाये और वहा उन्हे स्थगन-आदेश मिल गया। इससे इन्दिरा ने दो निष्कर्ष निकाले : एक तो मध्यावधि चुनाव के द्वारा ससद मे ऐसी स्थिति निर्मित की जाए कि कोई भी लोकोपकारी विधेयक आवश्यक बहुमत के अभाव मे परास्त न होने पाए और दूसरे सविधान मे इस तरह सशोधन कर दिया जाए कि इस तरह के विधेयको की वैधता को कानूनी चुनौती न दी जा सके।

२९ दिसम्बर १९७० को मध्यावधि चुनाव की घोषणा करने के पश्चात् १३ जनवरी १९७१ से ५ मार्च १९७१ तक वह निरन्तर चुनाव-प्रचार मे लगी रही। इस अवधि मे उसने वायुमार्ग से ३० हजार और स्थलमार्ग से ३ हजार मील की यात्रा की। चार सौ से अधिक सभाओ मे भाषण दिये, जिनका औसत प्रतिदिन १४ का बैठता है। उन दिनो वह प्रतिदिन १८ घण्टे से भी अधिक काम करती रही।

इस बार नई काग्रेस का मुकाबला सगठन कांग्रेस, जनसघ, स्वतन्त्र और ससोपा के 'महासहयोग' से था। इस संयुक्त गठबन्धन ने ५४३ उम्मीदवार मैदान मे उतारे थे। इन्दिरा ने सिर्फ ४४२ उम्मीदवार खड़े किये, जिनमे २५७ बिलकुल नये थे और आधे से अधिक ४० वर्ष से कम उम्र के थे। श्रीमती गाधी को ३५० स्थान मिले, जो कांग्रेस-विभाजन के समय की उसकी स्थिति से १२० अधिक थे। 'महा सहयोग' को मुँह की खानी पडी। इन्दिरा की विजय का मुख्य कारण उसकी प्रगतिशील अर्थनीति थी।

इन्दिरा के नये मन्त्रिमण्डल में चह्वाण के पास वित्त-विभाग, फखरुद्दीन अली अहमद के पास खाद्य और कृषि, जगजीवनराम के पास सुरक्षा और स्वर्णसिह के पास विदेश-विभाग थे। देश को लग रहा था कि समाजवाद का सपना अब जल्दी ही सफल होगा। लेकिन पाकिस्तान एक बड़ी बाधा बनकर आ खड़ा हुआ।

झगड़े का आभास तो पहले से ही हो रहा था। दो तस्कर एक भारतीय यात्री विमान उड़ाकर पाकिस्तान ले गए, उसे वहा जला दिया और पाकिस्तान सरकार ने उन तस्करो को लौटाने से इन्कार कर दिया। सारे देश मे गुस्से की लहर दौड़ गई, लेकिन इन्दिरा ने अद्‌भुत सयम से काम लिया।

पाकिस्तान के आम चुनाव मे पूर्वी पाकिस्तान की राष्ट्रीय असेम्बली की सभी ६ जगहो पर मुजीबुर्रहमान की अवामी लीग की विजय हुई। इससे घबराकर राष्ट्रपति याह्या खां ने ढाका मे शुरू होनेवाले राष्ट्रीय असेम्बली के अधिवेशन को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया। विरोध में शेख मुजीबर्रहमान ने शान्तिपूर्ण असहयोग आन्दोलन शुरू किया तो उन्हे गिरफ्तार कर इस्लामाबाद ले गए और फौजी अदालत मे मुकदमा चलाकर फासी की सजा सुना दी गई। साथ ही पूर्व बगाल की जनता पर पूरे वेग मे दमन-चक्र चालू कर दिया गया। प्राणभय से आतकित लोग शरण की खोज मे भारत आने लगे और देखते-देखते साढे सात करोड आबादी वाले देश से लगभग एक करोड़ शरणार्थी भारत मे चले आए। इन शरणार्थियो ने सकटग्रस्त भारत की समस्याओ को और विषम कर दिया। लेकिन इन्दिरा ने शरणार्थी-समस्या के प्रति पूर्णत. मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाया और उनकी हर सम्भव मदद की। साथ ही सयुक्त राष्ट्र सघ और दुनिया के सभी देशो से पूर्व बगाल के नृशंस हत्या-काण्ड को बन्द करवाने तथा मुजीब के प्राण बचाने की अपीलें की। कई मत्री इस कार्य के लिए विश्व की प्रमुख राजधानियो मे भेजे गए और स्वय इन्दिरा भी अमेरिका आदि बडे देशो के शासको से भेट करने के लिए गई। लेकिन कोई नतीजा नही निकला। उलटे अमेरिका ने भारत को दी जाने वाली सहायता रोककर पाकिस्तान को ज्यादा मात्रा मे हथियार देना शुरू कर दिया। अमेरिका की यह कार्रवाई देश की सुरक्षा के लिए हानिप्रद होते देख इन्दिरा ने फौरन रूस के साथ बीस-वर्षीय प्रतिरक्षा-सन्धि करके भारत की स्थिति मजबूत कर ली। उधर पूर्व बंगाल की जनता जो भी हथियार मिला उसे लेकर आततायियो के खिलाफ उठ खड़ी हुई। भारत की सहानुभूति उनके साथ थी ही।

पाकिस्तानी शासको ने अपने अन्दरूनी मामलो मे हस्तक्षेप का आरोप भारत पर लगाया और बाकायदा लडाई छेड़ दी। चौदह-दिवसीय युद्ध मे पाकिस्तान की हार हुई, उसके एक लाख से अधिक सैनिको ने आत्म-समर्पण किया, याह्या खा का तख्ता उलट गया, मुजीब रिहा हुए और भारत को कृतज्ञ, गहरे मित्र और सहयोगी समर्थक एक नये बागला देश का उदय हुआ और पाकिस्तान आधा रह गया।

इस विजय ने, इन्दिरा और भारत, दोनो की ही प्रतिष्ठा मे चार चाँद लगा दिये।

मार्च ७१ से लेकर दिसम्बर ७१ तक इन्दिरा केवल बागला देश के मसले मे ही नही उलझी रही, इस अवधि मे उसने चार नये राज्यो का निर्माण किया—हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय और त्रिपुरा। दो स्वायत्त प्रदेश भी बनाये अरुणाचल प्रदेश और मिजोरम। तीन सवैधानिक सशोधन विधयेक पारित किए गए—२४वे सशोधन से भारतीय-जनता को सविधान के सशोधन का अधिकार प्राप्त हुआ, २५वे सशोधन से राष्ट्रीय हित के लिए सम्पत्ति-अधिग्रहण किये जाने पर मुआवज़ा देने की बाध्यता खत्म की गई; और २६वे सशोधन के द्वारा भूतपूर्व राजाओ के विशेषाधिकारो, प्रिवीपर्सो आदि को समाप्त किया गया।

इन्दिरा-शासन का यह वर्ष इसलिए भी उल्लेखनीय है कि प्रादेशिक स्तर पर जो पुरातनपथी सत्ता पर अधिकार किये बैठे थे, उन्हे भी इदिरा ने एक-एक करके हटा दिया।

२६ जनवरी १९७२ को इदिरा देश के सर्वोच्च अलकरण 'भारत-रत्न' मे विभूषित की गई। अपनी राजनैतिक सूझ-बूझ, सगठन-कौशल, दूरदर्शिता, लोगो को परखने की अद्भुत क्षमता, पैनी दृष्टि, ऊर्जस्विता, अदम्य उत्साह, अडिग आत्मविश्वास और गहन मानव प्रेम आदि गुणो के कारण कुछ ही वर्षो मे इन्दिरा भारत की सर्वमान्य जननेता ही नही, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के राजनेता के रूप मे भी प्रतिष्ठित हो गई।

१९७२ के मार्च मे इदिरा ने मद्रास, उत्तरप्रदेश आदि कुछ प्रदेशो को छोडकर सारे प्रदेशो मे आम चुनाव कराये। उसमे उसने दो नारे दिए—'आत्म-निर्भरता' और 'गरीबी हटाओ'। चुनाव जीतने के लिए

उसने दो काम किये—एक-एक उम्मीदवार का उसकी योग्यता के आधार पर स्वयं चयन किया और जहा भी आवश्यक समझा, दक्षिण-पन्थी कम्युनिस्ट पार्टी से चुनावी ताल-मेल किया। कम्युनिस्टो से ताल-मेल करके उसने काग्रेस पर लगे इस कलक को, कि वह पूंजीपतियो अथवा धनाधीशो की पार्टी है, धो डाला और देश की युवा-शक्ति के लिए उसके द्वार उन्मुक्त कर दिये।

१९७१ के मध्यावधि-चुनावो की तरह १९७२ के आम चुनावो के परिणाम भी सबको ही चौकानेवाले साबित हुए। पश्चिम बगाल की विधान-सभा में इन्दिरा की काग्रेस को २१६ स्थान मिले, जो १९७१ के मध्यावधि चुनाव के मुकाबले दुगुने है। मार्क्सवादियो को सिर्फ १४ स्थान मिले और १०० स्थान उनके हाथ से निकल गए।

इन चुनावो मे कुल २५२९ स्थानो मे से सत्ता काग्रेस को १९२६ स्थान प्राप्त हुए। तीनो दक्षिणपन्थी दलो का सफाया हो गया—सगठन काग्रेस के ८६८ उम्मीदवारो मे से ८८ जीते, स्वतन्त्र के ३४६ मे से सिर्फ १६ और जनसघ के १२२९ मे से केवल १०५। समाजवादी ६४४ स्थानो पर लडे मगर केवल ५७ स्थान पा सके!

मार्च मे इन्दिरा ने बागला देश के साथ पच्चीसवर्षीय 'मैत्री, सह-कारिता और शान्ति की सन्धि' की, जो 'समानता, पारस्परिक लाभ और राष्ट्रीय सिद्धान्तो' पर आधारित है।

३१ मई १९७२ तक के इन्दिरा के शासन-काल की दो और उल्लेखनीय घटनाए है—मध्यप्रदेश के डाकुओ का आत्मसमर्पण, और श्रमिक एकता के लिए गाधीवादियो के राष्ट्रीय मजदूर सघ, कम्यु-निस्टो के ट्रेड यूनियन काग्रेस और सोशलिस्टो के हिन्दू पचायत का पारस्परिक समझौता, शहरी सम्पत्ति की सीमा बाधने और कृषिभूमि की अधिकतम सीमा तय करने का काम भी राज्य-सरकारो को सौपा गया है।

१४-१५ अगस्त की मध्यरात्रि को ससद के अधिवेशन मे भाषण देते हुए इदिरा ने कहा, "आइये, हम न केवल भारत और उसकी महान जनता की सेवा के लिए एक बार फिर अपने को समर्पित करे, अपितु

उससे भी आगे विश्व-शाति और मानव-कल्याण के लिए, जिससे भविष्य मे आने वाली पीढिया, विशाल विश्व-परिवार के अग के रूप मे, सम्मान और तृप्ति का जीवन जी सके।"

बाद की घटनाओ मे मुख्य रूप से उल्लेखनीय वह समझौता है, जो २८ अगस्त को भारत-बगला देश और पाकिस्तान के बीच हुआ, जिसके अनुसार निश्चय किया गया कि सारे मसले और युद्ध-बदियो की वापसी की समस्या को मानवीय धरातल पर हल किया जायगा।

६ सितम्बर को इन्दिरा निर्गुट-राष्ट्रो की चौथी कान्फ्रेस मे सम्मिलित होने अल्जीरिया गई।

१४ अक्तूबर को इन्दिरा ने सेवाग्राम मे अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा कान्फ्रेस का उद्घाटन किया। उसी अवसर पर महात्मा गाधी की कुटिया मे गई।

२७ से २६ अक्तूबर तक भूटान की यात्रा का। उस यात्रा के दौरान वहा सडक बनाने वाले भारतीयो के सामने बोलते हुए कहा कि मुझे अफसोस है कि शिमला-समझौते का पाकिस्तान पर उतना प्रभाव नही पडा, जितने की भारत ने आशा की थी।

२ नवम्बर को बबई मे नेहरू-सेटर का शिलान्यास किया। ३ नवम्बर को तृतीय एशियाई अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मेले का उद्घाटन किया। २३ नवम्बर को आध्रप्रदेश के मुल्की नियमो के मसले पर हिंसा की निन्दा करने और वहा के लोगो को सगठित रखने की राज्य सभा के सदस्यो से अपील की।

फरवरी १९७४ मे उत्तरप्रदेश, उडीसा, मणिपुर और पाडिचेरी की विधान-सभाओ के चुनाव हुए। काग्रेस के शासन के प्रति लोगो मे भारी असतोष होते हुए भी इन्दिरा के दौरो ने सारी स्थिति बदल दी और उत्तरप्रदेश तथा उडीसा मे काग्रेस की बहुमत से विजय हुई।

१ अप्रेल को पाचवी पचवर्षीय योजना आरभ हुई। इस अवसर पर मुख्यमत्रियो को इन्दिरा ने अपने पत्र मे लिखा कि इस योजना के द्वारा हम अपनी अर्थ-व्यवस्था को मजबूत करेगे और गरीबी तथा विभिन्न वर्गो और क्षेत्रो के बीच की असमानता को दूर करने के

अधिक शक्ति अर्जित करेंगे। उसने यह भी कहा कि मूल्य-वृद्धि तथा तेल-संकट के कारण हमारे प्रयासो पर असर पड रहा है और हमे कुछ कार्यक्रमो की समीक्षा करनी पड़ सकती है।

६ अप्रेल को पूना विश्वविद्यालय ने इन्दिरा को डी० लिट्० की उपाधि से अलंकृत किया। उस मौके पर अपने दीक्षांत भाषण मे उसने विद्यार्थियो से कहा कि वे देश के प्रति अपने कर्तव्य की खातिर तथा अपने स्वयं के हित में अवाछनीय तत्त्वो से अलग रहें और प्रगतिशील समाज के निर्माण मे अपनी शक्ति का उपयोग करें।

१४ जून को संयुक्त राष्ट्रसंघ की मानवीय पर्यावरण परिषद के खुले अधिवेशन को सम्बोधित किया।

३ जुलाई को इंदिरा और पाकिस्तान के भूतपूर्व राष्ट्राध्यक्ष जुल्फिकार अली भुट्टो ने शिमला-समझौते पर हस्ताक्षर किये।

१९७३ की ३ फरवरी को वह एफ ए. ओ. पदक से सम्मानित की गई।

१९७५ की २६ अप्रेल को सिक्किम भारत संघ का २२ वां राज्य घोषित। उसके दो दिन बाद २८ अप्रेल को राष्ट्रमण्डलीय प्रधान मंत्रियो के सम्मेलन मे भाग लेने जमैका गई।

१२ जून को इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने सन् १९७१ के चुनावों में रायबरेली की लोक सभा सीट से इंदिरा की जीत को अवैध घोषित कर दिया। २४ जून को सर्वोच्च न्यायालय की सत्रावकाश-कालीन पीठ ने इंदिरा की अपील पर 'स्टे आर्डर' जारी करते हुए निर्णय दिया कि वह अगले निर्णय तक संसदीय कार्यवाहियो मे भाग लेते हुए प्रधान मंत्री के पद पर बनी रह सकती है, किन्तु उसे मत देने का अधिकार नही होगा।

२५ जून को सम्पूर्ण देश में आपात्काल की घोषणा। १० अक्तूबर को केन्द्रीय मंत्रिमण्डल मे परिवर्तन। ७ नवम्बर को सर्वोच्च

न्यायालय की कान्स्टीट्यूशन बेंच द्वारा प्रधान मंत्री के रायबरेली चुनाव को सर्वसम्मति से वैध घोषित किया गया।

२१ मार्च १९७७ को आम चुनाव मे नवगठित जनता पार्टी के प्रत्याशी राजनारायण द्वारा इदिरा पराजित हुई। २२ मार्च को इदिरा ने कार्यकारी राष्ट्रपति बा. दा जत्ती को अपना त्यागपत्र दे दिया। इतिहास ने फिर नया मोड़ लिया। जनवरी १९७८ मे तत्कालीन काग्रेस का पुन. विभाजन हुआ, जिसमे इदिरा के नेतृत्ववाला समूह काग्रेस (इ) कहलाया। इंदिरा उसकी अध्यक्ष चुनी गई। कर्नाटक तथा आध्र प्रदेश के विधान सभाई चुनावो मे इंका की विजय हुई।

केन्द्र मे जनता पार्टी की सरकार सत्ता मे आई। मोरारजी देसाई प्रधान मत्री बनाये गये। आपात्कालीन ज्यादतियो की जाच के लिए शाह आयोग बिठाया गया। इसने १३ मार्च को अपनी अतरिम रिपोर्ट पेश की।

८ नवम्बर को चिक मगलूर के संसदीय उपचुनाव मे इदिरा की शानदार जीत। २१ नवम्बर को यह आरोप लगाकर कि उसने विशेषाधिकार का दुरुपयोग किया है, उसे लोक सभा की सदस्यता से वंचित कर दिया गया और एक दिन के लिए तिहाड जेल मे बद।

२६ दिसम्बर को विशेषाधिकार समिति की सिफारिश पर उसे फिर गिरफ्तार किया। बाद मे उसी दिन छोड़ भी दिया गया।

२२ अगस्त १९७९ को लोक सभा भंग कर दी गई।

७ जनवरी १९८० को इदिरा रायबरेली तथा मेडक से विशाल बहुमत से विजयी हुई। अमेठी से सजय गाधी की जीत हुई।

१४ जनवरी १९८० को इदिरा ने पुनः प्रधान मंत्री पद की शपथ ली।

१४ अप्रेल को किसी अज्ञात व्यक्ति ने चाकू से इदिरा पर वार किया, लेकिन असफल रहा। हमलावर गिरफ्तार कर लिया गया।

१ जून को विधान सभा के चुनावो मे उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, पजाब, महाराष्ट्र और उडीसा राज्यो मे काग्रेस

(इं) को बहुमत मिला। तमिलनाडु में काग्रेस (इं) के समर्थन से आल इंडिया अन्ना द्रमुक की जीत हुई। १५ जून को केन्द्रीय मंत्रि-मण्डल में फिर फेरबदल हुआ और कई नये मंत्री शामिल किये गए।

२३ जून को संजय गांधी की वायु-दुर्घटना मे मृत्यु हो गई। इंदिरा को गहरा आघात लगा; लेकिन उसने अपनी पीड़ा को भीतर-ही-भीतर दबा लिया।

१२ जुलाई को राज्य सभा मे कांग्रेस (इं) का पूर्ण बहुमत हो गया। १२ अगस्त को इंदिरा के खिलाफ दायर याचिका खारिज।

६ सितम्बर को शेख अब्दुल्ला के निधन पर इंदिरा श्रीनगर गई। २२ अक्तूबर को केन्द्र और अकाली दल के बीच सीधी बातचीत की भूमिका बनाने के लिए प्रधान मंत्री के विशेष प्रतिनिधि के रूप मे स्वर्णसिंह अकाली नेताओं से मिले।

३० अक्तूबर को इंदिरा ने पाकिस्तान के राष्ट्रपति ज़ियाउल हक को पत्र लिखकर बेगम नुसरत भुट्टो को रिहा करने का अनुरोध किया, जिससे वह विदेश जाकर अपना उपचार करा सकें।

१ नवम्बर को राष्ट्रपति ज़िया से दिल्ली मे भेंट।

२६ जनवरी १६८२ को विश्वनाथ प्रतापसिंह केन्द्रीय को मंत्रिमण्डल में सम्मिलित किया गया और बूटासिंह को केन्द्रीय स्तर का मंत्री बनाया गया। ११ फरवरी को मन्त्रिमण्डल मे पुन: परिवर्तन।

७ मार्च को सातवें गुटनिरपेक्ष देशो का सम्मेलन आरंभ हुआ। इसमें १०१ देशो ने भाग लिया। इंदिरा उसकी नई अध्यक्षा चुनी गई। २५ मार्च को अंतर्राष्ट्रीय ओलम्पिक कमेटी के अध्यक्ष द्वारा इंदिरा को ओलम्पिक स्वर्ण पदक से अलंकृत किया गया। २७ सितम्बर को दिल्ली मे राष्ट्रमण्डलीय देशों का सम्मेलन इंदिरा की अध्यक्षता मे आरंभ हुआ।

६ अक्तूबर को पंजाब मे राष्ट्रपति शासन लागू हुआ।

६ से १२ दिसम्बर तक सर्व प्रथम गुटनिरपेक्ष-मीडिया-कांफ्रेंस नई दिल्ली मे इंदिरा की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुई। २६ दिसम्बर को

कलकत्ता मे अ भा काग्रेस कमेटी का ७७ वा अधिवेशन हुआ।

१९ मार्च १९८४ को पजाब मे राष्ट्रपति-शासन की अवधि बढ़ा कर ५ अक्तूबर तक करदी गई। ३ जून को अकाली दल ने असहयोगात्मक प्रदर्शनो को रोकने के प्रधान मन्त्री के अनुरोध को ठुकराया। ५ जून को आतंकवादियो से निपटने के लिए सैनिक कार्यवाही।

२ जुलाई को डा० फारुख अब्दुल्ला के नेतृत्व वाली जम्मू-काश्मीर की सरकार बरखास्त करदी गई। १० जुलाई को पजाब की कारंवाई पर श्वेतपत्र जारी किया गया, १९ जुलाई को केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल मे परिवर्त्तन। १६ अगस्त को आंध्र प्रदेश मे एन टी. रामाराव के नेतृत्ववाली तेलगु देशम सरकार को हटाकर असंतुष्टो के नेता भास्कर-राव को मुख्यमन्त्री बनाया गया। इस परिवर्तन की जानकारी से इंदिरा ने इन्कार किया। १६ सितम्बर को एन. टी. रामाराव बहाल किये गए।

२५ सितम्बर को दक्षिण-पूर्व एशियाई देशो के स्वास्थ्य मन्त्रियो की कार्फ्रेस को इंदिरा ने सबोधित किया। उसी दिन उन्होने स्वर्ण मन्दिर से सेना को हटाने के सबध मे अपना सदेश प्रसारित किया।

२८ सितम्बर को बिहार और आसाम मे आई बाढ का हवाई जहाज से सर्वेक्षण किया।

७ से ९ अक्तूबर तथा राजस्थान तथा महाराष्ट्र का दौरा किया। १० अक्तूबर को बौद्ध तथा राष्ट्रीय संस्कृतियो की अतर्राष्ट्रीय परिषद का उद्घाटन किया। १६ अक्तूबर को तामिलनाडु का दौरा। १७ अक्तूबर को बिहार का प्रवास। २० अक्तूबर से ३० अक्तूबर के बीच उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, जम्मू-काश्मीर और उडीसा का दौरा।

३१ अक्तूबर : अपने ही सुरक्षा-गार्डों की गोलियो से बलिदान।

३ नवम्बर अपरान्ह ४ बजे शान्तिवन मे अत्येष्टि।

—श्यामू सन्यासी

परिशिष्ट

संदर्भ-साहित्य

अध्याय ३

१. जवाहरलाल नेहरू, टुवर्ड फ्रीडम (न्यूयार्क; जान डे क०, १९४२)

अध्याय ४

१. ज० नेहरू, वही
२. आर्नाल्ड माइकेलिस, एन इण्टरव्यू विद इन्दिरा गाधी (मेक्कालस, अप्रैल १९६६)
३. कृष्णा नेहरू हठीसिंह, वी नेहरूज (न्यूयार्क; होल्ट रिनेहार्ट एण्ड विन्स्टन, १९६७)

अध्याय ५

१. ज० नेहरू, टुवर्ड फ्रीडम
२. बी० आर० नन्दा, द नेहरूज (न्यूयार्क : जान डे क०, १९६३)
३. कृष्णा नेहरू हठीसिंह, वी नेहरूज
४. ज० नेहरू, टुवर्ड फ्रीडम
५. बी० आर नन्दा, द नेहरूज
६. आर्नाल्ड माइकेलिस, एन इण्टरव्यू विद इन्दिरा गाधी
७ ज० नेहरू, टुवर्ड फ्रीडम
८ ज० नेहरू, विश्व-इतिहास की झलक (सस्ता साहित्य मडल, नई दिल्ली)

अध्याय ६

१. ज० नेहरू, विश्व इतिहास की झलक
२ वही
३. वही
४. ज० नेहरू, टुवर्ड फ्रीडम
५. ज० नेहरू, विश्व इतिहास की झलक

६. कृष्णा नेहरू हठीसिंग, 'कोई शिकायत नही' (सस्ता साहित्य मडल नई दिल्ली)
७ ज० नेहरू, टुवर्ड फ्रीडम
८. कृ० ने० हठीसिंग, वी नेहरूज
अध्याय ७
१ ज० नेहरू, टुवर्ड फ्रीडम
२ ज० नेहरू, 'हिन्दुस्तान की कहानी' (सस्ता साहित्य मडल, नई दिल्ली)
३ वही
४ वही
अध्याय ८
१ ज० नेहरू, 'कुछ पुरानी चिट्ठियाँ' (सस्ता साहित्य मडल, नई दिल्ली)
२ मुहम्मद यूनुस . फ्रटियर स्पीक्स
३. ज० नेहरू, विश्व इतिहास की झलक
४. ज० नेहरू, कुछ पुरानी चिट्ठिया
अध्याय १०
१ आर्नाल्ड माइकेलिम, एन इण्टरव्यू विद इन्दिरा गाधी
२ विजयालक्ष्मी पण्डित, प्रिजन डेज
अध्याय १२
१. कृ० ने० हठीसिंग, वी नेहरूज
अध्याय १४
१ 'राष्ट्रपिता' (सस्ता साहित्य मडल, नई दिल्ली)
अध्याय १५
१ कृ० ने० हठीसिंग, वी नेहरूज़
२ वही
३ डोरोथी नार्मन (सपादित), नेहरू, दि फर्स्ट सिक्स्टी इयर्स (न्यूयार्क : जान डे क०, १९६५), भाग २

अध्याय १६

१. वेट्टी फ्राइडेन, हाउ मिसेज़ गाधी शटर्ड 'दि फेमीनिन मिस्टिक' (लेडीज होम जर्नल, मई १९६६)

२ वही

अध्याय १९

१. डोरोथी नार्मन (सम्पादित), नेहरू, दि फर्स्ट सिक्स्टी इयर्स

२ वही

अध्याय २०

१. कृ० ने० हठीसिंग, वी नेहरूज़

अध्याय २२

१. ज० नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी

२. वही

३. विलियम एटउड, 'ए फ्रैंक टाक विद ए पावरफुल वुमन', ('लुक', अप्रैल ३०, १९६८)

अध्याय २५

१. आर्नाल्ड माइकेलिस, एन इण्टरव्यू विद इन्दिरा गाधी

२. रावर्ट हार्डी एंड्रूज, ए लैम्प फार इंडिया (ईंगलवुड क्लिफ्स, एन० जे० प्रेटिस हाल, १९६०)

अध्याय २६

१. आर्नाल्ड माइकेलिस, एन इण्टरव्यू विद इन्दिरा गाधी

२. ख्वाजा अ० अब्बास, इन्दिरा गाधी (बम्बई, पापुलर प्रकाशन, १९६६)

३. वही ।

निर्देशिका

बाबा रामदेव मेला